भूमिका

मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार छोटे बच्चों के विद्यार्थियों में भी चाहते हैं। इसीलिये मैंने अर्थशास्त्र सम्बन्धी कई लिखी और बाद उनको 'बालबोध' पुस्तक में दिये। यह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित हुई और कई वर्षों तक युक्तप्रान्त के प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत रही। मुझे यह सूचित करते हर्ष होता है कि इस पुस्तक में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी बातों को अध्यापकों और विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि अर्थशास्त्र ऐसा सरल विषय है, जिसका ज्ञान छोटे बच्चों को भी प्रारम्भिक पाठशालाओं में आसानी से कराया जा सकता है।

अर्थशास्त्र का विषय सरल और महत्वपूर्ण होने पर भी इसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के पाठ्यक्रमों में अभी तक स्थान नहीं मिला। सन् १९१७ तक या, जिस वर्ष मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, अर्थशास्त्र को बी० ए० से नीचे दर्जे की परीक्षा के पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया गया था। उन दिनों में अर्थशास्त्र के विषय का पढ़ना बी० ए० क्लास में ही आरम्भ होता था। इंटरमीडिएट तक पढ़ने वालों को तो इस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता था। कुछ वर्ष बाद अर्थशास्त्र को इंटरमीडिएट के पाठ्य विषयों की सूची में स्थान मिला और सन् १९४० से ग्राम्य अर्थशास्त्र को युक्तप्रान्त की हाईस्कूल-परीक्षा के पाठ्य विषयों की सूची में भी स्थान मिल गया है। इस ग्राम्य अर्थशास्त्र के पाठ्य क्रम के अनुसार ही यह पुस्तक तैयार की गई है। पुस्तक का तृतीय संस्करण इसी वर्ष निकला था। इसका

विषय-सूची

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र के विभाग

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति

चौथा अध्याय

खेती

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू उद्योग-धंधे

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण जनता की स्थिति

ग्यारहवाँ अध्याय

विनिमय

बारहवाँ अध्याय

बटाई प्रथा

तेरहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

चौदहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

चौबीसवाँ अध्याय

कृषि विभाग के कार्य

पच्चीसवाँ अध्याय

ग्राम और जिलों का शासन

छब्बीसवाँ अध्याय

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

सत्ताईसवाँ अध्याय

✓ सहकारी साख समितियाँ

अट्ठाईसवाँ अध्याय

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के यूनियन

तीसवाँ अध्याय

सैन्ट्रल सहकारी बैंक

इकतीसवाँ अध्याय

प्रान्तीय सहकारी बैंक

बत्तीसवाँ अध्याय

Classified Contents

(According to the Syllabus of Rural Economics and Co-operation for the High School Examination of 1947 and subsequent years prescribed by the Board of High School and Intermediate Education, U. P.)

विषय सूची, हाईस्कूल पाठ्यक्रम के अनुसार

Introduction (विषय प्रवेश १-२०)

Production (उत्पत्ति) २१-५८

ग्राम्य अर्थ-शास्त्र

पहला अध्याय

अर्थ-शास्त्र के विभाग

अर्थ-शास्त्र (Economics) क्या है ?

क्या तुम नहीं जानते कि हमारा प्यारा देश भारत आज बहुत ग़रीब है ? हम ग़रीब हैं, तुम ग़रीब हो, हमारे देश के प्रायः सब रहने वाले भी ग़रीब हैं। किसानों को देखो। बेचारे दिन-रात मेहनत करते हैं तिस पर भी उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता—न उनको पहनने को काफ़ी कपड़ा ही मिलता है। लेकिन क्या तुम बता सकते हो कि हम क्यों गरीब हो गए ? पुराने ज़माने में हमारे पास खूब धन दौलत थी, पर आज पैसा बड़ी मुश्किल से मिलता है। बताओ तो हमारा रुपया-पैसा कहाँ चला गया और वह कैसे हमारे हाथ से निकल गया ? अर्थशास्त्र हमें यह बतलाता है कि हम क्यों गरीब हो गए और फिर कैसे अमीर बन सकते हैं। दर्जे की फीस तो तुम हर महीने ज़रूर लाते होगे। तुम्हारे पिता जी कभी तुम्हें नोट देते हैं तो कभी रुपए और पैसे। इसके अलावा जब कभी तुम्हें कोई चीज़ मोल लेनी होती है तो ज़िद्द करके पिता जी से उसके लिए पैसे माँग लेते हो। क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि तुम्हारे पिता जी इन पैसों को कैसे पैदा करते हैं और इनको कैसे खर्च करना चाहिए ? क्या यह अच्छा होगा कि तुम्हारे पिता जी, तनख्वाह पाते ही सब रुपयों को खर्च कर दें ? नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महीने भर का खर्च कैसे चलेगा ? क्या तुम्हारे पिता जी सब को मुफ़्त में ही बाँट देते हैं ? क्या वे रुपए के बदले में कुछ नहीं लेते ? जब तुम मंडी में अनाज़ खरीदने जाते हो तो रुपए के बदले में गेहूँ, चना, मटर, चावल आदि चीज़ें खरीदते हो। तुम लोगों में से बहुत से गाँवों के रहने वाले हैं। किसान खेती करके अनाज़ की उत्पत्ति करते हैं। जब फसल कट कर खलि

आ जाती है तो उस का थोड़ा सा हिस्सा तो खाने के लिए घर में रख लिया जाता है और एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी के हाथ बेच दिया जाता है। लेकिन एक बात और है। इन सब के पहले गांव के कामगार—नाऊ, धोबी, लोहार, सुनार, महाजन आदि का भाग होता है। शहर की तरह गांवों में नाऊ, धोबी, बढ़ई वगैरह को नकद पैसा तो मिलता नहीं। पर पीछे उन का हिस्सा बंधा रहता है। फसल कट जाने पर अनाज में से पहले उन का हिस्सा निकाल देना पड़ता है। महाजन जिनसे कि किसान रुपया उधार लेते हैं सूद की जगह अनाज ही ले लेते हैं। इसके पहले कि हम यह सीख सकें कि हम क्यों गरीब हो गए और फिर कैसे अमीर हो सकते हैं, हमको अर्थ-शास्त्र के नियमों को अच्छी भांति जान लेना चाहिए। अर्थ-शास्त्र के नियम हमें धन (Wealth) की (Production) उत्पत्ति, (Consumption) उपभोग (अर्थात् किसी चीज़ का खर्च करना), विनिमय (किसी वस्तु को मोल लेना) और वितरण (Distribution) (उत्पत्ति का बटवारा) के बारे में सब बातें अच्छी तरह बताते हैं। इस प्रकार अर्थ-शास्त्र (Economics) के मुख्य मुख्य चार भाग हैं, उत्पत्ति, उपभोग, (Consumption) विनिमय और वितरण। अब हम इन्हीं भागों के संबंध में विचार करते हैं।

उत्पत्ति (Production)

हम ऊपर कह आए हैं अर्थ-शास्त्र हमें उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ बतलाता है पर यह उत्पत्ति है क्या बला? क्या केवल किसान ही का सम्बन्ध उत्पत्ति से है? नहीं, दर्जी, जुलाहा, बढ़ई, हलवाई, सब के सब उत्पत्ति कार्य करते हैं। जुलाहा क्या करता है? वह रुई के रेशों को इस प्रकार मिलाता है कि कपड़ा तैयार हो जाता है। दर्जी उस कपड़े को क्या करता है? वह आपके बदन का नाप लेकर उस कपड़े को काट छांट कर इस प्रकार से सी देता है कि उसकी बनाई हुई कमीज़ व कोट आपके बदन पर ठीक फिट कर जाती है। इसी प्रकार हलवाई मैदा, खोआ, चीनी वगैरह को इस प्रकार मिला कर आग पर भून कर तैयार करता है कि मिठाई बन जाती है। बढ़ई लकड़ी और कुछ कीलों को इस प्रकार मिला देता है कि हमारे हल, खाट, कुर्सी या मेज बन जाती है। कुम्हार गीली मिट्टी को चाक प

इस प्रकार से सँवारता है कि सकोरा, फरई व हाँडी तैयार हो जाती है। किसान को ही ले लो। वह थोड़े से बीजों से मनों अनाज पैदा करता है। परन्तु कैसे? वह बीज को एक खास ढंग से खेत में रखता है। फिर इस प्रकार से खाद व पानी डालता है कि बीज उनके तथा हवा के अंशों को लेकर अपना वेष बदल डालता है। उसमें से एक छोटा सा पौधा फूट निकलता है और यह पौधा अन्त में अन्न के सैकड़ों दाने पैदा करता है। कहने का मतलब यह है कि कोई भी अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ता। किसान से लेकर, जुलाहे और दर्जी तक सब के सब पहिले से प्राप्त किसी वस्तु को इस प्रकार से रखते हैं कि उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। जहाँ पहले रुई हमारे बहुत कम काम की रहती है, वहाँ रुई की कमीज या कोट को हम अपना बदन ढकने में उपयोग करते हैं। इसलिए किसी वस्तु की उत्पत्ति से हमारा मतलब होता है उसे और उपयोगी बनाना।

मान लीजिए आपके खेत के छोर पर आपका एक पुराना सूखा पेड़ खड़ा है। आप उसे बेचना चाहते हैं और श्याम आपको बीस रुपए देने को तैयार है। आपको दाम कम जँचता है और आप स्वयं पेड़ को काट कर उसके तख्ते बना डालते हैं। इन तख्तों को आप तीस पैंतीस रुपए में बेच सकते हैं। पर यदि आप इन तख्तों से चौखट, कुर्सी, चारपाई आदि बना डालिये तो आपको पचास रुपये भी मिल जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन आपने इतने समय तक किया क्या? उस पेड़ की लकड़ी को तो बढ़ा ही नहीं दी। उल्टा आप उसे काटते छाँटते रहे। हाँ, आपने उस लकड़ी की उपयोगिता अवश्य बढ़ा दी। यहाँ पर आप किसी प्रकृति से प्राप्त की हुई वस्तु की उपयोगिता बढ़ाते रहे हैं। लेकिन जब वकील साहब हमारा मुकदमा जीत जाते हैं, जब ब्राह्मण महाराज हमारे लिये कोई पूजा कर देते हैं अथवा जब पुलिस का आदमी हमारे जान-माल की रखवाली करता है, तब तो शायद किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन नहीं होता। उपयोगी तो ये सेवाएँ भी होती हैं परन्तु यह ऊपर बताई वस्तुओं से भिन्न हैं। इनसे हमारी विविध आवश्यकताएँ सीधी सीधी पूरी होती हैं। पहले दिये गए उदाहरण अर्थात् किसान का अनाज पैदा करना, दर्जी का कोट सीना, बढ़ई का हल बनाना आदि भौतिक उत्पत्ति के उदाहरण हैं। लेकिन व-ी-

पुलिस, मास्टर वगैरह के कार्य अभौतिक उत्पत्ति के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। भौतिक उत्पत्ति करते समय किसी वस्तु का रूप, स्थान आदि बदल कर उपयोगिता की वृद्धि की जाती है। अभौतिक उत्पत्ति के लिये ऐसे सेवा-कार्य किये जाते हैं कि जिससे मनुष्य की आवश्यकता सीधे सीधे पूरी हो जाती है। उत्पत्ति किस प्रकार होती है? उत्पत्ति करने में कौन कौन मदद करता है, किस किस शक्ति की ज़रूरत पड़ती है? इत्यादि सवालों का जवाब भी हमें अर्थ-शास्त्र से ही मिल जाता है। यह तो सब कोई जानता है कि प्रत्येक काम के करने में मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन मेहनत किस वस्तु पर की जाती है? मेहनत करने का सब से सीधा उदाहरण है घूमना या दौड़ना। घूमते या दौड़ते समय आप हवा में तो चलते ही नहीं। चलते तो हैं ज़मीन पर ही। अतएव यदि यह कहा जाय कि किसी भी कार्य में मेहनत और भूमि दोनों की आवश्यकता पड़ती है तो ग़लत न होगा। बहुधा यह देखा गया है कि काम करने में आदमी किसी चीज़ की मदद लेता है और वह भी इसलिये कि काम करने में सुभीता होता है। लकड़हारा जंगलों में जाकर उन लकड़ियों को बटोर कर बेचने ला सकता है जो कि भूमि पर टूट पड़ी हों। घास बेचने वाला हाथ से घास उखाड़ उखाड़ कर जमा कर सकता है। लेकिन वह चाहता है कि घास छीलने में आसानी हो जाय, अर्थात् वह जल्दी-जल्दी घास छीलने लगे और इसी कारण से वह खुर्पी का प्रयोग करता है। इसी प्रकार से लकड़ी वाला कुल्हाड़े से काम लेता है। खुर्पी और कुल्हाड़ा मोल लेने के लिये रुपया खर्च करना पड़ता है। इसलिये ये दोनों चीज़ें धन के रूप हैं। खेती करने में भी इसी प्रकार भूमि, श्रम और पूँजी की ज़रूरत पड़ती है। यदि खेत की ज़मीन न हो तो किसान बीज कहाँ बोवेगा? वह हल, बैल, फावड़ा, हसिया, खुरपा के रूप में धन लगाता है और स्वयं मेहनत करता है। परन्तु इन तीनों के अलावा उत्पत्ति के किसी कार्य में प्रबन्ध व साहस भी स्थान रखते हैं। हमारा खेतिहर यह निश्चय करता है कि खेत में कितना पानी डाला जाय। खेत को कितना गहरा खोदा जाय। क्या बरसात में खेत का पानी बह कर निकल जाने दें अथवा उसे खेत ही में रहने दें? इन सब बातों का प्रबन्ध तो किसान करता ही है परन्तु किसी किसी समय वह किसी बात का निश्चय नहीं कर सकता।

मान लीजिये कोई ज़मीन रामू किसान के पास नहीं थी और इस साल उसने उसे मोल ले ली। उस भूमि के बारे में रामू सब बातें नहीं जानता। क्या वह उस टुकड़े को जमीन के और टुकड़ों से अधिक गहरा खोदे? क्या वह उस खेत में अधिक खाद व पानी डाले। इन सब बातों में राम को साहस से काम लेना पड़ता है। इस तरह से उत्पत्ति में भूमि, श्रम, धन (अर्थात् पूँजी), प्रबन्ध व साहस नामक पाँच काम शक्तियाँ करती हैं।

उपभोग (Consumption)

उत्पत्ति का अर्थ समझ लेने पर अब हम उपभोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। रामू किस खेत में क्या बोवेगा, इससे अब हमसे बिलकुल मतलब नहीं। वह स्वतंत्र है। चाहे वह गेहूँ बोवे, चाहे चना, चाहे जौ या बाजरा। मान लीजिये वह गेहूँ बोता है। फसल के पक जाने पर किसान गेहूँ को काट-माँड़ कर घर में लाता है। घर वाले उसको पीस कर रोटियाँ बनाते हैं और सब कोई उसे खाते हैं। खाने से किसान की भूख मिटती है। उसे एक तरह का संतोष मिलता है और हम कहते हैं कि किसान ने रोटी का उपभोग किया। आमतौर पर उपभोग से किसी वस्तु का उपयोग करने या सेवन करने का मतलब निकाला जाता है। लेकिन अर्थ-शास्त्र में उपभोग के मतलब कुछ और ही होते हैं। मान लो तुम्हारे पास रोटी का एक टुकड़ा है। उसे तुम खा भी सकते हो और आग में डाल कर जला भी सकते हो। दोनों हालत में कहा जाता है कि रोटी का उपभोग हो गया लेकिन अर्थ-शास्त्र के मत से केवल जब रोटी खाई जाती है तभी उसका उपभोग होना समझा जाता है अन्यथा नहीं। रोटी खाने से तो मनुष्य को एक प्रकार का संतोष मिलता है लेकिन यदि रोटी आग में जला दी जाय तो किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती और इसलिये किसी को सन्तोष नहीं मिलता। रोटी खाई जाय अथवा जलाई जाय दोनों हालत में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। अतएव अर्थ-शास्त्र के अन्तर्गत जब किसी सेवा या वस्तु का इस प्रकार से उपयोग किया जाता है कि मनुष्य की कोई आवश्यकता पूरी होती हो अर्थात् जिससे मनुष्य को किसी प्रकार का संतोष मिलता है तभी हम कहते हैं कि उस सेवा या वस्तु का उपभोग किया गया। एक बात और, कभी-कभी किसी वस्तु का

उपयोग किसी अन्य वस्तु के पैदा करने में किया जाता है जैसे किसी कारखाने में कोयले का उपयोग। यहाँ पर देखना चाहिये कि कोयले के जलने से किसी आदमी की कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं। उत्तर है कि हमारे देखने जो कोई इच्छा पूरी होती दिखाई नहीं देती। और जब यह हाल है तो अर्थशास्त्री ऐसी वस्तु के इस तरह जलने को उपभोग नहीं कहेंगे। हाँ, अगर जाड़े का दिन हो और आप कोयला जला कर आग तापें तो हम कहेंगे कि आपने कोयले का उपभोग किया, क्योंकि इस बार कोयला जलाने से आपकी ठंडक दूर करने की इच्छा पूरी हो गई।

उपभोग के सम्बन्ध में यह जानना ज़रूरी है कि इसी के लिये आदमी सब चीज़ें पैदा करता है और जितनी चीज़ें पैदा की जाती हैं उन सब का उपभोग किया जाता है। परन्तु किसी आदमी को एक समय में एक ही इच्छा तो होती नहीं। हर वक्त बहुत सी बातें उसके दिमाग में घूमा करती हैं और सब से बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन सी इच्छा पहले पूरी की जाय। इसका साधारण सा उत्तर है उस इच्छा को जिसको पूरा करने से सबसे अधिक संतोष या उपयोगिता (Utility) प्राप्त हो। लेकिन आमतौर पर आदमी क्या करते हैं? कौन सी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, कौन आरामदायक और कौन गुलछर्रे उड़ाने के लिये बनाई जाती हैं? फिजूलखर्ची किसे कहते हैं? उपभोग में इन सब प्रश्नों पर विचार होता है। उससे यह भी पता लगता है कि जो वस्तु किसी ग़रीब किसान के लिये आरामदायक और विलासपूर्ण (Luxuric) हो वही ज़मींदार के लिये आवश्यक हो सकती है। अपनी आमदनी का विचार न कर जो ग़रीब किसान रोज हलवा-पूरी उड़ाता है उसे दुनिया भोग विलासी कहती है। लेकिन ज़मींदार हलवा पूरी आवश्यक समझते हैं। उनके हिसाब से अमीरी ठाट के अन्दर रेडियो, बिजली, मोटर आदि स्थान रखते हैं। बात से रहन-सहन के दर्जे की समस्या उठती है। एक मज़दूर किस तरह की जिन्दगी बसर करता है; पचास-साठ रुपया मासिक तनख्वाह पाने वाले क्लर्क साहब किस प्रकार रहते हैं; महीने में सौ दो सौ रुपये पैदा कर लेने वाले दूकानदार तथा उद्योग-धंधे वाले कैसा जीवन व्यतीत करते हैं और हज़ार पाँच सौ रुपये माहवारी फटकारने वाले ज़मींदार, डाक्टर या कलक्टर किस मौज से रहते हैं, इन सब बातों का वर्णन व विवेचन रहन-सहन

दर्जे के अंतर्गत किया जाता है। जैसे जैसे आय बढ़ती है वैसे ही वैसे मनुष्य अच्छी जिन्दगी बसर करने की कोशिश करता है और उसके रहन-सहन का दर्जा ऊपर को उठता जाता है। इतना ही नहीं किसी देश के रहने वाले को किस प्रकार रहना चाहिये, वहाँ की सरकार को उपभोग (Consumption) के सम्बन्ध में किन किन बातों में दखल देना चाहिये इत्यादि और भी बहुत सी बातें हमें उपभोग के अन्तर्गत ही माननी पड़ती हैं। अस्तु हम जान गए कि अर्थ-शास्त्र में उपभोग (Consumption) का मतलब किसी चीज के ऐसे उपभोग से होता है जिससे किसी आदमी को सतोष हो। अर्थ-शास्त्र के इस भाग में यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है वहाँ तक उसके और देश के लिये लाभदायक है और किस हालत में वह हानिकर होता है। लगे हाथ इस बात का भी विचार किया जाता है कि मनुष्य कैसे रहता है और उसका रहन सहन का दर्जा क्या होना चाहिये तथा उस दर्जे को बनाए रखने के लिये देश की सरकार को क्या करना चाहिये ?

विनिमय (Exchange)

लेकिन सोचने की बात है कि आजकल कोई आदमी अपने आप मतलब की सारी वस्तुयें नहीं उत्पन्न करता। कोई केवल किसानी करता है तो कोई नौकरी, कोई मजदूर है तो कोई बढ़ाई, कोई धोबी है, तो कोई चमार। चमार के लिये यह बिलकुल ज़रूरी है कि जूते बेचने से आनेवाले पैसों से आटा खरीदे और मज़दूर मज़दूरी की रकम से दाल-चावल मोल ले। ऐसा क्यों होता है ? बनिये के पास आटा इतने अधिक मात्रा में रहता है वह आटे से पैसों को अधिक उपयोगी समझता है और हमारे चमार के पेट के लिये तो आटा ज़रूरी है ही। कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर वालों को कुछ फायदा होता है तभी अदल-बदल होता है। और जब दो वस्तुओं का अदला बदला होता है तो एक वस्तु के कुछ वज़न के लिये थोड़ी सी दूसरी वस्तु दी जाती है। उदाहरण के लिये हो सकता है कि बीस सेर गेहूँ के लिए दस सेर चावल मिले। इस प्रकार अर्थ शास्त्र (Economics) की दृष्टि से दो सेर गेहूँ का मूल्य हुआ एक सेर चावल। आजकल गाँवों को छोड़ कर शहरों में तो ऐसे उदाहरण बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर

पैसे देकर हम तुम बाज़ार से तरकारी, मसाला आदि खरीद लाते हैं। अब अगर सेर भर गेहूँ का मूल्य दो आना है तो हम कहेंगे कि गेहूँ की कीमत दो आने सेर है। वस्तुओं को इस तरह से लेने-देने का नाम विनिमय है। पहले ज़माने में जब रुपये पैसों का चलन नहीं था तो वस्तु का वस्तु से ही विनिमय होता था।

विनिमय के साथ प्रश्न उठता है कि विनिमय के दर के सम्बन्ध में किस प्रकार यह निश्चित किया जाय कि एक रुपये के बदले में कितने सेर गेहूँ बेचा जाय अथवा एक मिर्ज़ई को बनाने के लिये रामू किसान गाज़ी दरजी को कितना चना देवे। इसके अलावा विनिमय के अध्ययन से हमें पता चलता है कि गाँव के किसान अथवा अन्य कारीगर अपने अपने माल को बाज़ार में लाकर किस प्रकार बेचते हैं? गाँवों के हाट और मेले हमारे कितना महत्व रखते हैं?

वितरण (Distribution)

उपभोग करने वाले की दृष्टि से तो हमने देख लिया कि वह किस प्रकार विनिमय करके किसी वस्तु का उपभोग करता है। अब हमें देखना चाहिये कि बेचने वाला बिक्री से आने वाले धन में से किस प्रकार अपना हिस्सा लेता है? क्या सारी रकम उसी की होती है अथवा कोई दूसरा भी उसमें साझेदार होता है? मान लीजिये किसान अपने अनाज को शहर वाले व्यापारी को दे देता है और वह उसे शहर के बाज़ार में जाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आएगा उसका किस प्रकार बँटवारा किया जाय? सोचने पर मालूम पड़ता है कि उत्पत्ति में जो शक्तियाँ मिल कर काम करती हैं उनके मालिक अनाज को बेचकर आने वाली रकम के हक़दार हैं। इसलिये हमारी समस्या यह हो जाती है कि किस प्रकार से निपटारा किया जाय कि भूमि-मालिक को कितना लगान, मज़दूर को कितनी मज़दूरी व महाजन को कितना सूद मिले? परन्तु यहाँ पर हम एक बात भूल जाते हैं। उसे साफ़ करने के लिये थोड़ी देर के लिये मिल मालिक को ले लीजिये। वह मिल का बीमा कराए रहता है और हर साल बीमे की रक़म देता है। इसके अलावा हर साल उसकी मशीनें कुछ न कुछ घिस जाती हैं। उसके लिये भी उसे आने वाली रकम में से कुछ निकाल कर अलग रख देना चाहिये। इन सबको काट कर जो बचता

है वह ज़मीन के मालिक, मेहनत करने वाले मज़दूर, धन लगाने वाले महाजन, प्रबन्धकर्ता व साहस प्रदान करने वाले मनुष्य के बीच बाँटा जाना चाहिये। परन्तु यह कोई ज़रूरी नहीं है कि पांचों कार्य भिन्न व्यक्ति करें। हम जानते हैं कि मिल मालिक रुपया भी लगाता है, प्रबन्ध भी करता है और साहस भी दिखाता है। इसी तरह किसान अधिकतर मेहनत भी करता है और अनाज पैदा करने के लिये पूँजी भी लगाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन-पाँचों के बीच किस हिसाब से रक़म का बँटवारा हो। इसका उत्तर हमें अर्थ-शास्त्र के वितरण विभाग से मिलता है।

यही नहीं, इस भाग में यह भी विचार किया जाता है कि कहीं भूमि वाला इतना अधिक भाग तो नहीं ले लेता कि मज़दूरों के पास बहुत कम रह जाता हो और उनकी हालत ख़राब हो जाए। इसके अलावा हमें यह भी मालूम होता है कि जमींदारों और किसानों के बीच में कैसा सम्बन्ध होना चाहिये। धन का वितरण इस प्रकार न होना चाहिये कि ज़मींदार जो गिनती में किसानों से बहुत कम हैं, गुलछर्रे उड़ावें और मर मर कर अनाज पैदा करने वाले किसान भूखों मरें और बेगार भुगतें। किसानों के पास कितना धन पहुँचना चाहिये? क्या उसके लिये इतनी रक़म काफी होगी जिससे कि उनके कुटुम्ब का काम चल जावे? कहा जा सकता है कि देश की उन्नति के लिये यह ज़रूरी है कि हर एक देशवासी उन्नति करे अर्थात् प्रत्येक आदमी इतना धन पावे जिससे कि वह दूसरों को कम से कम हानि पहुँचाते हुए अधिक से अधिक लाभ उठावे।

सारांश

अस्तु, हम जान गए कि अर्थशास्त्र उस विद्या का नाम है जो मिलजुल कर रहने वाले मनुष्यों के उन प्रयत्नों के बारे में विचार करता है जिनमे वे अपनी अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरी करते और अर्थ (अर्थात् धन) या अन्य सामग्रियाँ उत्पन्न करते हैं। आदमियों के धन सम्बन्धी उपायों का पूर्ण रूप से विचार करने के अलावा अर्थ-शास्त्र में देशों की आर्थिक दशा और उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाता है। अर्थ-शास्त्र का अध्ययन अधिकतर उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण नामक चार मुख्य भागों में बाँट कर किया जाता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—अर्थ-शास्त्र क्या है ? इसके अन्तर्गत किन बातों का अध्ययन किया जाता है ?

२—अर्थ शास्त्र की परिभाषा लिखिए। व्यावहारिक जीवन में इसके अध्ययन से क्या लाभ है ?

३—आपके गाँव में या मोहल्ले में कितने अमीर और कितने गरीब कुटुम्ब रहते हैं ?

४—अपने किसी परिचित अमीर मित्र से यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि भूतकाल में उसका कुटुम्ब कभी गरीब से अमीर किस प्रकार हुआ ?

५—अपने किसी परिचित गरीब मित्र से यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि भूतकाल में उसका कुटुम्ब कभी अमीर से गरीब किस प्रकार हुआ ?

६—अपने गाँव या मोहल्ले के भिन्न भिन्न पेशे के ऐसे २० व्यक्तियों की सूची तैयार कीजिये जो परिश्रम करके अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। इस सूची में उनका पेशा भी बतलाइये।

७—ऐसी २० वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये जिनका उपयोग आपके मकान में प्रति सप्ताह होता है।

८—आपके गाँव के साप्ताहिक हाट में अथवा आपके मोहल्ले के बाजार में जो वस्तुएँ बिकती हैं उनकी संक्षिप्त सूची तैयार कीजिये।

९—किसी गाँव में जाकर यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि फसल के तैयार होने पर किसी एक किसान को बढ़ई, लोहार, नाऊ इत्यादि को कितना अनाज देना पड़ा ?

१०—अपने कुटुम्ब की एक मास की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब रखिये और यह बतलाइये कि भोजन, कपड़ा, किराया, शिक्षा, दान, धर्म इत्यादि में कितनी रकम उस मास में खर्च हुई ?

११—यदि तुम्हारे गाँव में किसी को रुपये उधार लेने की जरूरत पड़ती है तो रुपया किससे उधार लिया जाता है और किस दर पर सूद दिया जाता है ?

१२—तुम्हारे गाँव में ज़मींदार और किसानों का संबंध कैसा है ? क्या किसान जमींदार से प्रेम करते हैं ? यदि प्रेम नहीं करते तो उसके प्रधान कारण क्या हैं ?

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ (Definitions)

धन या सम्पत्ति (Wealth)

पिछले अध्याय में हम बतला आए हैं कि अर्थ-शास्त्र में धन संबंधी बातों का विवेचन रहता है। अब हम धन का अर्थ समझाने का प्रयत्न करते हैं। संसार में सर्वत्र रुपए की ही माया है। बिना रुपया के किसी का गुज़र नहीं हो सकता। तुम शहर में जरूर गये होगे। वहाँ तुमने देखा होगा कि लोग अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर घूम रहे हैं। फिटन, टमटम, मोटर, साइकिल दौड़ रही है। बड़ी बड़ी दुकानों और कोठियों में लाखों रुपए का माल भरा हुआ है। अमीर आदमियों के ऊँचे ऊँचे मकान बने हुए हैं। अमीर कौन कहलाता है ? वह जिसके पास खूब धन दौलत होती है, जो बड़ी बढ़िया शानदार कोठी में रहता है, तथा जिसके यहाँ बहुत से नौकर चाकर होते हैं। लेकिन क्या अमीर आदमी की तमाम दौलत रुपए के रूप में ही रहती है ? उत्तर है नहीं। किसी मनुष्य के धन से उसका रुपया, जेवर, मकान, जमीन इत्यादि कीमती वस्तुओं का बोध होता है और वही मनुष्य धनवान कहलाता है जिसके पास ये सब चीज़ें अधिक तादाद में होती हैं। लेकिन अर्थ-शास्त्र में केवल इन चीजों को ही धन नहीं कहते। अर्थ-शास्त्र में हम उन वस्तुओं को धन के नाम से पुकारते हैं जिनको हम काम में ला सकते हैं और जो बेची जा सकती हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ को ले लो। इसको पीस कर हम आटे की रोटियाँ पका सकते हैं और रोटियों को खाने से हमारी भूख मिट जायगी। अतएव गेहूँ उपयोगी है। गेहूँ को हम बेच भी सकते हैं। ज़रूरत होने पर हम गेहूँ देकर धोती का एक जोड़ा खरीद सकते हैं। या रुपए के बदले में

हम गेहूं दे सकते हैं और धोती के बदले में रुपया। अतएव गेहूं विनिमय-साध्य वस्तु है। इसलिए अर्थशास्त्र के हिसाब से गेहूं भी धन (Wealth) है। इस बात को और साफ़ करने के लिए हवा को ले लो। यह सबको मालूम है कि वायु हमारे जिये कितनी ज़रूरी है। इसके बिना हम एक घंटा भी नहीं जी सकते। इसलिए वायु की उपयोगिता (Utility) बहुत ज्यादा है। परन्तु क्या यह विनिमय साध्य है? क्या आप वायु के बदले कोई वस्तु ले सकते हैं? वायु हर जगह मौजूद रहती है। इसलिए किसी को उसके मोल लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह ईश्वर की देन है और हम इसे धन में नहीं गिन सकते। इसी तरह यदि आप नदी या तालाब से दो चार घड़ा पानी भर कर किसी वस्तु से बदला करना चाहेंगे तो कोई बदला नहीं करेगा। क्योंकि नदी और तालाब का पानी आसानी से अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जितने पानी की जरूरत होती है उतना पानी वह आसानी से नदी से ले लेता है। इसलिए पानी हमारे लिए उपयोगी होते हुए भी धन नहीं कहला सकता। परन्तु यही जल राजपूताना के रेगिस्तान में धन कहलाने लगेगा, क्योंकि जल की कमी के कारण वहाँ पर तो सब कोई इसे मोल लेने के लिए तैयार हो जायँगे। गाय, बैल, मकान, लकड़ी, कड़ा, कोयला, पत्थर, पेड़, फल, फूल आदि सब वस्तुएँ सम्पत्ति या धन के स्वरूप हैं। और जब पानी ऐसी चीज सम्पत्ति हो सकती है तो इस हिसाब से हम कूड़ा, करकट, गोबर, राख, हड्डी आदि तक की गिनती सम्पत्ति में कर सकते हैं।

केवल रुपया पैसा (Money) ही धन (Wealth) नहीं

हम ऊपर कह आए हैं कि कुछ लोगों के हिसाब से रुपया-पैसा व सोना-चाँदी का ही नाम सम्पत्ति है। यह बिलकुल ग़लत है। हिन्दुस्तान में अब भी कितने गाँव मिल जाते हैं जहाँ पर लोगों के पास रुपए नहीं हैं, लेकिन क्या उन गाँवों में अमीर और गरीब नहीं बसते? तुम पूछ सकते हो कि फिर रुपया-पैसा आया कैसे? इसकी क्यों ज़रूरत पड़ी। असली बात यह है कि बिना रुपए-पैसे के सम्पत्ति की अदला-बदला करने में बड़ा झंझट करना पड़ता है। मान लो तुम्हारे पास चना है और तुम्हें मिर्जई की ज़रूरत है। अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी को तलाश करना पड़ेगा जिसके पास मिर्जई हो।

ख्याल करो कि ऐसा मनुष्य मिल गया लेकिन वह मिर्जई के बदले में जूता माँगता है। अब दोनों आदमियों को एक तीसरे आदमी को ढूँढना पड़ेगा जिसके पास जूता हो और जो जूते के बदले में चना लेना चाहता हो। इन्हीं सब झंझटों को दूर करने के लिए रुपए-पैसे का रिवाज चला है। रुपए पैसे के चलन से हम जान सकते हैं कि राम और श्याम में कौन अमीर है। हम क्या करेंगे? हम इस बात का पता लगावेंगे कि राम का घर-बार, खेत-पात, कपड़ा-लत्ता आदि का क्या दाम है? मान लो सब मिला कर चार हज़ार रुपया हुआ और श्याम के पास इस तरह से छै हज़ार का माल निकला तो हम कहेंगे कि श्याम राम से अमीर है। अस्तु, यह तै हो गया कि कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही रुपए-पैसे चलाए गए और केवल यही धन स्वरूप नहीं है।

पर इस रुपए-पैसे द्वारा हम कोई वस्तु कब खरीदते हैं? तुम कब गेहूँ खरीदते हो अथवा कब तुम्हारे पिता गाँव के चमार से जूता मोल लेते हैं? उस समय जब कि उन्हें जूते की ज़रूरत मालूम पड़ती है। वह जूते के दाम क्यों देते हैं? क्योंकि जूता हवा या जल की तरह ईश्वर की देन होकर काफ़ी परिमाण में आसानी से नहीं मिल सकता अर्थात् जूतों की संख्या परिमित है। इसके अलावा एक बात और है। जूता बनाने के लिए चमार को मेहनत करनी पड़ती है। उस मेहनत के बदले में कुछ देना ज़रूरी है। इसलिए वह दाम देकर चमार से जूता मोल ले आते हैं। तो अब तुम जान गए कि अर्थ-शास्त्र में सम्पत्ति किसे कहते हैं। प्रत्येक वस्तु जो उपयोगी होती है, जिसकी संख्या परिमित होती हो व जिसके प्राप्त करने के लिए श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जो वस्तु विनिमय साध्य है, उस वस्तु की गणना हम सम्पत्ति में करते हैं।

सम्पत्ति-वृद्धि (Increase of wealth)

यह तो तुम जान गए कि सम्पत्ति किसे कहते हैं पर क्या तुम बता सकते हो कि सम्पत्ति कैसे इकट्ठी की जा सकती है? अर्थात् किस प्रकार से एक मनुष्य अमीर बन सकता है? यह तो हमको मालूम है कि अमीर के पास वस्तुएँ अधिक मात्रा में होती हैं। अब हमको देखना चाहिए कि वह

अमीर बना होगा या हम तुम कैसे उसकी तरह धन इकट्ठा कर सकते हैं। लोग तरह तरह के तरीकों से धन पैदा करते हैं। एक आदमी दिन भर परिश्रम करके जंगल से घास या लकड़ी लाता है, दूसरा किसी के पास अथवा परिवार या संस्था में नौकरी करता है, तीसरा दूकानदारी करता है, चौथा किसान है। ये सब अपना काम अक्सर इसीलिए तो करते हैं कि इन्हें धन पैदा करना रहता है। परन्तु हम जानते हैं कि धन की उत्पत्ति के लिए मुख्य शक्तियाँ हैं, भूमि, मेहनत और स्वयं धन भी। मान लो तुम्हारे पास दस बीघा खेत है और तुम उससे अधिक से अधिक अनाज पैदा कर रहे हो। यदि तुमको और अधिक माल की ज़रूरत है तो इसका उपाय यही है कि तुम दस की जगह बारह-पन्द्रह बीघे ज़मीन में खेती करो। उत्पत्ति बढ़ाने का दूसरा साधन है श्रम बढ़ाना। अगर खेत में काम करने वाले आठों मजदूर पूरी मेहनत के साथ काम कर रहे हैं तो यह ज़रूरी है कि उनकी संख्या बढ़ा कर दस या बारह कर दी जाय। धन या पूंजी का भी यही हाल है। जब आप धनोत्पत्ति की दो शक्तियों को बढ़ा रहे हैं तो आपको तीसरे को भी ज़रूर ही बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा आपका काम नहीं बनेगा। अतएव धनी व समृद्धिशाली बनने के लिए यह ज़रूरी है कि आप अधिक क्षेत्र में काम करें, अधिक मेहनत लगावें व अधिक पूँजी का उपयोग करें।

सम्पत्ति और सुख (Wealth and welfare)

वस्तु के उपभोग से संतोष होता है और सुख की प्राप्ति होती है। ग़रीब मनुष्य के पास वस्तुओं की कमी रहती है, उसके पास सुख प्राप्त करने के साधनों का अभाव सा रहता है। गरीब को अधिक सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके धन का परिमाण बढ़ाया जाय, उसकी आमदनी में वृद्धि की जाय। इसी प्रकार आर्थिक उन्नति की जा सकती है। परन्तु धनी बनने और सुखी बनने में महान अंतर है। यह बात ठीक है कि धनी मनुष्य जो चाहे सो कर सकता है। वह मोटर खरीद सकता है। दो चार लठैत और अन्य व्यक्तियों को नौकर रख सकता है। अच्छा अच्छा खाना खा सकता है। परन्तु अमीर आदमी बदमाश और बदचलन भी हो सकते हैं। बुरे कामों में रुपया भी लुटा सकते हैं। समृद्धिशाली और सुखी बनने के लिए

यह जानना ज़रूरी है कि रुपया किस प्रकार खर्च किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिए थोड़ी सी सादगी अख्तियार करनी पड़ेगी। यही नहीं, ज्ञान की भी ज़रूरत पड़ती है। क्या हुआ यदि आपको यकायक एक लाख रुपों की लाटरी मिल गई। यदि आप मूर्ख हैं, यदि आपके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है तो आप बड़ी जल्दी सब रुपया उड़ा देंगे। दूसरी ओर अगर आप पढ़े-लिखे हैं, अगर आपको अर्थ-शास्त्र की बातें मालूम हैं तो आप उस धन का उपयोग इस प्रकार से कर सकते हैं कि जिससे आपकी और देश की भी दशा सुधरने लगे।

उपयोगिता (Utility)

अब प्रश्न उठता है कि आपको किस प्रकार रुपया खर्च करना चाहिए? आपको कौन कौन सी वस्तुएँ खरीदनी चाहिए और कितनी? इससे भी मुख्य सवाल है कि आप क्यों किसी चीज़ को खरीदते हैं। क्योंकि आपको उसकी ज़रूरत रहती है, क्योंकि वह चीज़ आपके लिए उपयोगी है। मान लीजिए आप अपने गाँव के हाट में गए। वहाँ पर बहुत सी चीज़ें बिकने के लिए आती हैं। कोई कपड़ा खरीदता है, कोई गेहूँ-चना खरीदता है, कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ। आप भी कोई वस्तु पसन्द करके खरीद लेते हैं। परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि आपने उसको क्यों ख़रीदा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि किसी वस्तु की उपयोगिता क्या होती है? कहा जाता है कि उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की चाह होती है। इसका सम्बन्ध मन से होता है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा या रुचि में कुछ न कुछ फ़र्क़ ज़रूर रहता है। इसी लिए किसी एक चीज़ की उपयोगिता प्रत्येक आदमी के लिए बराबर नहीं होती और हम उपयोगिता वर्णन किसी नाप या तौल से नहीं कर सकते। लोग किसी वस्तु का मूल्य तय करने में उस वस्तु की उपयोगिता का विचार ज़रूर करते हैं। मान लीजिए रामू किसान के सामने हल, फावड़ा, खुर्पी आदि रक्खी हैं और उससे कहा गया कि वह कुछ मोल ले ले। रामू सोचेगा कि मेरे पास इतना रुपया तो है नहीं कि दो बैल और खरीदूँ। इसलिए हल को मोल लेना ठीक नहीं। फावड़ा भी रामू के पास कई हैं इसीलिए वह फावड़े की भी ज़रूरत

समझता। लेकिन उसके पास खुर्पा नहीं है। और खेत में घास-फूस उखाड़ कर फेंकने के लिए उसे खुर्पी की ज़रूरत है। अतएव वह खुर्पा को मांग ले लेगा।

इसी तरह हम उत्पत्ति में भी करते हैं। हम किसी वस्तु विशेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता को ही उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए हल को ले लीजिये। बढ़ई अपने औजारों की मदद से लकड़ी को काट छाँट कर उसे हल का रूप देता है। ऐसा करने से लकड़ी की उपयोगिता बढ़ गई। काम आते आते कई वर्षों के बाद हल टूट जाता है। उसकी उपयोगिता जाती रहती है। लकड़ी पड़ी रहती है पर हल काम का नहीं रहता।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

हम ऊपर कह आए हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न भिन्न होती है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसी मनुष्यों के लिए एक वस्तु की उपयोगिता एक दशा में कुछ और हो सकती तो दूसरी दशा में कुछ और। उदाहरण के लिए मान लो तुमको खूब ज़ोर से भूख लग रही है। उस समय रोटी तुम्हारे लिए बहुत बड़ी उपयोगिता रखती हैं। पर एक रोटी खा लेने के बाद तुम्हारी भूख कुछ कम हो जाती है और दूसरी रोटी की उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कि पहली रोटी की थी। तीसरी रोटी की उपयोगिता दूसरी से भी कम होती है। अब अगर तीन रोटी से तुम्हारा पेट भर चला हो तो तुम सोचोगे कि चौथी रोटी ली जाय या नहीं। मान लिया तुमने चौथी रोटी ले ली। इसको खाने से तुम्हारा पेट बिलकुल भर गया। अब अगर कोई तुम्हारे आगे दो चार रोटियाँ और डाल दे तो तुम्हारे लिए उनका मूल्य नहीं के बराबर है। चूँकि पहली चार रोटियों से तुम्हारे पेट को पूरा संतोष मिल चुका इसलिए तुम पाँचवीं व छठीं रोटी को बिल्कुल नहीं खाओगे। उपयोगिता के घटने का एक बड़ा अच्छा उदाहरण मिलता है जब कोई मथुरा का चौबे भोजन करने बैठता है। जब वह खाकर उठने लगता है तो आप कहते हैं कि चौबे जी एक लड्डू और ले लीजिए। चौबे महाराज सिर हिला देते हैं। इस पर आपका दोस्त हरी

कह उठता है कि चौबे जी एक लड्डू खा लो तो एक आना पैसा देंगे। पैसे के लोभ में चौबे लड्डू लेकर खा जाते हैं। जब वह उठने लगते हैं तो अबकी बार आपका दूसरा मित्र श्याम कहता है कि महाराज एक लड्डू और ले लो तो मैं आपको एक दुअन्नी दूँ। महाराज राजी हो जाते हैं। इसी प्रकार तीसरे लड्डू पर चौबे जी को चार आने और चौथे पर आठ आने दिए जाते हैं। पाँचवें लड्डू के लिए एक रुपया इनाम रक्खा जाता है लेकिन इस बार पेट जवाब दे देता है। चौबे जी ने अब तक जो चार लड्डू खाए उसकी उपयोगिता पहले खाए भोजन से कहीं कम थी। परन्तु उनकी उपयोगिता में जो कमी होती वह पैसों की उपयोगिता के कारण पूरी हो जाती थी और चौबे महाराज का पेट किसी तरह ठूँस-ठास कर लड्डू को स्थान दे देता था। लेकिन अब पेट एक दम भर गया। और चौबे महाराज उसे बिलकुल नहीं खा सकते। इसलिए एक छोड़ अगर उन्हें दस रुपया भी दिया जाय तो वे उस पाँचवें लड्डू को न खायेंगे।

अर्थशास्त्र के हिसाब से ऊपर दिये गए उदाहरण में रोटी खाने वाले के लिये रोटियों की सीमान्त उपयोगिता चौथी रोटी की उपयोगिता के बराबर है। इसी प्रकार यदि मनोहर के पास बीस आम हों तो आमों की सीमान्त उपयोगिता बीसवें आम की उपयोगिता के बराबर होगी। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि आमों की सीमान्त उपयोगिता marginal utility और कुल उपयोगिता में फ़र्क़ है। कुल उपयोगिता तो बीसों आमों की उपयोगिता के जोड़ के बराबर है, लेकिन सीमान्त उपयोगिता केवल अन्तिम आम की उपयोगिता के बराबर होती है। अगर मनोहर के पास एक ही आम होता तो कुल उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाती। परन्तु जैसे जैसे वस्तु की संख्या या परिमाण बढ़ता जायगा वैसे उनकी सीमान्त तथा कुल उपयोगिता के बीच का फ़र्क़ भी बढ़ता जायगा।

मूल्य (Value)

मान लो बाज़ार में तुमने गेहूँ और चना दोनों बिकते हुए देखे। और तुम दोनों को खरीदना चाहते हो। अब अगर तुम्हारे हिसाब से गेहूँ की उपयोगिता चने से दुगुनी है तो तुम एक रुपये में जितना गेहूँ लोगे उसी रुपए में

उससे दुगुना चना माँगोगे। उदाहरण के लिए अगर तुम एक दफ़ए में दस सेर गेहूँ लोगे तो बीस सेर चना माँगोगे। यदि कहीं तुम गेहूँ बेचने वाले होते और श्याम चने वाला तो तुम श्याम से फी सेर भर गेहूँ की जगह दो सेर चने माँगते। और यदि श्याम भी एक सेर गेहूँ के बदले दो सेर चना देने को राज़ी हो जाय तो दो सेर चना का मूल्य एक सेर गेहूँ समझा जायगा। इसी तरह अगर तुम अपनी गाय को बेंच बकरियाँ ख़रीदना चाहो और अगर तुम्हारी निगाह में गाय की उपयोगिता बकरियों से तिगुनी हो तो तुम एक गाय के बदले में तीन बकरियाँ माँगोगे। जब किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु से अदला-बदली की जाती है तब पहली वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी दी जाय इसका निश्चय उपयोगिता द्वारा ही होता है। ऐसी हालत में अर्थशास्त्र के अनुसार एक गाय का मूल्य तीन बकरियाँ हुईं और एक सेर गेहूँ का मूल्य हुआ दो सेर चना।

मूल्य (Value) का जो अर्थ ऊपर दिया गया है उससे क्या नतीजा निकलता है? इसके मतलब होते हैं कि यदि एक चीज़ का मूल्य बढ़ जायगा तो दूसरी का कम हो जायगा। मान लीजिये कि पहले दो आम का मूल्य होता था एक ख़रबूज़ा। अब यदि किसी तरह आम की फसल आधी हो तो आम का मूल्य दुगुना हो जायगा यानी दो आम के बदले दो ख़रबूजे मिलेंगे या एक आम के बदले एक ख़रबूज़ा मिलेगा। आम का मूल्य तो दुगुना हो गया पर ख़रबूजे के मूल्य का क्या हाल है। जहाँ पहले एक ख़रबूजे के लिये दो आम मिलते थे वहाँ अब एक ही आम मिलता है अर्थात् ख़रबूजे का मूल्य आधा हो गया। एक बात और। यदि कहीं आम की फ़सल न बिगड़ती पर ख़रबूजों की संख्या दुगुनी हो जाती तब भी वही बात होती जो आमों के आधे रह जाने पर हुई थी। अर्थात् एक ख़रबूजे के लिये एक ही आम मिलता।

कीमत (Price)

पुराने ज़माने में जबकि रुपये-पैसे का चलन नहीं था तब एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती थी। उस समय मूल्य का बोलबाला था। परन्तु उसमें कठिनाई होती थी। अगर सुमेर को किसी वस्तु की ज़रूरत है तो उसे

जिसके पास वह चीज़ हो जिसकी सुमेर को
ऐसे मनुष्य को ढूँढ़ना पड़ता था जिसके पास वह चीज़ हो जिसकी सुमेर को आवश्यकता होनी
आवश्यकता है। इतना ही नहीं उस मनुष्य को ऐसी वस्तु की आवश्यकता रहता कि हर एक
चाहिये जो सुमेर के पास है। इसके अलावा यह भी झगड़ा रहता कि हर एक कम्बल की
अपनी अपनी चीज़ बदलने को तैयार हो। मान लो सुमेर को एक कम्बल की
ज़रूरत थी और कुबेर जिसके पास कम्बल है सुमेर का गर्म कोट लेना चाहता
है। लेकिन अगर सुमेर कोट देने को राजी नहीं हो तो अदला-बदली होना
असम्भव है। जब से रुपये पैसे का उपयोग होने लगा तब से ये सब बाधाएँ
हट गईं। अगर तुम अपना सेर भर घी बेच कर चार सेर शक्कर खरीदना
चाहते हो, तो केवल इस बात की ज़रूरत है कि तुम किसी के हाथ अपने घी
को एक रुपये में बेच दो। और उस रुपये को जाकर शक्कर खरीद लो।
ऐसी हालत में सेर भर घी का मूल्य हुआ एक रुपया और सेर भर शक्कर के
चार आने। जब किसी वस्तु की इकाई का मूल्य इस प्रकार रुपये पैसों में
लगाया जाता है, तो वह मूल्य वस्तु की उस इकाई की क़ीमत कहलाता है।
अगर हम एक गाय साठ रुपये में बेचते हैं तो गाय की क़ीमत हुई साठ
रुपया। लेकिन अगर हम उस को तीन बकरियों के एवज में बेचते हैं तो तीनों
बकरियाँ क़ीमत न कहला कर गाय का मूल्य कहलाती हैं। तो मोटी बात
यह है कि किसी चीज़ के बदले में जो चीज़ मिले वह उसका मूल्य है और
उसके बदले में जो रुपया मिले वह उसकी क़ीमत है।

आय (Income)

अब तक हम और किसी वस्तु की उपयोगिता, मूल्य और क़ीमत के बारे
में बातें कर रहे थे। मान लो मुरली अनाज की दूकान रखता है। वह हर
समय रुपये के बदले गेहूँ, चना, मटर, जौ, बाजरा, अरहर, मूँग, चावल
आदि अन्न बेचा करता है। बेचने से जो रुपये आते हैं उन्हें वह एक कापी
पर लिखता जाता है। महीने के आखिर में जोड़ लगाने से उसे मालूम पड़
जाता है कि महीने भर में उसे कितने रुपये मिले। इस आमदनी के योग से
अगर हम वह रक़म निकाल दें जिसका कि मुरली ने अनाज खरीदा था तो
बची हुई रक़म मुरली की आय कहलाएगी। इसी प्रकार क्लर्क साहब महीने
भर काम करने के बाद पहली तारीख को अपना वेतन लेकर घर जाते हैं।

परन्तु यह वेतन है क्या? यह है क्लर्क साहब की महीने भर के काम की क़ीमत और अर्थशास्त्र में ऐसी क़ीमत को आय कहते हैं। मज़दूरों को अपनी मजदूरी रोजाना, हर हफ्ते, पन्द्रहवें दिन अथवा महीने पर मिलती है। महीने भर में उन्हें कुल जितना रुपया मिलता है वही उनकी माहवारी आय होती है। आय रोजाना से लेकर सालाना तक हो सकती है। अर्थशास्त्र में आय से उस रकम का बोध होता है जो कि कोई मनुष्य किसी निश्चित समय में कमाता है। समय के किसी परिमाण की आय निकाली जाय यह आय निकालने वाले की इच्छा पर निर्भर रहती है। अधिकतर आय से लोगों का मतलब माहवारी आय से रहता है। लेकिन कहीं कहीं सालाना आय रिपोर्ट करनी पड़ती है। तुम्हें मालूम है कि भारत की सरकार तुम्हारी आय के ऊपर आयकर या इन्कमटैक्स लगाती है। इस आय के निकालने में मकान के किराये और बैंक में जमा सूद से लेकर कारबार का मुनाफ़ा तक इस आय में जोड़ लिये जाते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—'विनिमय साध्य' वस्तु किसे कहते हैं? उदाहरणों सहित समझाइये। क्या ज्ञान विनिमय साध्य है?

२—निम्नलिखित वस्तुएँ किन दशाओं में धन समझी जावेंगी? गंगा-जल, यजमानी, रेल का टिकट, घर का कूड़ा-कचरा, कागजी मुद्रा, नोट, मनुष्य का शरीर, अस्पताल सार्वजनिक, पुस्तकालय।

३—कुछ ऐसी वस्तुओं का उदाहरण दीजिये जिनकी उपयोगिता किसी मनुष्य के लिये समय के साथ बदलती जाती है।

४—निम्नलिखित वाक्यों की ग़लतियों को दुरुस्त कीजिये :—

(अ) २० सेर गेहूँ की कीमत २) है।

(ब) पाँच सेर चावल की कीमत दस सेर गेहूँ है।

(स) ५ गायों की कीमत १२५ रुपया है।

(ड) एक सेर चना का मूल्य ६ पैसे हैं।

(क) एक गज़ कपड़े का मूल्य तीन आना है।

५—अपने कुटुम्ब की आमदनी का एक मास का हिसाब लिखिये और यह बतलाइये कि किन-किन जरियों से कितनी आमदनी प्राप्त हुई ?

६—यदि कोई मनुष्य अपने निजी मकान में रहता है तो उसको अपने मकान से वर्ष भर में क्या आमदनी होती है ?

७—आर्थिक उन्नति के क्या साधन हैं ? ग़रीब लोग अधिक सुखी कैसे हो सकते हैं ?

८—धनी लोग भी कभी दुखी पाये जाते हैं। इसके क्या कारण हैं ?

९—सादगी जीवन का सुख की वृद्धि से क्या सम्बन्ध है ?

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति (Production)

उपयोगिता-वृद्धि (Increase in utility)

प्रत्येक मनुष्य को भोजन, कपड़ा आदि की ज़रूरत पड़ती है। इनके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता। अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उसे तरह-तरह की वस्तुओं को बनाना या तैयार करना पड़ता है। मिल जुल कर रहने वाले किसी भी मनुष्य को देख लो। वह हर समय इस बात का उपाय करता है कि उसे किसी प्रकार धन मिले। धन की उत्पत्ति करने के लिए आदमी दिन भर मेहनत करके जंगल से लकड़ी या घास काट कर लाता है, दूसरा किसी के यहाँ नौकरी करता है, तीसरा दूकानदार है तो चौथा डाक्टर। यह तो हम आपको पहले ही अध्याय में बता चुके हैं कि अर्थशास्त्र में उत्पत्ति का क्या मतलब होता है। और यह भी कह चुके हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार की जा सकती है। कोई वस्तु उत्पन्न करने के मतलब होते हैं किसी प्रकार की उपयोगिता को बढ़ाना। कुम्हार मिट्टी के बर्तन बना कर मिट्टी की उपयोगिता में वृद्धि करता है। बढ़ई लकड़ी को काट छाँट कर मेज़ कुर्सी बनाता है। ऐसे करने से लकड़ी की और उपयो-

बन जाती है। इसी प्रकार के रूप परिवर्तन द्वारा चना, मटर, गेहूँ आदि अनाज खेती से पैदा किए जाते हैं। खेती-बाड़ी में अन्न पैदा करने का काम तो स्वयं प्रकृति करती है। मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी वग़ैरह का इंतजाम करता है। परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। जहाँ जो समान अधिक मात्रा में होता है वहाँ से जब उन्हें उन जगहों में ले जाया जाता है जहाँ कि उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर को अपने खान के पास या लकड़ियों की जंगल में उपयोगिता बहुत कम होती है। लेकिन जब येही चीज़ें रेल या मोटर द्वारा बाज़ार में पहुँचा दी जाती हैं तो इनकी उपयोगिता बढ जाती है। इसी प्रकार अन्न, साग, फलों को खेतों व बागों से बाज़ार में पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा रही है। जब हम किसानों से अनाज मोल लेकर बाज़ार में किसी घर-गृहस्थी वाले आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढ़ती है। क्योंकि किसान के अधिकार में तो इतना अनाज है कि उसके लिए उसकी उपयोगिता कम है लेकिन घर-गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिए अनाज चाहता है और इसलिए उसके अधिकार में पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उपयोगिता वृद्धि में समय भी सहायता करता है। नए चावल की प्रायः बहुत कम कदर होती है। लेकिन अगर नया चावल साल दो साल रख छोड़ा जाय तो उसमें कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी तरह माघ-पूस में बरफ को कोई नहीं पूछेगा। अगर उसे किसी तरह गरमियों तक रख सकें तो उसकी बड़ी कदर होगी।

यह तो हमने देख लिया कि रूप, काल, स्थान या अधिकार परिवर्तन के द्वारा उत्पत्ति या उपयोगिता वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन परिवर्तनों के करने में हमको किस शक्ति का सहारा ढूँढना पड़ता है? कुछ समय पहले तक धन की उत्पत्ति के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत मानी जाती थी:— भूमि, (Land) मेहनत (श्रम) (Labour) और पूंजी (धन) (Capital)। चाहे जिस ढंग से धन उत्पन्न या पैदा किया जाय इन तीनों साधनों की आवश्य- । पड़ेगी। इनके अलावा आज कल दो शक्तियाँ और मानी जाती हैं:—

प्रबन्ध, साहस (Organisation and Enterprise)। इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमें यह देख लेना चाहिए कि कुछ चुने हुए उदाहरणों में ऊपर शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increase in utility) के साधनों को ही लीजिए; इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से होता है। हमारे भारत में ज्यादातर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा, इनमें ऊपर बताए साधन या शक्तियाँ किस प्रकार काम आती हैं? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन? लेकिन ज़मीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नहीं हो सकती। उसके लिए बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है। ये चीज़ें मनुष्य का धन है, लेकिन अब ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिए काम में आने के कारण इनका नाम पूँजी हो जाता है। इससे साफ़ प्रकट है कि खेती करने के लिए भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिए। तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है। दर्जी का काम ले लीजिए। वह कपड़े की काट-छाँट करके कोट सीता है। इसमें उसे सीने के लिए बैठने को स्थान (दुकान या मकान) चाहिये, यह भूमि है। उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमें उसे श्रम करना होता है। फिर उसे कपड़ा, सुई, डोरा आदि चाहिये, तभी तो वह कोट तैयार कर सकेगा। ये चीज़ें वह पहले कमाये हुए धन में बचत करके बचाता है और ये उसकी पूँजी है। इसी तरह से बढ़ई, लोहार, जुलाहे आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है। अतएव तैयार माल में भी भूमि, श्रम और पूँजी तीनों की आवश्यकता पड़ती है।

अब तक हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं किया है। आजकल के मशीन युग में अकेला-दुकेला आदमी धन पैदा करने का काम नहीं करता। सैकड़ों हज़ारों आदमी एक ही कारखाने में काम करते नज़र आते हैं। ऐसी हालत में इस बात की बड़ी ज़रूरत होती है कि

बन जाती है। इसी प्रकार के रूप परिवर्तन द्वारा चना, मटर, गेहूँ आदि अनाज खेती से पैदा किए जाते हैं। खेती-बाड़ी में अन्न पैदा करने का काम तो स्वयं प्रकृति करती है। मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी वग़ैरह का इंतज़ाम करता है। परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। जहाँ जो सामान अधिक मात्रा में होता है वहाँ से जब उन्हें उन जगहों में ले जाया जाता है जहाँ कि उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर को अपने खान के पास या लकड़ियों की जंगल में उपयोगिता बहुत कम होती है। लेकिन जब येही चीज़ें रेल या मोटर द्वारा बाज़ार में पहुँचा दी जाती हैं तो इनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी प्रकार अन्न, साग, फलों को खेतों व बागों से बाज़ार में पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा रही है। जब हम किसानों से अनाज मोल लेकर बाज़ार में किसी घर-गृहस्थी वाले आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढ़ती है। क्योंकि किसान के अधिकार में तो इतना अनाज है कि उसके लिए उसकी उपयोगिता कम है लेकिन घर-गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिए अनाज चाहता है और इसलिए उसके अधिकार में पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उपयोगिता वृद्धि में समय भी सहायता करता है। नए चावल की प्रायः बहुत कम कदर होती है। लेकिन अगर नया चावल साल दो साल रख छोड़ा जाय तो उसमें कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी तरह माघ-पूस में बरफ को कोई नहीं पूछेगा। अगर उसे किसी तरह गरमियों तक रख सकें तो उसकी बड़ी कदर होगी।

यह तो हमने देख लिया कि रूप, काल, स्थान या अधिकार परिवर्तन के द्वारा उत्पत्ति या उपयोगिता वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन परिवर्तनों के करने में हमको किस शक्ति का सहारा ढूँढना पड़ता है? कुछ समय पहले तक धन की उत्पत्ति के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत मानी जाती थी:— भूमि, (Land) मेहनत (श्रम) (Labour) और पूंजी (धन) (Capital)। चाहे जिस ढंग से धन उत्पन्न या पैदा किया जाय इन तीनों साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। इनके अलावा आज कल दो शक्तियाँ और मानी जाती हैं:—

प्रबन्ध, साहस (Organisation and Enterprise) । इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमें यह देख लेना चाहिए कि कुछ चुने हुए उदाहरणों में ऊपर शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increase in utility) के साधनों को ही लीजिए: इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से होता है। हमारे भारत मे ज्यादा-तर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा, इनमें ऊपर बताए साधन या शक्तियाँ किस प्रकार काम आती हैं? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन? लेकिन ज़मीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नहीं हो सकती। उसके लिए बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है। ये चीज़ें मनुष्य का धन है, लेकिन अब ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिए काम में आने के कारण इनका नाम पूँजी हो जाता है। इससे साफ़ प्रकट है कि खेती करने के लिए भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिए। तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है। दर्ज़ी का काम ले लीजिए। वह कपड़े को काट-छाँट करके कोट सीता है। इसमें उसे सीने के लिए बैठने को स्थान (दुकान या मकान) चाहिये, यह भूमि है। उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमें उसे श्रम करना होता है। फिर उसे कपड़ा, सुई, डोरा आदि चाहिये, तभी तो वह कोट तैयार कर सकेगा। ये चीज़ें वह पहले कमाये हुए धन में बचत करके बचाता है और ये उसकी पूँजी है। इसी तरह से बढ़ई, लोहार, जुलाहे आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है। अतएव तैयार माल में भी भूमि, श्रम और पूँजी तीनों की आवश्यकता पड़ती है।

अब तक हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं किया है। आजकल के मशीन युग में अकेला-दुकेला आदमी धन पैदा करने का काम नहीं करता। सैकड़ों हज़ारों आदमी एक ही कारखाने में काम करते नज़र आते हैं। ऐसी हालत में इस बात की बड़ी ज़रूरत होती है

ऐ आदमी इन हज़ारों आदमियों के काम की देख-रेख करे और यह ...य करे कि कितने आदमी कौन सा-काम करें, किस प्रकार की भूमि, श्रम और पूँजी लगाई जाय और कहाँ से कच्चा माल मँगाया जाय इत्यादि। इन सब बातों के लिये प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार आज-कल अमेरिका आदि देशों में खूब बड़े-बड़े खेतों में खेती की जाती है। वहाँ पर भी यह देखना पड़ता है कि खाद कहाँ से मँगाई जाय। कितनी खाद की ज़रूरत है। पानी का कैसे इन्तजाम किया जाय इत्यादि।

इसके अलावा एक ऐसे व्यक्ति-समूह की ज़रूरत पड़ती है जो कारखाने में होने वाले या बड़े परिमाण से की जाने वाली खेती से आने वाले लाभ हानि को सहने का बीड़ा उठाये। मज़दूर अपना वेतन ले लेते हैं। प्रबन्ध करने वाला भी अपनी तनख्वाह लेता है। भूमि का मालिक केवल लगान मात्र चाहता है और पूँजी देने वाला सूद। इनमें से किसी को हानि लाभ से कोई मतलब नहीं रहता। कारखाने के चलने या डूबने का जोखिम उस आदमी या कम्पनी पर रहता है जो उसको चलाने का साहस करती है तथा जोखिम उठाती है।

भूमि (Land)

यह तो हमने देख लिया कि उत्पत्ति के पाँच साधन होते हैं, भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। अब इन पाँचों पर अलग-अलग विचार करना भी ज़रूरी है। पहले भूमि को ले लीजिये। आमतौर पर इससे पृथ्वी तल का मतलब निकाला जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में भूमि से हमारा मतलब उन सब शक्तियों से रहता है जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं। इस तरह से खान से निकलने वाले पत्थर, लोहा, सोना आदि, जल, मछली, मोती, वायु, सर्दी, गर्मी, रोशनी, जलवायु आदि सब चीज़ें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। याद रखने लायक दूसरी बात यह है कि प्रकृति का वही हिस्सा भूमि कहलाता है जिसका उत्पत्ति में प्रयोग होता है।

सब ज़मीन एक सी नहीं होती। कोई बहुत उपजाऊ होती है, कोई कम और कोई बिल्कुल ही नहीं। किसी जमीन की मिट्टी चिकनी होती है अर्थात् उसमें बहुत बारीक कण होते हैं, किसी पृथ्वी में बड़े कण रहते हैं। वह बालूदार

कहलाती है। चिकनी और बालूदार मिट्टी के अधिक या कम होने से ही खेतों की मिट्टी कई तरह की हो जाती है। जहाँ तीन भाग चिकनी मिट्टी और एक भाग बालू हो वहाँ खेती अच्छी होती है। बालू का हिस्सा जैसे जैसे बढ़ता जाता है जमीन कम उपजाऊ होती जाती है। नदी या तालाब के किनारे उस जमीन में जहाँ बरसात में पानी भर जाता है और फिर सूख जाता है, खेती अच्छी होती है। धान तो ऐसी जमीन में बहुत ही होता है। गाँव के किनारे की ज़मीन में जिसमें प्रायः कूड़ा-करकट फेंका जाता है या खाद डाली जाती है, बहुत अच्छी फसल होती है।

लेकिन ज़मीन की उपजाऊ शक्ति की सीमा होती है। अगर हम किसी उपजाऊ भूमि में खाद वगैरह दिए बिना ही खेती करते चले जायँ तो दो तीन साल के बाद वह कम उपजाऊ हो जायगी। जिस प्रकार मनुष्य को आराम की जरूरत होती है और जिस प्रकार बिना खाने के वह काम करने के लायक नहीं रह जाता उसी तरह ज़मीन को भी ख़ूराक तथा आराम की ज़रूरत पड़ती है। ख़ूराक पहुँचाने के लिए यह बड़ी ज़रूरी है कि जमीन खूब गहरी खोदी जाय तथा उसमें खाद वगैरह खूब डाली जाय। खाद की मदद से ज़मीन अपनी ख़ूराक वायुमण्डल से अच्छी तरह से खींच लेती है। इसके अलावा एक ही समय में किसी खेत में बहुत सी पूँजी तथा मेहनत लगा कर उस खेत की उपज बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसकी भी एक सीमा होती है। जिस तेजी के साथ पूँजी व श्रम बढ़ाया जाता है उस तेजी के साथ उपज नहीं बढ़ती अतएव किसी ज़मीन से पूँजी व मेहनत लगाने की भी हद होती है। व्यापार और कारखानों के काम में भूमि की उपजाऊ शक्ति का ख्याल नहीं किया जाता। कारीगर या कारखाने का मालिक यह देखता है कि ज़मीन किस जगह है। कारीगर अपनी दूकान बाज़ार के करीब खोलना चाहता है। मिल मालिक कारखाने को ऐसे स्थान पर चलावेगा जहाँ से खान और बाज़ार दोनों पास हों। मान लो तुम लोहे का कारखाना खोलना चाहते हो। तुम ऐसी जगह ढूँढोगे जहाँ से लोहे की खान भी पास हो और तैयार माल को बाज़ार में पहुँचाने का सुभीता भी हो। इन्हीं कारणों से बड़े बड़े शहरों में भूमि का मूल्य या किराया बहुत अधिक होता है।

श्रम (Labour)

यह तो हुई भूमि की बात। अब श्रम को लीजिए। किसान खेती करने में स्वय भी मेहनत करता है और बैल से भी काम लेता है। लेकिन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बैल के कार्य को श्रम में नहीं गिनते। श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की हुई मेहनत से रहता है। मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए फुटबाल, हाकी वगैरह खेल खेलता है। ऐसे खेलों मे की गई मेहनत किसी का धन नहीं पैदा करती। अतएव इसकी गिनती भी श्रम में नहीं की जाती। अब अगर आपसे कोई पूछे कि श्रम से क्या समझते हो तो आपको कहना चाहिए कि श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की गई उस मेहनत से रहता है जो कि किसी धन की उत्पत्ति में लगाई जाती है। श्रम दो तरह के होते हैं:—शारीरिक व मानसिक। कुली, मज़दूर, लोहार, बढ़ई आदि शारीरिक श्रम करते हैं लेकिन डाक्टर, वकील, जज, मास्टर वगैरह मानसिक श्रम करते हैं। कुछ लोग दोनों तरह के श्रम करते हैं परन्तु अर्थशास्त्र मे श्रम के इस भेद को महत्त्व नहीं दिया जाता। अगर कोई भेद माना जाता है तो वह उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बीच में होता है। मनुष्य किसी इच्छा की पूर्ति के लिए जो मेहनत करता है वह उत्पादक कहलाती है। उत्पादक और अनुत्पादक मेहनत को साफ़ करने के लिए मान लीजिए की कोई आदमी बिना मतलब ही एक स्थान की मिट्टी खोद कर दूसरे स्थान पर जमा करता है। ऐसा श्रम अनुत्पादक कहलाएगा। हाँ, अगर पहले स्थान पर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा हो और दूसरे पर गड्ढा हो तो वह श्रम उत्पादक गिना जायगा। क्योंकि ऐसा करने से गड्ढा पट गया और किसी के उसमे गिर जाने का डर जाता रहा। अस्तु, उत्पादक श्रम के दो भाग किए जाते हैं। बढ़ई लकड़ी से हल बनाता है किसान खेत में अनाज पैदा करता है और लोहार लोहे से चाकू बनाता है। इस प्रकार का श्रम प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम कहलाता है। लेकिन जंगलों से लकड़ी लाने में जो श्रम लगता है अथवा पण्डित जी चेलों को पढ़ाने में जो मेहनत करते हैं वह परोक्ष उत्पादक कहलाता है क्योंकि उससे किसी वस्तु विशेष की उत्पत्ति नहीं होती।

श्रम की उपयोगिता (Utility of Labour)

जिस प्रकार सब भूमि एक-सी उत्पादक नहीं होतीं उसी तरह सब श्रम एक-से उत्पादक नहीं होते। श्रम की उत्पादकता कई बातों के ऊपर निर्भर रहती है। मेहनत करने वाला अगर मज़बूत, शिक्षित और ट्रेनिंग पाए हुए है तो उसकी उत्पादक शक्ति अधिक होगी। कार्यक्षमता आदमी को मिलने वाले खाने, उसके रहने के स्थान की आबहवा आदि बातों से सम्बन्ध रखती है; इसके अलावा यदि मज़दूर गुलाम की तरह काम करते हैं तो उनका श्रम कम उत्पादक हो जाता है। इसीलिए कारखानों में अच्छे कारीगरों और मज़दूरों को हिस्सेदार बना लेते हैं। इसी प्रकार खेती में हिस्सेदार होते हैं। अर्थात् खेत में काम करने वालों का हिस्सा बंध जाता है। इससे काम करने वाले मन लगाकर काम करते हैं और अधिक से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। चतुरता और बुद्धिमानी भी श्रम को और उत्पादक बनाती है। एक मामूली बढ़ई जिस लकड़ी से एक भद्दा-सा बक्स बना कर तीन चार रुपए को बेचता है, एक चतुर बढ़ई उसी से एक अच्छी अलमारी बना कर बेचने से दस पंद्रह रुपए प्राप्त कर लेता है। जो श्रमजीवी बुद्धिमान नहीं हैं, जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार संपत्ति की वृद्धि करनी चाहिए, उनका श्रम बहुत कम उत्पादक होता है। उदाहरण के लिए इस देश के मूर्ख और कम बुद्धि वाले बढ़ई, लोहार, कुम्हार और जुलाहे को ले लीजिए। ये अब भी उसी प्रकार काम करते हैं जिस प्रकार हज़ारों वर्ष पहले होता था। यदि ये बुद्धिमान् तथा पढ़े लिखे होते तो दूसरे देशों की बनी हुई अच्छी अच्छी चीज़ों को देख कर ये भी वैसे ही वस्तुएँ बनाने के उपाय सोचते।

श्रम-विभाग (Division of labour)

श्रम की उत्पादकता के संबंध में एक बात और जानने योग्य है। पुराने ज़माने में आदमी अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वयं ही सब काम करता था। वही झोंपड़ी बनाता, वही मछली मारता, वही तीर और धनुष बनाता और वही पहनने के लिये जानवरों को मार कर उनकी खाल खींचता। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मनुष्य ने परिवार बसा

लिया और कई परिवार मिल कर गाँवों में रहने लगे। इसके साथ ही इस बात का ख्याल हुआ कि यदि एक आदमी एक ही काम करे तो और भी अच्छा हो। अतएव एक आदमी केवल अन्न पैदा करता है, एक केवल कपड़ा तैयार करता है इत्यादि। इस प्रकार गाँव के किसान, लकड़हारे और जुलाहे आदि का काम अलग-अलग हो जाता है। जैसे जैसे उन्नति हुई एक एक पेशे के कई कई भाग होने लगे कपड़ा तैयार करने के लिये एक आदमी केवल कपास पैदा करता है, दूसरा कपास को ओटता है अर्थात् रुई से बिनौले अलग करता है, तीसरा सूत कातता है और चौथा केवल कपड़ा बुनता है। इसके बाद इन भागों के भी भाग किये जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले श्रम के बटवारे को श्रम-विभाग कहते हैं। श्रम-विभाग हो जाने से पहले तो कोई आदमी बड़ी जल्दी किसी विभाग का काम सीख सकता है। इसके अलावा श्रम विभाग के अन्तर्गत एक ही काम करते आदमी खूब होशियार हो जाता है। फिर प्रत्येक विभाग में की जाने वाली क्रियाएँ इतनी सरल हो जाती हैं कि उनके करने के लिये मशीन का भली भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इन सबका नतीजा यह होता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति करने में खर्च कम पड़ने लगता है। परन्तु श्रम-विभाग से कुछ नुकसान भी है। एक ही काम को करते करते वह काम नीरस-सा लगने लगता है। उस काम के करने में फिर मन नहीं लगता। यही नहीं यदि वह चाहे कि अब किसी दूसरे के पेशे को अख्तियार कर ले तो वह ऐसा नहीं कर सकता। तीसरे इसके कारण उसे अपने शरीर के किसी एक अंग का ही अधिक उपयोग करना पड़ता है। फलतः उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। कुछ भी हो श्रम-विभाग के कारण श्रमी भारी और दुखदायक कामों के करने से बच जाते हैं और उन्हें अब सप्ताह में केवल ४८-६० घंटे तक काम करना पड़ता है। बाकी समय वे अपनी शिक्षा, मनोरंजन और उन्नति के लिये लगा सकते हैं।

पूँजी (Capital)

हम कह आए हैं कि किसी वस्तु की उत्पत्ति में धन की भी जरूरत पड़ती है। उत्पत्ति के कार्य में जो धन लगाया जाता है उसे हम पूँजी

कहते हैं। नोट करने लायक बात यह है कि सब धन पूँजी नहीं कहलाता। उसका वही हिस्सा पूँजी के नाम से पुकारा जायगा जो और सम्पत्ति पैदा करने के काम में आवेगा। उदाहरण के लिये यदि कोई किसान बैठा बैठा अनाज खर्च करता है लेकिन काम नहीं करता, तो उसका अनाज रूपी धन पूँजी नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर वह खाने के साथ साथ खेती भी करता जाता है तो जो अन्न वह खाता है वह पूँजी स्वरूप है। खेत में बीज बोने के दिन और जब अनाज कट कर किसान के घर में आता है इस बीच में कई महीने गुज़र जाते हैं। तब तक किसान को खाने-पीने को चाहिये। मज़दूरी चाहिये। हल, बैल आदि चाहिये। पहनने को कपड़े, रहने को घर तथा औज़ार वग़ैरह भी चाहिये। ये सब चीज़ें पहले से ही इकट्ठी करनी पड़ती हैं। इनमें अन्न, वस्त्र, बैल-बधिया, हल फाल, घर द्वार सब कुछ आगया और इन सबकी गिनती पूँजी में करनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति पैदा करने के पहले पूँजी लगानी या खर्च करनी पड़ेगी। पूँजी दो तरह से खर्च की जाती है। किसान जो बीज बोने के काम में लाता है वह एक ही बार में खर्च हो जाता है। वह जिस पानी से खेत को सींचता है उसका वह दूसरी बार उपयोग नहीं कर सकता। बढ़ई जिस लकड़ी का हल बनाता है वह फिर उसके काम की नहीं रहती। लोहार जिस लोहे की खुर्पी गढ़ता है वह बिना तोड़े दूसरी चीज़ बनाने के लिए काम नहीं लाई जा सकती। कहने का मतलब यह है कि कुछ पूँजी का एक हिस्सा हमेशा के लिये एकदम खर्च हो जाता है। इस हिस्से को चल पूँजी कहते हैं। दूसरी ओर किसान बार बार उन्हीं बैलों, हल, फावड़ा, कुदाली, खुर्पी आदि से काम लेता है। बढ़ई चीज़ें बनाने के लिये बसूली, रुखना, आरी आदि से काम लेता है। इसी तरह लोहार का हथौड़ा, घन, धौंकनी वग़ैरह बहुत दिन तक चलते हैं। इन वस्तुओं में खर्च की हुई पूँजी को अचल पूँजी कहते हैं।

पूँजी के उपयोग करने के ढंग पर उसकी उत्पादक शक्ति निर्भर रहती है। यदि बुद्धिमानी के साथ पूँजी लगाई जाती है तो अधिक सम्पत्ति पैदा होगी अन्यथा कम। यदि कोई जमीन बलुई है तो उसमें आप चाहे जितना खाद डालिए और चाहे जितना पानी दीजिए, गेहूँ की पैदावार कभी अच्छी

न होगी। और आपने जो पूँजी उनमें लगाई है उनका आपको पूरा पूरा बदला नहीं मिलेगा। परन्तु उसी पूँजी को अगर आप किसी उपजाऊ ज़मीन में लगाते तो उसकी उत्पादक शक्ति अवश्य बढ़ जाती। कहने का मतलब यह कि खेती या व्यापार में जो पूँजी लगाई जाती है, उसके लगाने में यदि बुद्धिमानी, तजुरबे और दूरन्देशी से काम लिया जाता है तो पूँजी की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है।

प्रबन्ध (Management)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आजकल के जमाने में भूमि, श्रम और पूँजी के ऊपर प्रबन्ध करने वाले का हाथ रहता है। प्रबन्ध के कार्य और श्रम में अंतर है। श्रमी अधिकतर शारीरिक मेहनत करता है और प्रबंधक को दिमाग़ से ज्यादा काम लेना पड़ता हैं। प्रबंधक उत्पत्ति के लिये सबसे उपयुक्त भूमि को खोजकर उस पर आवश्यक योग्यता वाले मज़दूरों को श्रम-विभाग के नियमों के अनुसार लगाता है। उसे नए-नए लाभदायक औज़ारों को इकट्ठा करना पड़ता है। वह समय के हिसाब से कच्चे माल को सस्ते से सस्ते दामों में खरीदता है। बाज़ार में लोगों की रुचि के मुताबिक माल बनवा कर वह उस माल को अच्छे से अच्छे दामों में बेचता है। कहने का मतलब यह कि प्रबंधकर्त्ता लोगों की रुचि का ख्याल रखकर, भूमि, श्रम और पूँजी को इस हिसाब और रूप से लगाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक वस्तु तैयार हो जाती है और इसको वह सबसे अधिक मुनाफे के हिसाब से बाज़ार में बेच देता है।

इसमें शक नहीं कि जो मनुष्य प्रबन्ध करता है उसमें बहुत से गुण होने चाहिए। वह पढ़ा-लिखा हो, होशियार हो, दूरन्देश हो, लोगों से मिलता-जुलता हो। बाज़ार के भाव व लोगों की बदलती हुई चाह से वाकिफ़ रहे तथा ऐसा विचित्र फैशन का माल तैयार करावे जिसमें मनुष्य उस माल को सबसे अधिक मात्रा में खच दें। प्रबन्धकर्त्ता आज कल के कनवेसिंग के तरीकों से जानकारी रखता है और उपयोगी तरीके से अपने माल का विज्ञापन छपाता है। इसके अतिरिक्त वह अपने माल को देशी और विदेशी बाज़ारों में पहुँचाने के लिए सबसे सस्ते और शीघ्र पहुँचाने वाली सवारी

का प्रबन्ध करता है। प्रबन्धक का एक उद्देश्य रहता है कि सबसे कम खर्च में सबसे अधिक लाभ करते रहना। यदि किसी मशीन का प्रयोग करने से खर्च न कमी होती है तो वह मज़दूरों का ख्याल किये बिना ही मज़दूरों को घटा कर उस मशीन को कारखाने में मँगावेगा।

साहस या जोखिम (Enterprise)

मान लो उत्पत्ति के उपरोक्त चारों साधन मौजूद हैं परन्तु सबको इस बात का शक है कि कार्य शुरू कर देने के बाद उनको भूमि का लगान, श्रम की मज़दूरी, पूँजी पर सूद व प्रबंधक का वेतन मिलेगा या नहीं। ऐसी हालत में उस समय तक उत्पत्ति का कार्य शुरू ही नहीं हो सकता जब तक कोई व्यक्ति साहस करले सब को इस बात का विश्वास न दिला दे कि काम असफल हो जाने पर भी वह लगान, मज़दूरी, वेतन, सूद आदि चुकता कर देगा। लेकिन खाली विश्वासवाला होने से काम नहीं चलना। विश्वास दिलाने वाले की हालत ऐसी होनी चाहिए जिससे सब लोग उसकी बातों का विश्वास कर लें। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि विश्वास दिलाने वाला साहसी मनुष्य धन तथा अपनी बात दानों का धनी हो। इसके अलावा साहसी को बुद्धिमान तथा दक्ष होना चाहिए, जिससे वह योग्य सहायक व प्रबन्धक को ढूँढ सके। यह तो हुए साहसी के गुण। अब देखना चाहिए कि साहसी और उत्पत्ति में हाथ बटाने वाले अन्य व्यक्तियों में कोई भिन्नता है या नहीं। सबसे बड़ा फ़र्क़ यह है भूमि के मालिक का लगान, श्रमी की मज़दूरी, महाजन का सूद, और प्रबंधक का वेतन बँधा हुआ होता है लेकिन साहसी को आने वाली रक़म में यह सब काट कर जो बचता है उसी से संतोष करना पड़ता है। यदि कुछ कमी पड़ती है, तो उसे स्वयं अपनी गाँठ से लगाना पड़ता है। यह सब ठीक है लेकिन तिस पर भी किसी मनुष्य या कम्पनी को साहस का बीड़ा उठाना ही पड़ता है। क्योंकि बिना साहस के न कोई व्यापार चालू किया जा सकता है और न चालू व्यापार बढ़ाया ही जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—उदाहरणों सहित समझाइये कि स्थान परिवर्तन से उपयोगिता की वृद्धि किस प्र— होती है।

२—दूकानदार और व्यापारी, वस्तुओं की उपयोगिता वृद्धि किस प्रकार करते हैं।

३—समय परिवर्तन से उपयोगिता वृद्धि के उदाहरण दीजिये।

४—क्या किसी वस्तु के विज्ञापन से भी उपयोगिता की वृद्धि होती है?

५—क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसके अधिक उपयोग करने से उसके उपयोगिता की वृद्धि होती है!

६—यह समझाइये कि निम्नलिखित व्यवसायों में उत्पत्ति के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है:—

हलवाई की दूकान, कपड़े की दूकान, सूत कातना, कपड़े, बुनना, गोशाला

७—श्रम और मनोरंजन का अंतर समझाइये। यदि कोई व्यक्ति कविता करता है या गाता है तो उसका कविता करना या गाना श्रम कहलायगा या मनोरंजन!

८—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के भेद बतलाइये। यदि कोई विद्यार्थी परिश्रम करने पर भी अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, तो उसका श्रम उत्पादक कहलायगा या अनुत्पादक?

९—पंडा, ज़मींदार, डाक्टर, पुरोहित, साधु, सिपाही इत्यादि के श्रम किन दशाओं में उत्पादक माने जा सकते हैं?

१०—भारतीय मज़दूरों की कार्यक्षमता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है!

११—अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की विशेषताएँ तथा महत्व समझाइये।

१२—क्या आपके गाँव में भूमि किसानों को काफी परिमाण में मिल जाती है! यदि नहीं तो कमी के प्रधान कारण क्या है!

१३—चल और अचल पूँजी के भेद समझाइये। निम्नलिखित उद्योग-धंधों की चल और अचल पूँजी लिखिये :—

गन्ने की खेती, कपास का कारखाना, मिठाई बनाना, खिलौने बनाना।

१४—प्रबन्धक के कार्य का महत्व समझाइये। उसमें किन गुणों की आवश्यकता है?

१५—उत्पत्ति में जोखिम का क्या स्थान है ? निम्नलिखित व्यवसायों में जोखिम कौन उठाता है :—

बटाई पर की जाने वाली खेती, मिश्रित पूँजी वाली कंपनी, कपड़े का कारखाना, चीनी का कारखाना ।

१६—उत्पत्ति के अर्थ समझाइये । उत्पत्ति के साधन बताइये । गाँव के उद्योग धंधों में इन साधनों के महत्त्व की तुलना कीजिए ।

चौथा अध्याय

भारतीय गाँवों की खास पैदावार

पिछले अध्याय में हम यह देख चुके कि उत्पत्ति करने में किन किन शक्तियों से काम लेना पड़ता है । अब इन शक्तियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के बारे में कुछ जानना आवश्यक मालूम पड़ता है । भारत में नब्बे प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में रहते हैं और सत्तर प्रतिशत से उपर मनुष्य खेती करके अपना पेट पालते हैं । अस्तु, यदि खेत के उपज के बारे में ही पहले कुछ विचारा जाय तो अनुचित न होगा । भारत म अधिकतर दो फसलें होती हैं । एक खरीफ कहलाती है और दूसरी रबी । खरीफ की फसल जेठ मास से लेकर कार्तिक तक चलती है और बाकी छै महीनों में अर्थात् कार्तिक से बैसाख तक रबी की फसल होती है ।

संयुक्त प्रांत के इलाहाबाद जिले में खरीफ की फसल बोने के पहले खेत में खाद डाल देते हैं । पानी बरसने के बाद खेत एक बार जोत दिया जाता है । खरीफ की फसल में वहाँ ज्वार, बाजरा, मक्का, सावाँ और कोदों, चावल, अरहर, मूँग, उरद, तिल व तिली बोई जाती है । मक्का और ज्वार के लिए खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं । बाजरे के लिए एक ही बार हल चलाने से काम निकल जाता है । ज्वार और मक्के को तो किसान

बनाकर बोते हैं। बाजरा, उरद और मूँग के बीज को बखेर कर बोते हैं जब वर्षा नहीं होती तब खरीफ में एक दो बार खेतों को सींचने की ज़रूर पड़ती है और नहीं तो खरीफ की फसल के लिए सिंचाई कोई ख़ा ज़रूरी नहीं है। अरहर रबी की फसल के साथ बैसाख में काटी जाती है बाकी सब चीज़ें भादो और कुआर में काट ली जाती हैं। रबी की फस में गेहूँ, चना, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों, गन्ना और ऊख बोया जाता है। जिन खेतों में गेहूँ, जौ, सरसों इत्यादि चीज़ें बोई जाती हैं उनमें खरीफ की फसल नहीं पैदा की जाती बल्कि उन खेतों को एक बार जोत कर बरसात के पहले छोड़ देते हैं। बरसात में उनमें खूब पानी भरता है। गेहूं वगैरा बोने के पहले फिर ये खेत दो तीन बार जोत दिए जाते हैं। रबी में चना, मटर को तो बखेर कर बोते हैं बाकी सब अनाज कूंडों द्वारा बोए जाते हैं। रबी की सब फसलें बैसाख के अखीर तक कट जाती हैं। अस्तु, इस प्रकार से इलाहाबाद जिले में पैदा होने वाले अन्नों में चावल, गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, जौ, मकई मुख्य हैं। दालों में मूँग, उड़द, अरहर, मटर, मसूर आदि पैदा होती है। तेलहन वस्तुओं में तिल, सरसों, व अलसी प्रधान हैं। इसके अलावा गन्ना और आलू की खेती होती है।

भारतीय भूमि की पैदावार की कमी

इलाहाबाद जिले में जो उपज पैदा होती है उनमें मेवा, मसाला, कपास, जूट, सन, चाय, तमाखू व पशुओं के चारे का नाम जोड़ दिया जाय तो भारत की सारी मुख्य उपज गिनती में आ जाती हैं। खेती से उत्पन्न पदार्थों की दृष्टि से हिन्दुस्तान संसार भर में तीसरा गिना जाता है। संसार भर की सन की माँग तो भारत ही पूरी करता है लेकिन गेहूं, कपास, चावल आदि की पैदावार में भी यह अच्छा स्थान रखता है। लेकिन यहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सोचने से यहाँ की उपज कम मालूम पड़ती है। यही नहीं, तुलना करने से पता चलता है कि प्रति एकड़ हम जितना गेहूं, जौ, कपास, गन्ने आदि की उत्पत्ति करते हैं उतनी ही जमीन में उससे कई कई गुना उपज अमेरिका और रूसवाले पैदा करते हैं। हमारे यहाँ फी एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौगुना अमेरिका में और

इससे भी अधिक रूस में पैदा किया जाता है क्योंकि वहाँ पर तो मील और दो दो मील के खेतों में खेती की जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ से आठ से दस गुना और बढ़िया गन्ना जावा और हवाई द्वीप में उगाया जाता है। हमारे यहाँ की रुई की खेती से भी अधिक माल अमेरिका वाले पैदा कर लेते हैं। चाहे जो उपज ले लीजिए हर एक में हम और देशों से पिछड़े हुए पाये जाते हैं। यह बात नहीं कि हमसे भी पिछड़े हुए देश नहीं हैं लेकिन ऐसे देश अभी ताज़े ताज़े ढूँढ निकाले गए हैं अथवा वहाँ भारत की तरह की उपजाऊ ज़मीन नहीं है। और हमें तो अपने यहाँ की तुलना उन देशों से करनी चाहिए जो हमारी ही तरह के हैं।

पैदावार की कमी के कारण

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि आखिर किस कारण से भारत में और देशों की अपेक्षा उपज इतनी कम होती है। यह हम जानते हैं कि खेतों में उत्तम खाद देनी चाहिए, अच्छे बीज बोने चाहिए, उत्तम औज़ारों से खेत को जोतना-बोना चाहिए तथा खेत की सिंचाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। हमारे किसानों को पहले तो पर्याप्त खाद मिलती नहीं। यह कुछ आम रिवाज सा हो गया है कि गोबर की उपली पाथ दी जाती है। ये उपली या कंडे ईंधन की जगह जलाने के काम में लाए जाते हैं। यदि इस गोबर से उपली पाथने की जगह खाद बनाई जाय तो बहुत अधिक फायदा हो। इसके अलावा खाद डालने के पहले किसान खाद को खेतों में पहले से ढेरी लगा कर धूप में छोड़ देते हैं जिससे खाद का बहुत सा तत्व नष्ट हो जाता है। खाद के अलावा किसान जिन बीज़ों को बोते हैं वे स्वस्थ और अच्छी हालत में नहीं होते। फलस्वरूप उपज कम होती है। फिर किसान के बैल और औज़ारों को ही लीजिए। बैल मरियल तथा रोगी होते हैं, उनसे खूब कसकर काम नहीं लिया जा सकता। इसी प्रकार कहीं भारी हलों से काम लिया जाता है तो कहीं हल्के हल से। इसके अलावा हल में खेत खोदने के लिए जो लोहे का फल लगा रहता है वह कहीं अधिक नुकीला होता है और कहीं साधारण। सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि हमारे हल ज्यादा गहराई तक नहीं खोद सकते और न मिट्टी को ही अच्छी तरह पलट सकते हैं

इसलिए जो पौधे उगते हैं उन्हें ऊपर की ही सतह से अपनी खुराक खींचनी पड़ती है। नीचे की ज़मीन ऐसी ही पड़ी रहती है। इससे भी पैदावर अच्छी नहीं होती है। यदि बढ़िया और उन्नत ढग के हलों से काम लिया जाय तो अधिक गहरे खोदे जा सकते हैं। ऐसा करने से नीचे की बढ़िया मिट्टी ऊपर आ जायगी और पैदावर अच्छी हो सकती है।

खेती करने के काम में सिंचाई का स्थान भी काफ़ी ऊँचा है। लेकिन हमारे देश के कितने भागों में तो सिंचाई के पर्याप्त साधन ही नहीं हैं। हमारे संयुक्त प्रांत मे नहरों का इतज़ाम है। नहरों से आबपाशी करने के लिए किसानों को खेत के हिसाब से दाम चुकाने पड़ते हैं। यहाँ पर पानी का बड़ा नुकसान होता है। पहले किसान खेतों में पानी पहुँचाने के लिए जो नालियाँ बनाते हैं वह इतनी बुरी हालत में होती हैं कि पानी फूट फूट कर बाहर निकल जाता है। खेतों में क्यारियाँ नहीं बनाई जातीं तथा सिंचाई ठीक तरह से नहीं होती है। चूंकि नहर से आबपाशी करने की कीमत का पानी के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए ज़रूरत से ज्यादा पानी खेतों में दिया जाता है जिससे खेतों की फसल को बड़ा धक्का पहुँचता है। जिस प्रकार कम सिंचाई से उपज को धक्का पहुँचता है वैसे ही अधिक सिंचाई से भी उपज खराब हो जाती है। यदि उचित परिमाण में थोड़ी कम सिंचाई की जाय तो फसल बहुत अच्छी होवे। और यह ज़रूरी है कि किसान इस बात का ज्ञान प्राप्त करें कि किस फसल के लिए कितने पानी की ज़रूरत है।

जिस तरह से मनुष्य बिना आराम किए लगातार काम नहीं कर सकता उसी प्रकार ज़मीनों से भी लगातार वैसी ही फसल नहीं पैदा की जा सकती। प्रायः जब एक फसल पैदा हो चुकती है तो ज़मीन में कुछ तत्वों की कमी पड़ जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए समय की आवश्यकता होती है अर्थात् फौरन ही यह कमी ठीक नहीं की जा सकती। इसलिए कितने ही एक फसल के बाद उस खेत में कुछ नहीं बोते अर्थात् उसे परती छोड़ देते हैं। ऐसा करने से कुछ महीने में जमीन उन पदार्थों को जो उससे निकल जाते हैं वायु-मंडल द्वारा फिर से खींच कर जमा कर लेती है। यह कार्य तो ठीक है लेकिन इससे ज़मीन बेकार पड़ी रहती है। दूसरे भूमि को केवल

परती छोड़ देने से ही खोए हुए सब तत्त्व वापस नहीं आ जावे। अगर
खाद दी जाय तो इन तत्वों की उचित पूर्ति हो सकती है। खाद देने
का उचित तरीका तो यह होगा की परती छोड़ी हुई भूमि में बराबर दूरी पर
फुट डेढ़ फुट गहरे गड्ढे खोद कर उनमें कूड़ा-कर्कट-गोबर भर भर कर
उन्हें ढक देवे। इससे साल भर में खाद बन कर ज़मीन में मिल जायगी।
लेकिन अब तो विज्ञान के धुरंधर विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला है कि किस
फसल के बाद कौन कौन से तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसका सम्बन्ध फसलों के
हेर फेर से जोड़ा जा सकता है। प्रायः किसान फसलों को हेर फेर से बोते
हैं लेकिन वे उपरोक्त बताए सिद्धान्त को अच्छी तरह से नहीं समझते;
किसी फसल के बाद ज़मीन के सब तत्व तो निकल ही नहीं जाते और न हर
एक फसल से वही तत्व नष्ट होते हैं। इसलिए अगर किसी फसल के बाद
ऐसी फसल बोई जाए जिसमें उन्हीं तत्वों की ज़रूरत पड़े जो कि अभी
ज़मीन में मौजूद हैं तो बहुत अच्छा हो। चूँकि खोए हुए तत्वों से अब
हमारा कोई मतलब नहीं रहता इसलिये ज़मीन उनको अच्छी तरह से वायु
मंडल के द्वारा खींच सकती है। इससे तीसरी बार हम फिर से पहली फसल
को बो सकेंगे।

उदाहरण के लिये मकई के बाद गेहूँ, ज्वार के बाद जौ, मसूर, मटर
वा अलसी, कपास के बाद मकई बोई जा सकती है। गेहूँ के साथ साथ दालें
या तेलहन वस्तुएं बोई जा सकती हैं।

उपज में कमी होने का दूसरा कारण है किसानों में शिक्षा का अभाव।
इसके अलावा वे निर्धन हैं। अतएव वे अच्छी बातों के ऊपर खर्च नहीं कर
सकते। पैसा हो भी तो क्या करे? बिना उपयुक्त शिक्षा पाए वह अच्छी
तरह व्यय नहीं कर सकता। यदि किसान पढ़ा लिखा हो तो उसे यह भली
भाँति समझाया जा सकता है कि कैसी खाद होनी चाहिये, कैसे फसलों के
हेर फेर से परती भूमि छोड़ने की आवश्यकता हटाई जा सकती है या
अधिक पानी डालने से कौन से नुकसान होते हैं।

खेतों का छोटे छोटे और दूर दूर होना

इन बुराइयों के अलावा एक और कमी है। भारतवर्ष में बहुत से खेतों

का क्षेत्रफल एक एक दो दो एकड़ भी नहीं है। कितने किसानों के खेत इससे भी छोटे होते हैं। किसी किसी का क्षेत्रफल तो आधा ही एकड़ होता है। अथवा इससे भी कम। इसके अलावा अनेक किसानों के पास बहुत से खेत होते हैं। लेकिन वह दूर दूर होते हैं। इससे किसानों को बहुत हानि होती है। छोटे खेतों में अच्छे अच्छे हलों और औज़ारों से काम नहीं लिया जा सकता। हलों को खेत में घुमाने में हो बहुत सी भूमि बेकार चली जाती है। इन सब बातों से किसानों में लड़ाई झगड़ा खूब होता है और आए दिन अदालत के दर्शन किए जाते हैं। ऊपर इस बात का भी ज़िक्र आया है कि खेतों का दूर दूर होना भी बुरा है। खेतों के एक जगह न होने के कारण एक खेत से दूसरे खेत में पानी ले जाने में बहुत सा समय व्यर्थ जाता है। जोताई-बोवाई के अवसर पर दो चार घंटे की देर होने से ही नुक़सान का डर रहता है। यदि खेत एक जगह पर हो तो ऐसे समय में देर होने का डर नहीं रहता। फिर सिंचाई के समय एक ही समय में सब खेतों में पानी नहीं दिया जा सकता। अगर कहीं नहरों से पानी लेकर कोई किसान अपने खेत सींचता है तो नहर से पानी लेने में बड़ा खर्च और असुविधा पड़ती है। यदि खेत एक जगह हों और कुएँ से सिंचाई की जाय तो एक ही बार में सब जगह पानी पहुँच जाय। खेतों के दूर रहने से एक ही कुआँ काम नहीं देता और दूर दूर से पानी लाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। फिर यह सबको मालूम है कि जब फ़सल तैयार होने लगती है तो उसकी रखवाली की बड़ी ज़रूरत पड़ती है। यदि रखवाली न की जाय तो चिड़ियाँ, तोते, गाय, बकरी वग़ैरह पशु और पक्षी खेत को साफ़ कर दें। लेकिन अगर किसान का कोई खेत गाँव के इस कोने पर है और कोई उस कोने पर तो रखवाली ठीक तौर पर नहीं की जा सकती। खेतों के एक जगह होने से एक ही आदमी सारे खेत की देख रेख कर सकता है और बहुत से रखवालों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा पैदावार के मारे जाने का डर भी कम हो जाता है।

इसके अलावा खेत पास हों तो एक ही आदमी खेती के बहुत काम सँभाल लेवे। हरवाहे आदि काम करते रहते हैं, अकेला आदमी सब देख-भाल कर लेता है। दूर दूर खेत होने से नोकर ठीक काम नहीं करते और

अकेला आदमी सब जगह समय से ठीक देख नहीं पाता है। इससे खर्च भी अधिक हो जाता है और पैदावार की भी हानि होती है। फिर दूर दूर की दौड़ धूप में शरीर को भी कष्ट होता है। एक जगह खेत होने से शरीर को भी आराम मिलता है। आदमी ही नहीं बैलों को भी आराम मिलता तथा कटाई, ढोवाई इत्यादि में भी आसानी रहती है। और आपस में दूसरे किसानों से होने वाली लड़ाइयाँ भी कम हो जाती हैं।

ऊपर कहे बुराइयों के कारण यह जरूरी है कि ये हानियाँ दूर की जायँ। इसका सीधा सा उपाय यह है कि हरेक गाँव में या कई गाँवों में मिलाकर सब खेतों का मूल्य अंदाजा जाय और एक किसान के खेतों का जितना मूल्य हो उतने उतने मूल्य के खेत एक स्थान मे एक चक में कर दिए जायँ और भविष्य के लिये उनका छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटा जाना बंद कर दिया जाय। जहाँ एक ही परिवार के दो तीन आदमियों के पास कई छोटे छोटे खेत हों, वहाँ पर बेहतर होगा यदि उनमें समझौता करा कर वे खेत एक ही आदमी को दिलवा दिए जायँ। दूसरे आदमियों को उनके हिस्से का रुपया मिल जायगा। कई जगह ऐसा प्रयत्न सफलता पूर्वक किया जा चुका है और दूसरी जगह भी ऐसा ही उपाय किया जा सकता है। सहकारी समितियों द्वारा खेतों की चकबंदी कैसी की जा सकती है यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

गाँवों में बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सब खेतों का क्षेत्रफल इतना कम है कि यदि वे चकबंदी द्वारा एक चक में भी कर दिये जावें तो भी खेती से हानि होना निश्चित है। जिन किसानों के पास तीन चार एकड़ से कम क्षेत्रफल के खेत हैं उनको खेती से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वे उससे अपने कुटुंब का जीवन निर्वाह कर सकें। ऐसे किसानों की संख्या प्रत्येक गाँव में काफी अधिक रहती है। इनकी दशा तो तब ही सुधर सकती है जब गाँव के सब किसान मिलकर एक सहकारी समिति बना लें और सामूहिक रूप से खेती करें। इस प्रकार की सहकारी समिति का संगठन कैसे किया जा सकता है, यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

खेती में क्या करना पड़ता है?

आप हिन्दोस्तान के खेतों की खास फसलें, उनके कम होने के कारण इन कारणों को दूर करने के उपाय तो जान गए। अब हम आपको ५ में यह भी बता देना चाहते हैं कि आखिर खेती करने के लिए करना क्या क्या पड़ता है अथवा भारत के किसान किस प्रकार खेती करते हैं। यह हम शुरू में ही बता चुके हैं कि भारत में अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ़ की फ़सल कहलाती है और दूसरी रबी की। पहली बरसात के शुरू से चल कर दिवाली तक जाती है और दूसरी दिवाली से होली तक में तैयार होती है। अस्तु, वर्षा आरम्भ होने से पहले किसान खेत में जगह जगह खाद की ढेरियाँ लगा देता है। फिर जब पानी दो तीन दिन बरस कर रुक जाता है तब फौरन खेत को जोत दिया जाता है और खाद को फावड़े से फैला कर पटेला चला कर खेत बराबर कर देते हैं। इससे बीज मिट्टी में दब जाते हैं और चिड़िया इन्हें चुग नहीं सकतीं। आषाढ़ की फसल पानी बरसने के चार पाँच दिन में ही बो दी जाती है ताकि कहीं ज़मीन सूख न जाय अथवा पानी फिर बरसने लगे। इस फसल में मकई, बाजरा, कपास, उरद, मूँग अरहर, अंडी, तिल, सन, धान इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। मकई व ज्वार के खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं। कपास का बीज बोने के पहले खेत तीन चार बार जोता जाता है। अन्य फसल बोने के पहले एक दो बार जोत कर खेतों को छोड़ देते हैं। रबी की फसल में बीज बोने से पहले खेतों को दो तीन बार जोतना और उन पर पाटा चलाना पड़ता है। रबी में गेहूँ जौ, चना, मटर, सरसों, अलसी इत्यादि चीजे बोई जाती हैं। बीज बोने के दो तरीके हैं। कुछ फसलों के बीज हाथ से खेत में छितरा कर फेंके जाते हैं जैसे बाजरा, उर्द, मूँग, चना, मटर आदि के बीज। मक्का, ज्वार, कपास आदि के बीज कूँडों के जरिए या नली के जरिए बोए जाते हैं। कूँड की बोवाई में हल के द्वारा जो कूँड खुदता जाता है, उसमें एक आदमी दाना छोड़ता जाता है। नली की बोवाई में हल के पीछे एक लम्बा पनाली-दार बाँस बधा रहता है। एक आदमी हल चलाता जाता है और दूसरा पोले बाँस में दाने छोड़ता चलता है जिन खेतों की मिट्टी भुरभुरी होती है उसमें

फूँड की बोवाई की जाती है। जिस ज़मीन में नीचे नमी और ऊपर खुश्की होती है उसमें नली की बोवाई होती है।

बोवाई के बाद सिंचाई की बारी आती है। अगर पौधों को पानी न मिले तो वे सूख जायँ और उपज मारी जाय यों तो खरीफ़ की फ़सल में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि बोवाई के बाद कई महीने तक बरसात होती है। लेकिन जिस बार वर्षा नहीं होती उस बार खरीफ की फसल में और रबी की फसल में तो हमेशा ही सिंचाई करनी होती है। जहाँ नदियाँ हैं वहाँ पर तो सिंचाई के लिये नहरें खोद दी गई हैं। लेकिन सब जगह तो नदियाँ होती नहीं। वहाँ पर अधिकतर कुओं से सिंचाई की जाती है। मोट द्वारा कुओं से पानी निकालते तो सब ने देखा होगा। इसमें चमड़े का बड़ा डोल होता है जो कुएँ में रस्सी बाँध कर डाला जाता है। इस मोट को कुएँ से खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। एक आदमी बैलों को हाँकता हुआ दूर तक ले जाता है जिससे मोट ऊपर खिंच आता है। एक दूसरा आदमी कुएँ पर रहता है जो मोट के ऊपर आ जाने पर उसमें से पानी उड़ेल लेता है। पानी नालियों के द्वारा खेत में पहुँच जाता है। जहाँ किसी तालाब से किसी ऊँचे खेत में पानी पहुँचना होता है वहाँ दो आदमी एक दौरी में पानी भर कर ऊपर फेंकते हैं, कहीं कहीं रहट से सिंचाई होती है। इसमें एक चरखी खम्भों के सहारे कुएँ की जगत पर लगाई जाती है। चरखी पर बँधी हुई एक रस्सी में बहुत से डोल बँधे रहते हैं। एक डोल भर कर ऊपर आता है तो दूसरा कुएँ में जाता है। इसमें एक ही आदमी बैल हाँकने को रहता है।

सिंचाई के अलावा किसान को खुर्पी से पौधों के आस पास उगने वाली घास को खोदकर फेंकना पड़ता है। इसको निराई कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो फसल के पौधों का खाना घास वगैरह बटा ले क्योंकि वह भी पौधों की तरह ज़मीन से खाना लेती है। बरसात में तो बड़ी जल्दी घास फूस जम जाती है। इसलिए किसान दस पन्द्रह दिन में निराई करता है। रबी की फसल में निराई की कम जरूरत पड़ती है।

जब फसल के खेत पक कर तैयार हो जाते हैं तो किसान हँसिया से काट कर गेहूँ, चना आदि को खलिहान में ले आता है। खलिहान उस लिपी पुती जगह को कहते हैं जहाँ फसल साफ की जाती है। फसल के ऊपर

बैल चलाकर पहले पौधों को मांड़ा जाता है जिससे भूसा और अनाज के दाने अलग हो जायँ। माड़ने के पश्चात् हवा चलने पर उड़ौनी की जाती है। एक ऊँची तिपाई पर से दौरी में भरकर मांड़े हुए अनाज को नीचे गिराते हैं जिससे हलका होने के कारण उड़कर भुस दाने से अलग जा गिरती है। इसके बाद किसान अनाज और भुस को अपने घर ढो ले जाता है।

ग्रामीण उद्योग-धंधे

खेती के सम्बन्ध में हमने और सब बातों पर विचार कर लिया, परन्तु यह नहीं खयाल किया कि खेती करने में किसान बारहों महीने काम करता रहता है अथवा उसे कभी खाली भी बैठना पड़ता है। भारत में किसानों को आम-तौर पर चार महीने से लेकर छै तक बेकार रहना पड़ता है। दूसरे महीने में तो उसका किसी तरह काम चल जाता है परन्तु बेकारी के समय के लिये वे कुछ बचा कर नहीं रख सकते। अतः उन्हें किसी ऐसे उद्योग-धंधे की आवश्यकता रहती है जो या तो खेती करने में सहायता पहुँचावें अथवा जो खेती पर निर्भर हो। उद्योग-धंधे न तो ऐसे होने चाहिये कि उन्हें छोड़ देने पर उनमें लगी हुई पूँजी जकड़ी पड़ी रहे और न ऐसे होवें जिनमें किसी प्रकार की विशेष शिक्षा की ज़रूरत पड़े। उद्योग-धंधे ऐसे होने चाहिये जो मौके-मौके पर चालू किये जा सकें जैसे चर्खा कातना, लकड़ी व मिट्टी के खिलौने बनाना, तार के पिंजड़े बनाना, साबुन बनाना, हाथ का काग़ज़ बनाना, चावल कूटना, गुड़ बनाना, दाल दलना इत्यादि। इस दृष्टि से किसानों के लिये एक मुख्य उद्योग पशुपालन का है। गाय भैंस पालने से न केवल दूध-घी-दही का व्यापार होता है, बल्कि साथ ही साथ गाय भैंस के बच्चे खेती के काम में आते हैं और गाय का गोबर और मूत्र खाद के काम आता है। बकरी भी पाली जा सकती है। बकरी का दूध पी लिया जाय और बकरे बकरी बेचे जायँ। काश्मीर, पंजाब, राजपूताना तथा अन्य ठंडी जगहों में भेड़ पालने तथा ऊन उत्पादन का काम किया जा सकता है। मुर्गी पालने और बच्चे तथा अंडे बेचने का काम भी अच्छा है।

खेती के साथ में कम खर्च के साथ एक छोटा सा बग़ीचा लगाया जा सकता है जिसमें तरकारी, भाजी या फल-फूल पैदा किये जा सकते हैं। यदि

किसान फलों को न बेच सके तो वह बाग को ठेके पर उठा सकता है। यदि गुलाब के फूल लगाए जायें तो गुलाब जल और गुलकन्द बनाना कठिन नहीं होना चाहिये। शहद की मक्खी को पाल कर शहद उत्पन्न किया जा सकता है। शहतूत के वृक्ष लगा कर रेशम के कीड़े पाले जा सकते हैं। अंडी की पैदावार वाले प्रदेश में अंडी के कीड़े पाले जा सकते हैं। इनसे प्राप्त रेशम बेचा भी जा सकता है और उससे धागे भी बुने जा सकते हैं। खेती के अयोग्य जमीन पर पेड़ लगा देने से लकड़ी मिल सकती है। इसके अलावा किसान रस्सी बाटने, टोकरी बनाने, चटाई बुनने, पंखा बुनने, आदि का काम भी मजूरी कर सकते हैं। अगर गाँवों में बिजली पहुँच जाय और उपयुक्त छोटी मात्रा के उद्योग धंधे खोल दिए जायँ तो किसान अपने बेकारी के समय में इन धंधों में भी काम कर सकता है। अगर उन्हें कुछ शिक्षा तथा सहायता व सलाह मिले तो वे स्वयं भी मिल-कर ऐसे धंधे कर सकते हैं।

ऊपर हमने केवल संक्षेप में यह बताया है कि किसान अपनी बेकारी के दिनों में कौन से काम कर सकता है। अगले अध्याय में हम इन धंधों तथा जूता बनाने का काम, लकड़ी के काम, लोहे के काम, मिट्टी के बर्तन बनाने के धंधे आदि के बारे में और खुलकर बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—शहर में रहने वाले अपने एक मित्र को पत्र लिखो और उसमें अपने गाँव की खरीफ की फसलों का वर्णन करो।

२—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष रबी की कौन सी फसलें कितने रकबे में बोई गई हैं? अपना उत्तर देने में पटवारी के कागज़ों से सहायता ले सकते हो।

३—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे अच्छी फसल किस किसान के खेत में हुई? उस किसान से यह जानने का प्रयत्न करो कि एक एकड़ में कितना गेहूँ इस वर्ष उत्पन्न हुआ।

४—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे खराब फसल किस किसान के खेत में हुई? उसकी फसल खराब होने के क्या कारण थे?

५—तुम्हारे गाँव में जिन हलों का उपयोग किया जाता है उसका सचित्र वर्णन करो। ये हल कितनी गहराई तक ज़मीन खोदते हैं?

६—गहरी जोताई के लाभ समझाइये और यह बतलाइये कि आपके गाँव में कौन से नए हल का उपयोग विशेष रूप से लाभदायक होगा।

७—अपने गाँव के सिंचाई के तरीक़ों का वर्णन कीजिये। उनमें किन सुधारों की आवश्यकता है?

८—गोबर की खाद का महत्व समझाइये। गोबर की उपली बनाकर जला देने से जो हानियें हो रही हैं उनको बतलाइये।

९—आपके गाँव में फसलों की हेरफेर किस प्रकार की जाती है? इस प्रथा में क्या कोई सुधार की आवश्यकता है?

१०—खेतों के दूर दूर पर छोटे छोटे टुकड़ों में बटे हुए होने से जो हानियाँ होती हैं उनका दिग्दर्शन कीजिये।

११—आपके गाँव में सबसे बड़े खेत का रकबा और सबसे छोटे खेत का रकबा लिखिये। साधारणतः कितने एकड़ रकबे के खेत आपके गाँव में अधिक हैं?

१२—आपके गाँव में ऐसे किसानों का पता लगाइये जिनके पास ४ एकड़ से कम रकबे के खेत हों? उनकी एक वर्ष की आमदनी का पता लगाइये और यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि वे अपना जीवन निर्वाह बराबर कर पाते हैं या नहीं?

१३—आपके गाँव के किसान उत्तम बीज प्राप्त करने के लिये किस प्रकार और कितना प्रयत्न करते हैं? यदि सब किसान उत्तम बीज बोने लगें तो आपके गाँव की फसलों की उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है?

१४—अपने गाँव की किसी फसल की मड़ाई का वर्णन कीजिये।

१५—आपके गाँव में कृषि की दशा क्यों खराब है? उसे सुधारने के लिये आप क्या उपाय करेंगे?

१६—आपके गाँव के किसान प्रति वर्ष साधारण कितने दिन बेकार रहते हैं? इन दिनों में क्या काम करते हैं?

१७—अपने गाँव के घरेलू उद्योग-धंधों का वर्णन कीजिये। गाँव वालों के लिये उनका क्या महत्व है?

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू उद्योग-धंधे (Cottage Industries)

घरेलू उद्योग-धंधे की आवश्यकता

खेती पर तो हम पूरी तरह विचार कर चुके। किन्तु केवल खेती से उत्पन्न वस्तुओं से हमारा काम न कभी चला और न चल जायगा। पहले हमारे देश के उद्योग-धंधों का माल योरप तक में बिकता था। परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी की उल्टी नीति तथा इंगलैंड में बड़े बड़े कारखाने खुल जाने के कारण हमारे कारीगरों को धक्का पहुँचा। अतएव वे गाँव और खेती की ओर झुक पड़े। अधिक खेती के द्वारा इतने अधिक लोगों का पालन न हो सका और उनका रहन-सहन गिर गया। तभी से बराबर अन्य उद्योग-धंधों और खासकर ग्रामीण घरेलू उद्योग-धंधों की आवश्यकता बनी रहती है।

वैसे तो हमको अनेक तरह का अन्य माल तैयार करना पड़ता है अर्थात् दस्तकारी और उद्योग-धन्धों का कार्य अख्तियार करना पड़ता है। भारत में कुछ बड़े बड़े कारखाने खुले हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन कारखानों की संख्या बढ़ाई जाय तो लोगों को काम भी मिले और देश में मिलों से तैयार माल भी मिले। परन्तु पिछले सौ साल में जितने बड़े उद्योग-धंधे खुले हैं उनमें दो तीन लाख से अधिक मजदूर काम नहीं करते। इन उद्योग-धंधों को बढ़ाने के रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ हैं और अगर ये सब हल भी हो जायँ तो हमारा मतलब पूरा नहीं होगा। खेती से रो रो कर किसी तरह रोजी कमाने वाले बहुत से किसानों को इन धंधों में काम नहीं मिल सकेगा। इसलिए छोटी मात्रा के और खासकर घरेलू उद्योग-धंधे ही उनके लिये उपयुक्त हैं। इनके अलावा कारखानों में मिलने वाली

मजदूरी इतनी अधिक नहीं है कि गाँव के लोग शहर की तकलीफें और खर्च को सहने के लिये तैयार हो जायँ और फिर परदा प्रथा के कारण सभी औरतें बाहर जाकर काम नहीं कर सकतीं। उनके लिए घरेलू उद्योग-धंधे ही सब से उत्तम हैं।

जात पात के भेद के कारण जुलाहे, कुम्हार, चमार, लोहार आदि अपने पुरखों का ही काम करते हैं। और जैसा कि पिछले अध्याय में बताया था चार छै महीने निठल्ले बैठे रहने वाले किसानों के लिए यही धंधे ठीक हैं।

कुछ हिन्दोस्तानी उद्योग-धंधे

हिन्दोस्तान में प्रचलित घरेलू उद्योग-धंधे अनेकों हैं। लाह जो कि एक प्रकार के वृक्ष का गोंद है तथा जो वारनिश करने और मोहर लगाने के काम में आती है अब बड़े पैमाने में तैयार होने लगी है। पहले यह घरों में ही साफ़ की तथा बनाई जाती थी। शहद और मोम की तरफ़ लोगों का अधिक ध्यान नहीं गया है तब भी कुछ जंगली और पहाड़ी कौमें इस काम को करती हैं। साबुन फैक्टरी में भी बनता है और घरों में भी बनाया जाता है। बाज़ार में आपको घरेलू बने हुए बहुत से साबुन मिल सकते हैं। हाथी-दाँत की कारीगरी में तो भारत के शिल्पी मशहूर हैं। हाथी दाँत का जितना बढ़िया और उत्तम काम होता है वह प्रायः अफ्रीका के हाथी दाँत पर होता है। दिल्ली, मुर्शिदाबाद, मैसूर, ट्रावनकोर वगैरह हाथी दाँत की कारीगरी के लिए मशहूर हैं। रेशमी कपड़े का काम अब बहुत कम हो गया है। जापानी और बनावटी रेशम के कारण भारत का यह धन्धा बिल्कुल मारा गया। तब भी भागलपुर आदि स्थानों में अब भी रेशमी कपड़ा हाथ से तैयार किया जाता है। उत्तरी हिन्दुस्तान और खास कर काश्मीर में उमदा और बढ़िया ऊनी कपड़े बनते हैं। हालांकि ऊन के कारखाने खुल गये हैं तब भी मोटे कम्बल, दरियाँ, पट्टी और पश्मीना बनता है। काश्मीर के शाल बहुत मशहूर हैं। कारचोबी और कसीदे का काम उत्तर में बड़ी उन्नत दशा में है। तम्बाकू, काली मिर्च और इलायची साफ़ करना, सिरका डालना, सत निकालना, डबलरोटी बिस्कुट बनाना वगैरह

वगैरह काम घरेलू उद्योग-धन्धों में गिने जाते हैं। अब हम युक्तप्रान्त के कुछ उद्योग-धन्धों का वर्णन करते हैं।

बरतन बनाना

इस प्रान्त में बरतन बनाने का काम बहुत होता है। पीतल, ताँबा, कसकुट और लोहा के बड़े अच्छे अच्छे बरतन बनाए जाते हैं। बरतन बनाने का काम करने वालों को ठठेरा कहते हैं। मुरादाबाद के कलई के बरतन बड़े मशहूर हैं। अब तो बरतन बनाने का काम बहुत बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। धनी आदमी सैकड़ों बरतन बनाने वालों को नौकर रख लेते हैं और खूब तादात में बरतन तैयार करते हैं। यह तो हुआ धातु के बरतनों का हाल। अब मिट्टी के बरतन के बारे में सुनिये। कुम्हार और कुम्हार के चाक से तो हर कोई वाकिफ़ होगा। तुमने कुम्हार को अपनी पत्थर का चाक घुमा कर उस पर रक्खी मिट्टी से सकोरा, कराई, हँडिया, मटकी, घड़ा बनाते तो देखा ही होगा। वह किस सफ़ाई के साथ अपनी उँगलियों को नचा कर अच्छी अच्छी चीज़ें बना लेता है। हर एक गाँव में एक कुम्हार होता है। बनारस की तरफ़ मिट्टी के चिकने काले बर्तन बनाए जाते हैं जो बड़े नफ़ीस होते हैं।

चटाई और टोकरी बनाना

बरतन के अलावा कलकत्ते की तरफ़ बड़ी उम्दा चटाइयाँ बिनी जाती हैं। ये चटाइयाँ खूब पतली बिनी हुई रहती हैं। संयुक्त प्रांत में अक्सर ताड़ के पत्तों की चटाइयाँ बुनी जाती हैं। ये कुछ भद्दी और कमजोर होती हैं। चूँकि इस समय बिनाई का जिक्र आ गया है तो गाँवों में टोकरी, डलिया आदि बनाने का हाल भी बता देना चाहिये। ये डलवे, टोकरी झाऊ के पेड़ों से, सरकंडों तथा बाँस की तीलियों से बनाई जाती हैं। मज़दूर के टोकरे, भूसा व उपली रखने के टोकरे झाऊ और सरकंडों से बनाए जाते हैं। पतले पतले झाऊ के डंठल भिगो कर लचकदार बना लिए जाते हैं। इन्हीं से डलियाँ बनाते हैं। बाँस की टोकरी बनाने में पहले बाँस को चीर कर चौड़ी पतली पतली खपाचें बना लेते हैं। पहले कुछ मोटी और

चौड़ी खपाचियों को आड़ा समझ कर रख लेते हैं। उसके बाद दूसरे डठलों को चारों ओर घुमा कर उन्हें इस तरह कसते जाते हैं कि वे अलग अलग न हो सकें। सरकंडों से टोकरी तथा मूढ़े आदि बनाए जाते हैं।

गुड़ बनाना

गाँव में किसान गन्ने या ऊख से रस निकालते हैं। इस रस का गुड़ बनाया जाता है। गुड़ बनाने के लिये रस को बड़े बड़े कड़ाहों में उबालते हैं। हमारे यहाँ के किसान गुड़ बनाने में सफ़ाई का ख़्याल नहीं रखते। तिनके पत्तियाँ आदि सब रस के साथ गुड़ में रहने देते हैं। इनके अलावा जो रस के ऊपर का मैल होता है उसे भी ठीक से नहीं निकालते। मेरठ, बनारस और कानपुर का गुड़ ख़ूब अच्छा और साफ़ समझा जाता है।

चर्खा कातना और कपड़ा बुनना

किसान परिवारों का एक दूसरा सहायक धंधा है सूत की कताई और कपड़े की बुनाई। महात्मा गाँधी का कहना है कि चर्खे से हम स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। इस काम में अब भी लाखों जुलाहों और सूत कातने वालों को काम मिलता है। सूत कातने का काम ऐसा है कि किसान को जब फ़ुरसत हो तभी कर सकता है। एक चरखे में कोई ज़्यादा पूँजी भी नहीं लगती। यदि चरखे पर सात आठ घंटे काम किया जाय तो कातने वाला अच्छी तरह ३ या ३½ आने रोज कमा सकता है। सूत कातने से एक और फ़ायदा यह है कि इसी सूत से किसान अपने घरवालों के पहनने के लिए कपड़े बुना सकता है। सचमुच सूत की कताई और कपड़े की बुनाई का काम ऐसा है कि दरिद्र किसानों की दरिद्रता बहुत हद तक कम हो सकती है। पुराने समय में तो ढाका के तरफ़ ऐसा पतला सूत काता जाता था कि उसके बिने हुए मलमल का थान एक छोटी डिबिया में आ जाते थे। कहते हैं कि जहाँगीर को किसी ने एक छोटी अँगूठी में नग की जगह थान रख कर भेंट किया था।

पशु-पालन

जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था, किसानों के लिए एक बड़े महत्त्व का उद्योग है पशु-पालन। गाँव में बहुत से लोग गाय पालते और

दूध-भी बेचते हैं लेकिन न तो ये रोज़गार के ढँग से जानवरों की सेवा करते हैं और न रोज़गार के ढँग से अपना माल ही बेंच पाते हैं। इसी से देखा जाता है कि किसानों को अक्सर गायों के पालने से कोई लाभ नहीं होता। कहने को हम लोग गाय को गो माता कहते हैं, लेकिन हमारे किसान न तो उन्हें अपनी माँ की तरह खाना देते हैं और न अच्छी जगह में उन्हें रखते ही हैं। इसके अलावा गाय भैंसों की सफ़ाई नहीं रक्खी जाती, फलस्वरूप ढोरों में अनेक रोग फैल जाते हैं और बहुतों की अकाल मौत हो जाती है। इन्हीं कारणों से ढोरों की नसलें कमज़ोर होती जा रही हैं। पहले तो किसान गाय खरीदने में गलती करते हैं। गाय दुधार होनी चाहिये। इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि गाय मोटी हो। गाय की खाल पतली तथा रोएँ नरम और चिकने होने चाहिए। थन सीधे हों, न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े। काली, लाल और भूरे रंग की गायें अक्सर अच्छी होती हैं।

दूध का काम

गाय पालने से बहुत फायदे होते हैं। गाय का बछड़ा बड़ा होकर खेत जोतने के काम आता है। गाय का गोबर, उपली, खाद और घर लीपने में काम आता है। गाय के दूध के बग़ैर तो हमारा काम नहीं चल सकता। कोई दूध पीता है। कोई उसका दही, मक्खन या मलाई रबड़ी बनाकर खाता है। दूध का खोया बनाया जाता है। हम आगे किसी अध्याय में बतावेंगे कि दूध क्यों ताकतवर होता है। ताकतवर होने के कारण ही तो छोटे बच्चों को गाय का दूध पिलाया जाता है, लेकिन दूध से बीमारियाँ भी बहुत सी फैलती हैं। दूध की सफ़ाई मे ज़रा सी लापरवाही करने से वह खराब हो जाता है। ज़रा भी सफ़ाई की कमी होने मे बैक्टीरिया नाम का एक कीड़ा दूध में पैदा हो जाता है इससे दूध फौरन बीमारी का घर बन जाता है। हमारे ग्वाले दूध दुहने में बड़ी लापरवाही दिखाते हैं। न तो वे कभी थन को धोते हैं न अपने हाथों को दुहाने के पहले साफ़ करते हैं और न साफ़-सुथरे कपड़े ही पहनते हैं। इसके अलावा बछड़े के दूध पी चुकने के बाद भी थन का धोना आवश्यक है। दुहने वाले को न तो खाँसने छींकने की आदत होनी चाहिये और न कोई छूत का ही रोग हो। दुहने की जगह पर गर्द गुबार न उड़ना

चाहिये। दूध का बरतन साफ मँजा हुआ होवे और जब दूध बेचने के लिये ले जाया जावे तो बरतन को हमेशा साफ कर लेना चाहिए। यह तो हुई दुहने के सम्बन्ध की बातें। अब दूध बेचने का तरीका सुनिए। हमारे देहाती भाई अगर सेर भर दूध होता है तो पाव डेढ़ पाव पानी मिला देते हैं। यही नहीं विज्ञान के विद्वानों ने एक ऐसी मशीन निकाली है जिसमें डालकर घुमाने से कच्चे दूध में से मक्खन अलग निकल जाता है। बचे हुए दूध को मखनिया दूध कहते हैं। आजकल देहाती इस प्रकार पहले से ही मक्खन निकाल कर तब दूध को बेचने लाते हैं। ऐसा दूध किसी काम का नहीं होता। हमारे हलवाई इसी दूध को खरीद कर बेचते हैं। इसी का दही जमाते हैं। चूंकि मखनिया दूध पतला और सार रहित सा मालूम पड़ता है इसलिए उसको गाढ़ा बनाने के लिए थोड़ा सा अरारोट या तीखुर डाल देते हैं। अरारोट पड़े दूध के दही के ऊपर मोटी मलाई जम जाती है। यह काम शहर में काफी किया जाता है, अगर हम चाहते हैं कि अधिक किसान दूध बेच कर कुछ पैसे कमा सकें तो उन्हें दूर स्थित शहरों और नगरों में बिना बिगड़ा दूध ले जाने की सुविधा जरूरी है।

मक्खन और घी

दूध से मक्खन और घी भी बनाया जाता है। ऊपर हमने मखनिया दूध का हाल बताते समय कच्चे दूध से मक्खन निकालने की एक तरकीब बताई है। कच्चे दूध से मक्खन निकालने की जिस मशीन का जिक्र ऊपर आया है वह अभी हमारे गाँवों तक नहीं पहुँची है। शहर में ही उसका उपयोग किया जाता है। तुमने पिछली बार जो मक्खन मोल लिया होगा वह इसी तरह बनाया गया था। दूध को आग पर पका कर मथने से भी मक्खन निकल आता है लेकिन शहर वाले पकाने के झगड़े में नहीं पड़ते। गाँवों में जो घी तैयार किया जाता है उसके लिए पहले दूध को उबालते अथवा पकाते हैं। पके हुए दूध में थोड़ा सा पहले का रक्खा हुआ दही डाल कर रख देने से सात आठ घंटे में दूध जम कर दही बन जाता है। इस दूध को मथानी से खूब मथते हैं। मथने से मक्खन ऊपर तैरने लगता है और निकाल लिया जाता है मक्खन निकालने के बाद जो दूध ब

पदार्थ बच रहता है उसे मट्ठा कहते हैं। मथ कर निकाले मक्खन को नैनू
भी कहते हैं। नैनू कच्चे दूध से निकाले मक्खन से कहीं अधिक अच्छा
और स्वादिष्ट होता है।

मक्खन को अच्छी तरह गरम करके घी बनाया जाता है। मक्खन
में दूध का कुछ भाग बना रहता है। औटाने पर वह जल जाता है और
घी तैयार हो जाता है। मक्खन एक दो दिन से अधिक नहीं ठहरता।
दूध का भाग रहने से उसमें बदबू आने लगती है और वह ख़राब हो जाता
है। इसीलिए मक्खन ताज़ा खाया जाता है। घी बनाने में ख़राब होने
वाला भाग पहले ही जल जाता है। इसलिए घी बहुत दिनों तक रहता है।
घी और मक्खन दोनों शरीर को ताक़त पहुँचाते हैं। लेकिन ये बहुत अधिक
हजम नहीं किए जा सकते। मक्खन को लोग घी से अधिक लाभदायक
मानते हैं। आजकल बेचने वाले घी में नारियल या दूसरी चीज़ों का तेल
मिला देते हैं। इसके अलावा आजकल तरह तरह के बनावटी घी चल
निकले हैं। जैसे घास का घी, कोकोजम इत्यादि। बहुत से लोग मक्खन
को अच्छी तरह नहीं तपाते हैं बल्कि आधा पक्का आधा कच्चा ही बेचते हैं।
इसीलिए तुमने कभी किसी को घी के बारे में कहते सुना होगा कि घी में
मट्ठा है। आजकल शहर में अच्छा घी मिलता ही नहीं। हाँ गाँवों में
अच्छा घी मिल जाता है। इसीलिए आजकल घी मोल लेते समय उसे
अच्छी तरह देख कर लेना चाहिये।

रस्सी बनाना

तुमने देखा होगा कि गाय दुहते समय ग्वाला अक्सर गाय के पिछले
पैर बाँध देता है। पर किस चीज़ से पैर बाँधे जाते हैं? इसके अलावा कुएँ
से पानी किससे निकाला जाता है? खेतों की सिंचाई के लिये जो मोट
चलाई जाती है वह किससे खींची जाती है? इस तरह के सवालों के जवाब
में तुम फौरन कह दोगे कि ये सब काम रस्से से होते हैं। किसी में रस्सी
लगी होती है किसी में रस्सा। पतली डोर को रस्सी कहते हैं और मोटी को
रस्सा। किसानों का तो बिना रस्सी-रस्से के काम ही नहीं चल सकता।
घर में, खेत में, गाड़ी की जाली बनाने में, बोझ बाँधने में उसे रस्सी

की ज़रूरत पड़ती है। क्या तुम बता सकते हो कि ये रस्सी-रस्से किसके बनते हैं और कैसे बनते हैं? अच्छा सुनो मूंज के, घास के, नारियल के जटाओं के, सन के, सरपत के तथा और और चीज़ों के भी रस्से बनाए जाते हैं। मूंज की महीन बटी रस्सी को बाध कहते हैं और खटिया बुनने के काम में आता है। घास और मूंज की रस्सी बनाने के पहले उन्हें पानी में भिगोते हैं। अच्छी तरह भीग जाने पर इन्हें खूब कूटते हैं। जब उनके डोरे डोरे अलग हो जाते हैं तब उनमें से चार चार छै छै रेशे हाथों में लेकर ऐंठते और आपस में मिलाते चलते हैं। एक लम्बी रस्सी तैयार हो जाने पर उसे दोहरा तेहरा करके और मोटा व मजबूत बना लेते हैं। सन की रस्सी बनाने के लिए पहले सन के पौधों को सड़ा कर सुखाया जाता है, तब सन अलग कर लेते हैं। और उसे बाट कर रस्सी तैयार करते हैं। हमारे यहां के किसान सन को गंदे पानी में सड़ाते हैं जिससे वह मैला हो जाता है। इसके अलावा हमारे यहाँ के सन में कूड़ा भी होता है। फिर वे योहीं सन के लच्छे बना डालते हैं जिससे रेशों के उलझ जाने पर उन्हें सुलझाने में बड़ी मेहनत पड़ती है। मूँज की रस्सी मजबूत होती है और पानी पड़ने पर बिगड़ती नहीं। लेकिन सन की रस्सी पानी में रहने से ठीक नहीं रहती। नावों को बाँधने के लिए जो बड़े बड़े रस्से बनाए जाते हैं वे मूँज के ही होते हैं।

लकड़ी का काम

रस्सी के अलावा लकड़ी दूसरी चीज़ है जिसके बिना किसानों का काम नहीं चल सकता। गांव में बढ़ई का होना ज़रूरी है। हल, जुआ, पालकी, खिड़की, दरवाजा बढ़ई द्वारा ही बनाए होते हैं। डीवट, खड़ाऊँ और खुरपा, कुल्हाड़ी व बसूला के बेंट भी वही बनाता है। लकड़ी के जो कुछ भी काम बन सकते हैं वे बढ़ई की ही दस्तकारी के नमूने हैं। लेकिन बढ़ई एक ही दो चीजों के बनाने में अपना हुनर दिखाते हैं। जो सब बातों में अपनी टाँग अड़ाते वे किसी बात में निपुण नहीं हो पाते। गाँव के बढ़ई को हल तथा बैलगाड़ियाँ तो ज़रूर ही बनानी पड़ती हैं। कोई बढ़ई हल बनाने में होशियार होता है; कोई गाड़ी बनाने में। इसके अलावा उत्तरी हिन्दोस्तान

में लकड़ी पर चिताई का काम देखने में आता है। कारीगर लकड़ी पर ऐसे उम्दा उम्दा बेल बूटे बनाते हैं तथा ऐसी नकाशी करते हैं कि देखते ही बनता है। इसमें शीशम, शाल व आबनूस की लकड़ी अधिकतर काम में लाते हैं। नागपुर तथा अन्य जगहों में चिताई का काम बहुत अच्छा होता है। बनारस की तरफ लकड़ी के खिलौने बनाकर उस पर हल्के रंग से चित्रकारी की जाती है और फिर एक खास किसम की वारनिस कर दी जाती है। ये खिलौने काफी अच्छे होते हैं।

लोहार का काम

बढ़ई के बाद गाँव के लोहार का नम्बर आता है। हल का फाल, कुल्हाड़ी का लोहा, खुरपा, बसूला आदि चीज़ों के बनाने के लिये प्रत्येक गाँव में एक लोहार का रहना जरूरी रहता है। लोहार लोहे को आग में तपाता है। फिर उसे लोहे के चौड़े ऊँचे टुकड़े पर जिसे घन कहते हैं हथौड़े से पीट कर जिस शक्ल का चाहता है बना लेता है। लेकिन अब तो लोहे के बड़े बड़े कारखानों के खुल जाने से लोहार का बहुत काम घट गया है। तब भी लोहार देहात में अपना स्थान रखता है।

तेली का काम

लोहार की तरह ही तेली का हाल है। गाँव में तेल जलाने के काम में आता है। तिल्ली का तेल जलाया भी जाता है और खाया भी। सरसों, अलसी, महुआ आदि और भी कितनी चीज़ों का तेल निकलता है। गाँव में एक तेली अवश्य होता है। तेल पेरना और बेचना ही उसका काम होता है। तिल्ली कोल्हू में पेरी जाती है। पत्थर की एक बड़ी सी ओखली ज़मीन में गड़ी होती है। ओखली के पास ही एक लकड़ी का खम्भा रहता है। उसमें लकड़ी का बड़ा सा कोल्हू बाँध देते हैं जिसमें वह सधा रहे। ओखली में तिल्ली डालकर बैल को कोल्हू के साथ ओखली के चारों ओर घुमाते हैं। ऐसा करने से तिल्ली कोल्हू के नीचे पिसती है और उसमें से तेल निकलता है। पत्थर में छेद होता है। तेल उस छेद से ज़मीन में रक्खे एक बरतन में गिरता जाता है। तेल निकल जाने पर तिल्ली की खली हो जाती है। खली

जानवरों को खिलाई जाती है जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कहीं कहीं आयल-एंजिन मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने में खर्च तो ज्यादा ज़रूर होता है लेकिन देशी कोल्हू में जितना तेल दिन भर में निकलता है उतना तेल एंजिन के ज़रिये आधा घंटे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँव में जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि रहते हैं वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमें से कोई भी गाँव छोड़ दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिए नए नए जूते बनाता है और फटे-पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गाँव का चमार खेती भी करता है और खेती से फ़ुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गाँव का चमार घोड़ों पर की काठी और बैल हाँकने के लिये चमड़े के तस्में वगैरह भी बनाता है। शहरों में चमड़े के बकस और मशक वगैरह बनाए जाते हैं। लेकिन गाँव का चमार अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। शहरों में अब पश्चिमी ढग के फैशनदार जूतों के चल जाने से देहाती जूतों को कोई नहीं पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई देहाती जूता पहनते थे। हमारा देहाती जूता बड़ा मज़बूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले तो पैर में गर्मी नहीं पहुँचती। फिर यह जल्दी पहना और उतारा जा सकता है। चमड़ों को छूने से हाथ खराब हो जाते हैं और हाथों को धोना पड़ता है। ये विचार पहले थे और अब उठते जाते हैं, इसीलिए ये जूते ऐसे बनाए जाते हैं कि इन्हें पहनने और उतारने में हाथ न लगाना पड़े। जूता गाय, बैल आदि जानवरों की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लाते हैं, खाल को पहले धूप में अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कड़ी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोए साफ़ कर दिए जाते हैं। फिर खाल को चमकाते हैं। जूता बनाते समय पैर का नाप लेकर चमार उसी तरह हमारे पैर का जूता तैयार कर देता है जिस तरह कि दर्जी नाप लेकर हमारा कोट या कमीज सी देता है। अब तो जूता बनाने के बड़े बड़े कारखाने खुल गए हैं जिनमें बड़े उम्दा उम्दा सस्ते जूते बनाए जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतों में कानपुर,

आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग-धंधों का वर्णन करेंगे जो गाँवों में खोले जा सकते हैं।

फल, फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय में फल, फूल और तरकारी-भाजी के बाग़ लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उपज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग़ लगा ले तो उसे फल और तरकारी तो खाने को मिलेंगी ही, उन्हें बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो महक ही उठेगा उससे खुशबूदार जल, इत्र तथा गुलाब से गुलकंद बनाया जा सकता है। कुछ फूलों के पेड़ बजर भूमि में भी फूल सकते हैं तरकारी की वाटिका में किसान के घर का गन्दा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि वाटिका किसान के घर से मिली नहीं है तो गंदे पानी को वाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिए किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गाँव में फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा ? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर जाकर अथवा शहर के विक्रेताओं के हाथ उन्हें बेच देगा। अगर ऐसा नहीं है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नहीं कमा सकता।

शहद का धंधा

ऊपर फूलों का ज़िक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी पाल कर छत्ता लगवाया जाय तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छत्ते के लिये फूल की वाटिका आवश्यक नहीं है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं कि उनमें शहद की मक्खियाँ पाल कर शहद निकालने के लिए न तो मक्खियों को उड़ाना पड़ता है और न छत्ते को तोड़ना। इस धन्धे में झंझट भी कम होता है, पूँजी भी कम लगती है और जगह भी कम घिरती है। शहद अति पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धंधे को सफलता के लिए भी किसान को कुछ शिक्षा तथा बिक्री में सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हेच तथा दूसरे ईसाई मजहब वालों की मेहनत के कारण गाँवों में इस धंधे का काफी प्रचार हुआ है।

जानवरों को खिलाई जाती है जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कहीं कहीं आयल-एंजिन मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने में खर्च तो ज्यादा ज़रूर होता है लेकिन देशी कोल्हू मे जितना तेल दिन भर में निकलता है उतना तेल एंजिन के ज़रिये आधा घंटे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँव में जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि रहते हैं वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमें से कोई भी गाँव छोड़ दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिए नए नए जूते बनाता है और फटे-पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गाँव का चमार खेती भी करता है और खेती से फुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गाँव का चमार घोड़ों पर की काठी और बैल हाँकने के लिये चमड़े के तस्मे वगैरह भी बनाता है। शहरों में चमड़े के बकस और मशक वगैरह बनाए जाते हैं। लेकिन गाँव का चमार अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। शहरों में अब पश्चिमी ढग के फैशनदार जूतों के चल जाने से देहाती जूतों को कोई नहीं पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई देहाती जूता पहनते थे। हमारा देहाती जूता बडा मज़बूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले तो पैर मे गर्मी नहीं पहुँचती। फिर यह जल्दी पहना और उतारा जा सकता है। चमडों को छूने से हाथ खराब हो जाते हैं और हाथों को धोना पड़ता है। ये विचार पहले थे और अब उठते जाते हैं, इसीलिए ये जूते ऐसे बनाए जाते हैं कि इन्हे पहनने और उतारने मे हाथ न लगाना पड़े। जूता गाय, बैल आदि जानवरों की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लाते हैं, खाल को पहले धूप में अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कड़ी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोएं साफ़ कर दिए जाते हैं। फिर खाल को चमकाते हैं। जूता बनाते समय पैर का नाप लेकर चमार उसी तरह हमारे पैर का जूता तैयार कर देता है जिस तरह कि दर्जी नाप लेकर हमारा कोट या कमीज सी देता है। अब तो जूता बनाने के बड़े बड़े कारखाने खुल गए हैं जिनमें बड़े उम्दा उम्दा सस्ते जूते बनाए जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतो में कानपुर,

आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग-धंधों का वर्णन करेंगे जो गाँवों में खोले जा सकते हैं।

फल, फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय में फल, फूल और तरकारी-भाजी के बाग़ लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उपज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग़ लगा ले तो उसे फल और तरकारी तो खाने को मिलेगी ही, उन्हें बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो महक ही उठेगा उससे खुशबूदार जल, इत्र तथा गुलाब से गुलकंद बनाया जा सकता है। कुछ फूलों के पेड़ बजर भूमि में भी फूल सकते हैं तरकारी की वाटिका में किसान के घर का गन्दा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि वाटिका किसान के घर से मिली नहीं है तो गंदे पानी को वाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिए किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गाँव में फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर जाकर अथवा शहर के विक्रेताओं के हाथ उन्हें बेच देगा। अगर ऐसा नहीं है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नहीं कमा सकता।

शहद का धंधा

ऊपर फूलों का ज़िक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी पाल कर छत्ता लगवाया जाय तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छत्ते के लिये फूल की वाटिका आवश्यक नहीं है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं कि उनमें शहद की मक्खियाँ पाल कर शहद निकालने के लिए न तो मक्खियों को उड़ाना पड़ता है और न छत्ते को तोड़ना। इस धन्धे में झंझट भी कम होता है, पूँजी भी कम लगती है और जगह भी कम घिरती है। शहद अति पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धंधे को सफलता के लिए भी किसान को कुछ शिक्षा तथा बिक्री में सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हैच तथा दूसरे ईसाई मज़हब वालों की मेहनत के कारण गाँवों में इस धंधे का काफी प्रचार हुआ है।

अन्य उद्योग-धंधे

ऊपर बताए गए कुछ घरू उद्योग-धंधों के अलावा अभी बहुत से और धंधे हैं। मध्यप्रांत में वर्धा नगर में एक "अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ" है। उसका उद्देश्य गाँवों की हालत सुधारना है। उसकी देखरेख में नीचे लिखे ग्राम उद्योग चल रहे हैं :—

धान से चावल निकालना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल निकालना, शहद की मक्खियाँ पालना, मछली पालना, दूध का काम, कम्बल बनाना, रेशम का माल बनाना, सन की कताई और बुनाई, कागज़ बनाना, चटाई बनाना, कंघियाँ बनाना, पत्थर की कारीगरी, साबुन बनाना, चमड़ा तैयार करके उससे तरह तरह की वस्तुएँ बनाना इत्यादि।

घरेलू उद्योग-धंधे और सरकार

हमने इस अध्याय में कुछ खास उद्योग-धंधों के बारे में तो खुल कर बताया है और कुछ के बारे में संक्षेप में हाल कह दिया है। जिन धंधों को अच्छी तरह बताया है उनका गाँव से अधिक सम्बन्ध है।

इसके यह मतलब नहीं है कि गाँवों में गाँव से अधिक सम्बन्ध रखने वाले धंधों की ही उन्नति की जाय। अगर सरकार पहले से योजना बना कर गाँवों में कृषि के साथ उद्योग-धंधों की व्यवस्था और उन्नति करे तो घरेलू उद्योग-धंधों द्वारा साबुन, कागज़, कंघी, बटन, सुरक्षित छिले फल, हाथ के बिने कपड़े आदि अनेकों पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। वह गाँवों के लिए उपयुक्त धन्धे चुन सकती है। उनको चालू करने की व्यवस्था कर सकती है। किसानों को उनमें शामिल होने के लिए प्रोत्साहन, शिक्षा, और आर्थिक सहायता दे सकती है। धन्धों के लिए यातायात के साधनों की उन्नति कर सकती है और माल की बिक्री सुलभ कर सकती है। अगर गाँवों में बिजली भी पहुँच जाय तो कार्य-क्षमता और कार्य-क्षेत्र अधिक बढ़ जाय। सरकार ही यह कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रांतीय तथा दिल्ली की केंद्रीय सरकार ऐसी कोशिश कर रही हैं।

अस्तु, हम खेती और घरेलू उद्योग-धन्धों के बारे में काफी जान गए;

इनके जरिए बहुत सी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तुएँ उत्पन्न की गई हैं उनको काम में किस प्रकार लिया जाय। अर्थात् वस्तुओं का किस तरह से उपभोग किया जाता है। उपभोग के सम्बन्ध की सारी बातों पर हम अब अर्थशास्त्र के उपभोग विभाग के अन्दर विचार करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसी किसान से पूछकर लिखिये की प्रति मास उसे खेती सबंधी कौन-कौन से काम करने पड़ते हैं। किन महीनों में उसे सबसे अधिक काम रहता है और किन महीनों में उसे सबसे कम ?

२—आपके गाँव के किसान साधारणतः वर्ष भर में कितने महीने बेकार रहते हैं ? इस बेकारी के समय में आप उनको कौन सा काम करने की सलाह देंगे ?

३—आपके गाँव में आजकल प्रति मास कितना सूत काता जाता है ? यदि गाँव के सब बेकार स्त्री-पुरुष प्रति दिन चार घंटा सूत कातने लगें तो एक मास में कितना सूत तैयार हो सकता है ?

४—आपके गाँव में या आसपास के गाँवों में जुलाहों की क्या संख्या है ? ये जुलाहे हाथ के कते सूत का कहाँ तक उपयोग करते हैं।

५—जुलाहों की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये और उनकी दशा सुधारने के उपाय बतलाइये।

६—आर्थिक दृष्टि से खद्दर प्रचार की आवश्यकता समझाइये।

७—अपने गाँव के कुम्हार की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये। वह अपनी आमदनी किस प्रकार बढ़ा सकता है ?

८—युक्तप्रांत में पीतल के बरतन किन स्थानों में अच्छे और सस्ते मिलते हैं ? मुरादाबाद किस प्रकार के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध है और उस उद्योग की वर्तमान दशा कैसी है ?

९—आपके जिले में गुड़ किस प्रकार बनाया जाता है ? इस प्रांत में गुड़ कहाँ अच्छा और सस्ता बनता है ?

१०—शहर में दूध का क्या भाव है ? गांवों में दूध किस दर पर मिलता है ? दोनों दरों में अंतर के क्या कारण हैं ?

११—शुद्ध दूध की पहिचान लिखिये। शहर में शुद्ध दूध सस्ते भाव देने के लिए योजना तैयार कीजिये।

१२—घी में कौन सी वस्तुएँ प्रायः मिलाई जाती हैं ? शुद्ध घी की क्या पहिचान है ?

१३—आपके गाँव में चमारों की क्या दशा है ? उनकी दशा किस प्रकार सुधारी जा सकती है ?

१४—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धंधों का वर्णन कीजिए। उनमें कौन-कौन सी बुराइयाँ हैं ? उन्हें आप कैसे दूर करिएगा ?

१५—यदि आपको ५००) दे दिया जाय तो आप उसे अपने गाँवों के घरेलू उद्योग-धंधों को सुधारने के लिये किस प्रकार खर्च करेंगे।

१६—सरकार योजना बना कर किस प्रकार घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति कर सकती है ! उदाहरण देकर समझाइये।

छठाँ अध्याय

आवश्यकताएँ (Wants)

आवश्यकता का महत्व

किसी वस्तु की उत्पत्ति उसके उपभोग किए जाने के लिए की जाती है। किसान अनाज क्यों पैदा करता है ? उसके आटे की रोटी बनाकर खाने के वास्ते। आदमी कपड़े क्यों बनवाता है ? उन्हें बदन पर पहनने के लिए। गाँव वाले जाड़े में अलाव क्यों जलाते हैं ? आग ताप कर ठंढ मिटाने के लिए। अर्थात् उपभोग करने के कारण ही उत्पत्ति का कार्य किया जाता है। आदमी क्यों खाना खाता है ? काम करने के लिए। और काम क्यों करता है ? उससे पैदा किए धन से खाना खरीदने के लिए। मनुष्य को

तरह-तरह की आवश्यकताएँ रहती हैं। वह भाँति-भाँति के फल, फूल, कपड़े-लत्ते प्राप्त करना चाहता है। इसीलिए संसार में तरह-तरह के काम-धन्धे दिखलाई पड़ते हैं। किसानी, बढ़ईगिरी, लोहारी, चमारी, दर्जी का काम, घी बनाने का धंधा आदि जितने काम काज हैं सब की पूर्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के हाथ में रहती है। अगर आज हमारी आवश्यकताएँ कुछ भी न रहें तो शायद बहुत से काम बंद हो जायँ। बहुत से पेशे वालों को अपना-अपना काम छोड़ना पड़ जाय। अस्तु कहने का मतलब यह कि उत्पत्ति और उपभोग में बहुत गहरा सम्बन्ध है और हम किसी वस्तु का उपभोग इसीलिए करते हैं कि हमें उस वस्तु के उपभोग की आवश्यकता मालूम पड़ती है और हम उस आवश्यकता को पूरी करना चाहते हैं। अतएव उपभोग का मूल आवश्यकताएँ हैं और हमें इनके विषय में कुछ ज़रूरी बातें जान लेनी चाहिए।

आवश्यकता और इच्छा (Want and Desire)

आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूरा करने के लिए वह मेहनत करता है। आवश्यकता और इच्छा में फर्क है। आपकी इच्छा कलक्टर, जज और बादशाह बनने के लिए हो सकती है। आप सोच सकते हैं कि मैं जमींदार बनूँ और जो इस समय ज़मींदार है वह किसान बने और तब अच्छी तरह जमींदार की खबर लेवें। इच्छा करना और मन के लड्डू खाना बहुत कुछ एक ही बात है। लेकिन जब आप किसी इच्छा को कार्य रूप में कर दिखाने की कोशिश करते हैं तब इच्छा आवश्यकता में पलटती जाती है। आप कोट पहनने की इच्छा रखते हैं। जब आप कपड़ा मोल लाकर दर्जी से अपना कोट बनवा कर पहनते हैं तो कहा जायगा कि आपको कोट की आवश्यकता थी। इसी तरह बाजार में कई एक वस्तुओं को देख कर उनको खरीदने और उपभोग करने की इच्छा होती है लेकिन अगर हम उन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न या उद्योग न करें तो वह केवल कोरी इच्छा ही रह जाती है। किसी आवश्यकता को पूरी करने के लिए उद्योग करना निहायत ज़रूरी है।

आवश्यकता और उद्योग (Want and Effort)

प्राचीन काल से ही मनुष्यों को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रही

है। जिस समय लोग वन में जंगली जानवरों के समान रहते थे उस समय भी उन लोगों को अपने प्राण की रक्षा के लिए पीने को पानी, साँस लेने को वायु और पेट भरने के लिए अन्न इत्यादि की आवश्यकता थी। जैसे-जैसे आदमियों की सभ्यता बढ़ती गई, लोगों की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं।

आग का आविष्कार हुआ तब मनुष्यों को नाना प्रकार के भोजनों की ...कता हुई। उन्हें यह मालूम पड़ने लगा कि बिना उबाले चावल ... खा सकते, दाल पकानी चाहिए या माँस को भून कर खाना चाहिए। ...ी तरह एक के बाद दूसरी आवश्यकता प्रकट होती गई। जब भोजन की आवश्यकता पूरी हो गई तो वस्त्रों की आवश्यकता हुई। जब पहनने को कपड़े मिलने लग गए तो उनको पेड़ के नीचे या पेड़ के ऊपर डालों पर सोना अच्छा नहीं मालूम हुआ और रहने के लिए मकान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सब की तृप्ति के बाद ख़ास-ख़ास तरह के भोजन जैसे रसगुल्ला, कचौड़ी, पकौड़ी, हलवा आदि की ज़रूरत हुई। पहनने के लिए अब उत्तम-उत्तम वस्त्र नेकटाई, कालरदार कमीज़, कुरता, पैजामा, वगैरह की आवश्यकता पड़ी। इसी तरह आदमियों ने अपने को पेड़ की पत्तियों और फूलों से सजाना छोड़ दिया और सोने-चाँदी के गहने, कड़े, हँसली, जंजीर आदि बनाकर पहनने लगे। इसके बाद रथ या बैलगाड़ी की सवारी, बल्लम, भाला, तलवार आदि हथियारों, संगीत, इत्यादि की आवश्यकताएँ भी प्रकट हुईं। कहने का मतलब यह कि जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती गई और पुरानी आवश्यकताओं की तृप्ति होती गई, त्यों-त्यों नई आवश्यकताएँ उनके स्थान पर आती गईं, यहाँ तक कि अब उनकी संख्या गिनती से परे हो गई।

आवश्यकता और उद्योग का गहरा सम्बन्ध है। जैसे जैसे आदमी की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं, वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता रहता है। शुरू में यही दर्रा चलता रहता है लेकिन कभी कभी उद्योग से भी नई आवश्यकताएँ पैदा हो जाती हैं। यह सबको मालूम है कि रेल के इंजन का आविष्कार स्टेफिन्सन नाम के एक मनुष्य ने किया था। लेकिन कैसे? एक दिन आग पर पानी से भरी डेगची चढ़ी हुई थी और उस डेगची का मुँह रकेबी से ढका था। स्टेफिन्सन चाहता था कि भाप बाहर न निकलने

पावे। इस लिए वह रकेबी पर वज़नी चीज़ें रखने लगा। लेकिन तिस पर भी वह भाप का निकलना बन्द नहीं कर सका। अब उसने सोचा कि जब भाप में इतनी ताक़त है तो इससे माल खींचने की गाड़ी बनाई जा सकती है। स्टेफिन्सन के भाप का निकलना रोकने के उद्योग के कारण रेल की आवश्यकता पैदा हो गई। बहुत से मनुष्य किसी खास आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही मेहनत नहीं करते। ये लोग अपनी फ़ुरसत का समय आलस में नहीं बिता देते। इस समय में वे विज्ञान, साहित्य इत्यादि के बारे में पढ़ते-लिखते हैं और नयी नयी बातों को ढूँढ निकालते हैं। इन नए आविष्कारों की सहायता से नई नई वस्तुएँ बनायी जाती हैं और मनुष्य को इन वस्तुओं की भी आवश्यकता मालूम होती है।

आवश्यकता के लक्षण

आवश्यकताएँ अपरिमित हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। आमतौर पर आदमी को भाँति-भाँति के भोजन, तरह तरह के कपड़ों, नई नई किताबों और दूसरी वस्तुओं की इच्छा बनी रहती है। कहा जाता है कि जिनके पास धन है वे अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरी कर सकते हैं। परन्तु ज़रा सोचा जाय तो मालूम पड़ता है कि कोई भी धनवान मनुष्य यह नहीं कह सकता कि उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं क्योंकि ज्योंही एक आवश्यकता की तृप्ति होती है त्योंही दूसरी उसके स्थान पर आ खड़ी होती है। आवश्यकताओं की वृद्धि होने से ही सभ्यता की भी उन्नति होती है। मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित तो हैं ही लेकिन यदि यथेष्ट साधन हों तो मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता किसी एक समय में पूरी की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक भूखे आदमी को लीजिए। उसको भोजन की आवश्यकता है लेकिन उसके भोजन की भी एक सीमा है। चार पाँच रोटियों से उसका पेट भर जाता है और उसको उसके बाद फिर रोटियों की ज़रूरत नहीं रहती। इसी प्रकार किसी एक आवश्यकता को पूरी करने का सब सामान रहने से किसी खास समय में उसकी तृप्ति की जा सकती है। कहा जा सकता है कि कई एक इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। जैसे धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा, बड़प्पन की इच्छा इत्यादि

यह सहसा कहा भी नहीं जा सकता कि कितने धन, सामग्री या गहने से कोई आदमी या औरत सन्तुष्ट होगी। लेकिन इनमें से हर एक इच्छा, कई इच्छाओं से मिल कर बनती है। ये एक एक इच्छा नहीं है। उदाहरण के लिए धन की इच्छा को ले लीजिए। देखने में तो यह एक इच्छा है पर ... पीछे उस धन से मिलने वाली अनेक वस्तुओं की इच्छा छिपी ...ती है।

इसके साथ ही यह भी जान लेने की ज़रूरत है कि मनुष्यों को अपनी सब आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए एक सी जल्दी नहीं रहती। कोई कोई आवश्यकता अधिक ज़रूरी होती है तो कोई कम। साथ ही रामू के लिए जो आवश्यकता सब से अधिक ज़रूरी है, श्याम के लिए वह ज़रूरी न हो। मान लो रामू पढ़ता है और श्याम नहीं पढ़ता। रामू को तो किताब की ज़रूरत है लेकिन श्याम को इसकी कोई ज़रूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन कोई आवश्यकता ऐसी भी हो सकती है कि जो तुम्हारे लिए अभी ज़रूरत हो पर मेरे लिए नहीं। हाँ कुछ देर के बाद वह मेरे लिए भी ज़रूरी बन सकती है। मान लो, मैं खा चुका हूँ और तुमने अभी खाना नहीं खाया है इसलिए तुमको अभी खाना खाने के लिए भोजन चाहिये। कुछ घंटों के बाद जब मुझे फिर से भूख लगेगी तब मुझे भी भोजन की ज़रूरत पड़ेगी।

✓ किसी आवश्यकता की तृप्ति के लिए एक से अधिक साधन होते हैं। अगर आप को धूम्रपान की इच्छा है तो आप तम्बाकू सिगरेट, सिगार और बीड़ी इनमें से कोई सी भी चीज़ पी सकते हैं। इसी से ये चीज़ें एक दूसरे की जगह लेने की कोशिश करती हैं। अकाल के दिनों में ग़रीब लोग गेहूँ की रोटी के बदले चना, ज्वार, बाजरा इत्यादि की रोटी खाते हैं। इसी तरह आजकल किसी वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिए रेलगाड़ी और मोटर लारियों में लाग-डाँट चल रही है।

✓ जब हम किसी आवश्यकता को कभी कभी पूरी करते हैं तो वह आवश्यकता हमारे लिए अनिवार्य बनने की कोशिश करती है। जैसे कोई मनुष्य किसी के कहने से कभी शराब पी लें तो फिर बाद को उसको शराब पीने का चसका लग जाता है और वह पूरा पियक्कड़ बन जाता है। उसको

शराब पीने की आदत ऐसी ज़बरदस्त हो जाती है कि वह आसानी से उस आदत को नहीं छोड़ सकता, इसी प्रकार और आवश्यकताओं की भी आदत पड़ जाती है।

आवश्यकता के भेद (Kinds of Wants)

यह तो हम जान गये कि आवश्यकता किसे कहते हैं और उसके लक्षण क्या हैं, अब यह जानना ज़रूरी है कि आवश्यकताएँ कितने प्रकार की होती हैं। यों तो हम आवश्यकता के लक्षणों के मुताबिक कह सकते हैं कि कुछ ज़रूरतों को शीघ्र पूरा करना पड़ता है, किसी को देर में। जैसे पहनने के लिए कपड़ा चाहे न मिले लेकिन भूख लगने पर खाना अवश्य मिलना चाहिए। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उनको पूरा करने के लिए बहुत से साधन होते हैं जैसे धूम्रपान के लिए हम बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, या सिगार पी सकते हैं। इसी प्रकार नशा करने के लिए हम भंग, अफीम, ताड़ी, शराब वगैरह पी सकते हैं। ठीक, लेकिन इस तरह के तो शायद सैकड़ों विभाग बनाए जायं तब भी काम न चलेगा। सब से अच्छा तरीका वह है जिसमें आवश्यकताओं को तीन हिस्से में बाँटते हैं। पहले तो वे आवश्यकताएँ आती हैं जिनको हम आवश्यक समझते हैं। क्षुधा अपाहिज कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, वह अपने शरीर को नाश होने से बचाने की हमेशा कोशिश करता है, पेट भरने के लिए सब को भोजन और पीने को पानी चाहिए। पहनने के लिए कपड़े की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर एक बात नोट करने लायक है। राम साधारण भोजन करता है, फटा पुराना कपड़ा पहनता है और टूटी-फूटी झोपड़ी में रहता है। इसके विपरीत श्याम अच्छा अनाज, दूध, फल इत्यादि खाता है। वह साफ़-सुथरे कपड़े पहनता है और हवादार मकान में रहता है। एक तरह से राम और श्याम दोनों ही जीवन रक्षा के लिए जरूरी वस्तुओं का उपभोग करते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में राम कमज़ोर और रोगी बन जायगा और श्याम मज़बूत व तगड़ा। कहने का मतलब यह कि आवश्यक वस्तुओं में से कुछ तो केवल मनुष्य को जिंदा बनाए रखती हैं और कुछ आदमी की जीवन रक्षा के अलावा तन्दुरुस्ती भी प्रदान करती हैं। जीवनरक्षा के लिए आवश्यक वस्तुओं के अंतर्गत उन

चीज़ों को भी शुमार किया जाता है जो मनुष्य की आदत के कारण ज़रूरी पड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए किसान तम्बाकू पीते हैं। परन्तु क्या जीवन निर्वाह के लिए ज़रूरी है ? क्या इसके बिना किसान ज़िन्दा नहीं रह सकते हैं ? उत्तर है रह सकते हैं। परन्तु शुरू से ही तम्बाकू पीते पीते उनकी आदत ऐसी हो गई है कि अब वे बिना तम्बाकू पिए कुछ काम ही नहीं कर सकते। अतएव कुछ वस्तुओं की आवश्यकता तो आदमी को ज़िन्दा रखने के लिए पड़ती है, कुछ मनुष्य को स्वस्थ और निपुण बनाए रखती है और कुछ हमारी आदतों के कारण अनिवार्य बन गई हैं। इस प्रकार आवश्यक वस्तुओं के तीन भेद हुए—जीवन रक्षक, निपुणतादायक और कृत्रिम आवश्यक।

दूसरे हिस्से में वे आवश्यकताएँ रखी जाती हैं जिनकी मनुष्य को आराम करने के लिए जरूरत मालूम पड़ती है। आराम की वस्तुओं से शरीर को सुख मिलता है और काम करने की ताक़त भी बढ़ती है। लेकिन इन पर जितना खर्च किया जाता है उस हिसाब से कार्य-कुशलता नहीं बढ़ती। जैसे किसी ग़रीब आदमी के लिए धोती, कुर्ता और चप्पल उसकी कार्य-कुशलता बढ़ाते हैं लेकिन अगर वह बढ़िया महीन धोती, रेशमी कमीज़ व कपड़े का उम्दा जूता पहने तो ये वस्तुएँ उसके लिए आराम की वस्तुएं कही जावेंगी। इसी तरह से ग़रीब किसान के लिए साइकिल, घड़ी, पक्का मकान, इत्यादि भी आराम की सामग्री में शामिल किए जा सकते हैं।

अन्त में उन आवश्यकताओं की बारी आती है जिनको पूरा करने के लिए मनुष्य विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करता है। इस बार तो इन चीज़ों पर जो रकम खर्च की जाती है उससे बहुत कम कार्यकुशलता मिलती है। कभी कभी तो इन वस्तुओं के उपभोग से कार्य कुशलता बढ़ने की जगह घटने लगती है। उदाहरण स्वरूप खूब बढिया आलीशान मकान, बहुत क़ीमती भड़कीली पोशाक व विलायती ह्विस्की और अंगूरी शराब इत्यादि गिनाई जा सकती है। विलासिता की वस्तुओं के सेवन करने से आदमी को आलस घेर लेता है और काम करने को जी नहीं चाहता। शराब इत्यादि के सेवन से तो आदमी बिलकुल कमज़ोर नाकाम और रोगी बन जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आवश्यकताओं के ये भेद एक दूसरे से भिन्न नहीं है। दर असल इनका भेद आदमी की परिस्थित के अनुसार समझा जाता है। मनुष्यों की प्रकृति, आदत, फैशन आदि पर आवश्यकताओं के भेद में फ़र्क पड़ जाता है। एक डाक्टर के लिए मोटरकार आवश्यक मालूम पड़ती है क्योंकि उसकी सहायता से वह कम समय में बहुत से मरीज़ों को देख सकता है, लेकिन कालेज के प्रोफेसर के लिए मोटरकार आराम या विलासिता की ही वस्तु समझी जावेगी। अमीर आदमी के लिए महल, बिजली के लेम्प इत्यादि आराम की वस्तुएँ हो, लेकिन एक ग़रीब किसान के लिए ये वस्तुएँ एकदम विलासिता की वस्तुएँ समझी जावेंगी।

आवश्यकता की पूर्ति (Satisfaction of wants)

अब प्रश्न उठता है कि आवश्यकता पूरी किस प्रकार की जाती है। यह तो सबको मालूम है कि हर आदमी पहले अपने खाने पीनें की वस्तुएँ खरीदता है। अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी यही नतीजा निकलता है कि मनुष्य अधिकतर जीवन-रक्षक वस्तुओं का उपभोग करें और आराम व विलासिता की चीज़ों का उपभोग करने में रुपया पैसा की फ़िजूल खर्ची न करें। परन्तु इस बात पर हम बाद में ख़याल करेंगे। यहाँ पर पहले यह जानना आवश्यक है कि बहुत सी आवश्यकताओं को तो आदमी सीधे सीधे पूरा कर लेता है। मान लिया आपको पानी पीना है। आप नदी या तालाब पर जाकर पानी पी लेते हैं। अगर आपको जाड़े के दिन में नहाने के लिए गरम पानी करना है तो आप बटलोई में पानी भर कर आग पर चढ़ा देते हैं। जब कोई आवश्यकता सीधे सीधे पूरी की जाती है तो किसी सम्पत्ति का उपभोग सीधे सीधे किया जाता है। जैसे यहाँ पर बटलोई से काम लिया गया था। परन्तु अधिकतर आवश्यकता पूर्ति के लिए पहले रुपए-पैसे कमाए जाते हैं और तब उन रुपयों से आवश्यक वस्तु मोल ली जाती है। बढ़ई हल, कुर्सी, मेज़ आदि चीज़ें बनाकर बेचता है; लोहार फ़ाल, खुर्पा, फावड़ा वगैरह लोहे के सामान बनाता है। इन वस्तुओं को बेचने से जो पैसे बढ़ई या लोहार को मिलते हैं उनसे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ज़रूरी वस्तुएँ खरीदते हैं। कहने का

मतलब यह है कि आवश्यकताओं के पूरा करने के प्रश्न की जगह हमें यह सोचना चाहिए कि कोई मनुष्य अपनी आमदनी के रुपए-पैसों को किस प्रकार खर्च करता है तथा खर्च करने का कौन सा तरीका सबसे उत्तम होगा।

आय-व्यय (Income and Expenditure)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जीवन रक्षक पदार्थ तो सब लोगों को सेवन करना चाहिए। इन पर किया गया खर्च हमेशा न्याययुक्त कहा जाता है। आराम की वस्तुओं पर किया गया खर्च भी बुरा नहीं है क्योंकि इससे भी कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐशोआराम और विलासिता की वस्तुओं पर तथा मादक वस्तुओं पर किया गया खर्च अक्सर फिजूल खर्ची में समझा जाता है। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई जो यह है कि आमतौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सी वस्तु जीवन रक्षक है, कौन सी आराम की और कौन सी चीज़ विलासिता की है।-क्योंकि मनुष्य की प्रकृति, आदत, फैशन व समय के मुताबिक एक वस्तु आवश्यक भी हो सकती है और आराम व विलासिता की सामग्री भी बन सकती है। तब भी अगर कोई किसान एक घड़ी खरीदे तो उसका यह खर्च फिजूल खर्ची में गिना जायगा। लेकिन यदि एक विद्यार्थी घड़ी खरीदता है तो शायद उसकी खरीद न्यायपूर्ण मानी जा सकती है। हमारा गरीब सीतल किसान अगर अपने और अपने बच्चों को भूखा रख कर या कर्ज लेकर घड़ी खरीदता है तो वह ज़रूर विलासिता की चीज़ खरीदता है। क्योंकि उसी रुपये से वह ऐसी वस्तुएँ मोल ले सकता था जिससे उसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती। मान लीजिए वह घड़ी की जगह खाने के लिए चना और जवा खरीदता तो इससे वह अपना व अपने बच्चों का पेट भर सकता था। पेट भरे रहने पर वह मेहनत करके कुछ कमा सकता था। लेकिन अगर कोई अमीर मनुष्य ऐसा करे तो यह फिजूल खर्ची नहीं कहलाएगी। क्योंकि उसके पास इतना रुपया रहता है कि वह अपनी ज़रूरी आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरी कर सकता है।

कहा जाता है कि जीवन-रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ गिनी गिनाई हैं और यदि उन्हीं को पूरा करने पर अधिक ज़ोर डाला जायगा तो मनुष्य को अधिक

उद्योग नहीं करना पड़ेगा। और मनुष्य जाति असभ्य बन जायगी। अधिक सभ्य बनने के लिए यह आवश्यक है कि हम नई बातों का आविष्कार करें और नई नई वस्तुएँ बनावें, जैसे रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज। यह मानी हुई बात है कि ये सब विलासिता की चीज़ें हैं। अतएव हमको विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। लेकिन हमारे ग़रीब भारत के लिए यह बात कहाँ तक ठीक है? हमारे किसानों की क्या हालत है? क्या उन्हें जीवन रक्षक पदार्थ ही प्राप्त हैं? अंदाज लगाया गया है कि जेल के अन्दर कैदियों को जो भोजन मिलता है वह भी बाहर के अधिकांश मनुष्यों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च बिलकुल फिजूल है।

इसके अलावा हम बता चुके हैं कि हमारे मज़दूर और छोटे शिल्पकार अपनी आमदनी का अधिकांश भाग तम्बाकू, शराब, अफीम इत्यादि मादक वस्तुओं के सेवन में उड़ा देते हैं। ऐसी हालत में हमारे बच्चों को कहाँ से घी, दूध, मिल सकता है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य-कुशल बनें। तो फिर धन को किस प्रकार से खर्च करना चाहिए? उत्तर है इस तरह से जिससे न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश में रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जनसमूह को जीवन-रक्षक वस्तुएँ मिलें। जब तक यह हालत न हो जाय तब तक आराम व विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूल खर्ची में गिना जाना चाहिए। इसके बाद जब इन चीज़ों की भी बारी आवे तब ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करना चाहिये जिनसे थोड़ी देर के आनन्द के सिवा और कुछ न मिले, जैसे नाच, खेल-तमाशा, आतिशबाजी। इनमें तो जो सामग्री उसके बनाने में लगाई जाती है वह मिनटों में जल कर खाक हो जाती है अर्थात् देश का उतना धन नष्ट हो जाता है।

बचत (Saving)

एक बात और। क्या मनुष्य को अपनी आमदनी का एक भाग भविष्य के लिए निकाल कर अलग नहीं रख देना चाहिए? कौन जानता है कि जो मनुष्य आज सम्पन्नशाली है वह भविष्य में भी वैसा ही बना रहेगा? कितनी

बार अचानक ऐसे कारण आकर उपस्थित हो जाते हैं कि लखपती मनुष्य भी रोटियों को मोहताज हो जाते हैं। इसके अलावा जब आदमी बुड्ढा हो जाता है या चारपाई पकड़ लेता है तब अपनी जिन्दगी को पुराने ही तरीके से बिताने के लिए उसे पहले से रुपए बचाने पड़ते हैं। इसके अलावा बहुत से सज्जन अपने पुत्रों को पढ़ा कर कमाने योग्य बनाना चाहते हैं और पढ़ाई के लिए उन्हें पैसा सचय करना पड़ता है। बहुत से मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद लड़कों को कुछ धन-दौलत छोड़ जाना चाहते हैं। कुछ आदमी बाद मे तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं। कितने तो दान-पुण्य के लिए धन इकट्ठा करना चाहते हैं। इन सब बातों के लिए धन इकट्ठा करना अर्थात् बचाना पड़ता है। बचाई हुई रकम बचत कहलाती है।

बचत कितनी करनी चाहिए और कैसे ? इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य यह बात है कि भविष्य के महत्व के बारे में आदमी-आदमी की राय में फर्क रहता है। कोई भविष्य को मानते ही नहीं। उनका उद्देश्य खा-चाट सब बराबर कर देना रहता है क्योंकि कौन जानता है कि कब यमदेव का बुलावा आ पहुँचे। परन्तु ऐसे लोग अपनी आय का अधिकांश भाग थोड़ी देर तक मज़ा देने वाली चीज़ों पर खर्च करते हैं। लेकिन जो दूरन्देश होते हैं वे ऐसे खर्च को ताक पर रख कर रुपये को भविष्य के लिए बचा लेते हैं।

परन्तु बचाना कैसे चाहिए ? क्या यह सब से अच्छा होगा कि रुपए को या उन रुपयों से सोना-चाँदी मोल लेकर उनको धरती में गाड़ देवें ? हमारे भारत में गहनों के रूप में बहुत सा धन बेकार पड़ा हुआ है। और चूँकि यहाँ पर हर एक आदमी की इतनी भी आमदनी नहीं है कि वह जीवन रक्षक पदार्थ भी प्राप्त कर सकें, इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि बचत की रकम ऐसे काम में लगाई जाय जिससे देश की पूँजी बढ़े। लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। आप यों ही देखिए। बचत के रुपयों को गहने के रूप में रखने से आपको उस रकम पर कोई सूद तक नहीं मिलता। इस तरह से रकम रखने और गाड़ कर रुपया पैसा रखने में कोई अधिक फर्क नहीं मालूम पड़ता और यह साफ़ है कि यह तरीका ठीक नहीं। अस्तु सब से अच्छा तरीका तो यह होगा कि जैसे जैसे बचत होती जाय वह डाकघर या किसी

अच्छे बैंक के सेविंगबैंक के हिसाब में जमा कर दी जाय। इससे कुछ सूद मिलने के अलावा रुपया सुरक्षित रहता है। दूसरा तरीका, ज़मीन खरीदना या मकान बनवाना है। इससे भी रकम सुरक्षित रहती है और आमदनी अच्छी होती है। कुछ मनुष्य अपने बुढ़ापे के लिए अथवा अपने सहारे रहने वाले आदमियों को मदद करने के लिए जीवन बीमा करवा लेते हैं। इसके लिये कुछ साल तक हर साल एक निश्चित रकम बीमा कंपनी को देनी पड़ती है। अवधि खतम हो जाने पर बीमा की रकम बीमा करने वाले बुड्ढे को या उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितों को मिल जाती है।

कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे अन्न और कपड़े-लत्ते का दुख नहीं है अपनी आय में से कम से कम दसवाँ हिस्सा हर साल बचाने का दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये। यदि वह ऐसा करने में सफल होगा तो इस बचत की वजह से मुसीबत के बुरे दिनों में कर्जदार होने से बच जायगा और हमेशा सुखी बना रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उसका महत्त्व समझाइये।

२—आवश्यकताओं की विशेषताएँ लिखिये और उन पर नियंत्रण की जरूरत समझाइये।

३—आवश्यक वस्तुओं के भेद उदाहरणों सहित समझाइये। अपने निपुणदायक आवश्यक पदार्थ और कृत्रिम आवश्यक पदार्थों की सूची दीजिये।

४—आराम की वस्तुएँ और विलासिता कि वस्तुओं के भेद बतलाइये। किसी किसान की विलासिता की वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये।

५—मादक वस्तुओं के उपभोग से क्या हानियाँ होती हैं?

६—गाँवों में तम्बाकू का उपयोग बहुत होता है। क्या आप इसे अच्छा समझते हैं?

७—कुछ स्थानों में चाय का उपभोग बढ़ रहा है। क्या इसका प्रचार करना आवश्यक है?

८—सिद्ध कीजिये कि सादा जीवन और उच्च विचार ही आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम ध्येय है।

९—बिना आमदनी के बढ़ाये संतोष की मात्रा कैसे बढ़ाई जा सकती है?

१०—खर्च में बचत की आवश्यकता समझाइये। साधारण परिस्थिति के व्यक्तियों को कम से कम प्रति मास कितनी बचत करनी चाहिये?

११—आर्थिक दृष्टि से दानधर्म की सर्वोत्तम प्रणाली कौन सी है? भारत में इस प्रणाली के अनुसार दान कहाँ तक होता है?

१२—अपनी बचत के धन से सोने-चाँदी के गहना बनवा लेना कहाँ तक उचित है?

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living)

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित होती हैं। फिर भी आदमी अपनी आमदनी अपनी दशा और परिस्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं का उपभोग करने लगता है। इन चीज़ों के उपभोग का जो दर्जा पड़ जाता है वह बहुत कम बदलता है और यदि बदलता है तो बहुत धीरे धीरे। जितनी आमदनी होगी उतना ही ख़र्च भी किया जा सकेगा। आमतौर पर एक सी आमदनी वाले मनुष्य या परिवार करीब करीब एक ही समान रहते हैं। अर्थात् उनका रहन-सहन का दर्जा एक सा ही होता है। और जैसे जैसे आमदनी में कमी-बेशी होगी वैसे ही वैसे रहन-सहन के दर्जों में भिन्नता पाई जाती है। यों तो एक तरह से प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता-जुलता नहीं है, इसलिए जितने परिवार हैं उतने रहन-सहन के दर्जे हो सकते हैं। लेकिन साधारणतः रहन-सहन के दर्जे चार भागों में बाँटे जाते हैं।

पहले दर्जे में वे लोग शामिल रहते हैं जिन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ भी प्राप्त नहीं होते तथा जिन्हें कई कई दिन तक उपवास करना पड़ता है। इस दर्जे के मनुष्य भीख माँगते हैं और कर्ज भी लेते हैं। इन्हें दरिद्र कहा जाय तो ग़लत न होगा। हमारे ग़रीब मज़दूर व किसान इसी दर्जे में रक्खे जा सकते हैं। दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिन्हें जीवन-रक्षा सम्बन्धी साधारण पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। दोनों वक्त रूखा सूखा भोजन खाना फटा पुराना कपड़ा पहनना व टूटे फूटे मकान में रहना ही इन लोगों का काम रहता है। तीसरे दर्जे वाले मनुष्यों को जीवन-रक्षक वस्तुओं के अलावा आराम की भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। दफ़्तरों में काम करने वाले हमारे हैडक्लर्क साहब खूब अच्छा खाना खाते हैं, साफ़ सुथरा कपड़ा पहनते हैं तथा खुले हुए हवादार मकान में रहते हैं। ये आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। चौथे दर्जे में रईस और अमीर आदमी आते हैं जिनके पास धन की कमी नहीं रहती। वे जो चाहें ख़रीद सकते हैं। उनका जीवन पूरी तरह से विलासिता पूर्ण होता है। परन्तु यह कोई ज़रूरी नहीं कि जो लखपती है उसके रहन-सहन का दर्जा सब से ऊँचा हो। अगर रईस मनुष्य का स्वास्थ्य ख़राब रहता है और उसे कोई चीज़ नहीं पचती, तो उसका रहन-सहन सुख देने लायक नहीं होगा। इसी तरह से आदमियों को ऐसा रोग पकड़ लेता है कि उसका असर उसके रहन-सहन पर बहुत पड़ता है। मेवालाल की आँखें ख़राब हों, हीरा बहरा हो, प्रेम की आँतों में कीड़े पड़ गये हों तो ये लोग उपभोग की चीज़ों से पूरा पूरा संतोष और आनन्द नहीं उठा सकते। इसी तरह बहुत से तन्दुरुस्त और तगड़े आदमी शराब, ताड़ी वगैरह पीकर या अनाप शनाप खा कर या बुरी सोहबत में पड़ जाने के कारण अपने को बरबाद कर देते हैं। फलस्वरूप उनका रहन सहन का दर्जा गिर जाता है।

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

ऊपर बताई बातें हमारे भारत पर बहुत कुछ लागू होती हैं। यहाँ पर पहले तो आमदनी की कमी है, अंदाजा लगाया गया है कि हिन्दुस्तान के राजा महाराजा, सेठ-साहूकार, रईस व   को मिलाकर भी हर एक भारतीय की

दैनिक आमदनी का औसत छै सात पैसे पड़ता है। इसके अलावा उपभोग की भी कमी मालूम पड़ती है। सरकार की ओर से यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तानियों का रहन-सहन का दर्जा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पहले यहाँ आराम की जितनी सामग्री आती थी उनसे कहीं अधिक वस्तुएँ आजकल आती हैं। देहातों में पक्के मकान बनते जाते हैं। साइकिल का प्रचार बहुत धिक हो गया है। चाय और सिगरेट की खपत अधिक हो गई है इत्यादि। न्तु इस तरह कहने वाले एक बात भूल जाते हैं कि यह मनुष्य की स्वाभाविक आदत है कि वह भोगविलास से पदार्थों का सेवन करना चाहता है और यदि कोई मनुष्य जीवन-रक्षक वस्तुओं को खाने के बजाय शौकीनी करने लग जाय तो क्या इसके यह मतलब होते हैं कि उसका रहन-सहन ऊँचा हो गया। यदि आप ख्याल करिए तो आपको अपने साथियों में ही कितने ऐसे मिल जाएँगे जिनके घर मे भूँजी भाँग न होगी पर स्कूल ख़ूब ठाटबाट से आते हैं। आप अनेक घर के बूढ़े बाबा से पूछिए तो वे आपको बतलावेंगे कि भारत का पतन हो रहा है। इसका कारण पूछने पर वे शायद आपको यही जवाब देंगे कि जहाँ पहले वे पौष्टिक पदार्थों का सेवन करते थे और सदैव व्यायाम का ध्यान रखते थे, वहाँ आजकल ऐसी बातों पर अधिक खर्च किया जाता है जिससे शरीर को भी नुकसान पहुँचता है और मानसिक हानि भी होती है।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने का उपाय

अतएव यह बहुत ज़रूरी है कि भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा किया जाय, परन्तु हमारा मतलब यह नहीं है कि केवल भोग विलास की वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हो या आराम देने वाले पदार्थों का उपभोग बहुत अधिक बढ़ जाय। दस बीस फी सदी मनुष्यों के रहन-सहन के दर्जे के ऊँचा होने से भी देश के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले तो हर एक आदमी को जीवन-रक्षक वस्तुएँ तथा वे पदार्थ मिल जाएँ जिनसे वह कार्य-कुशल भी बना रहे। देश के सब आदमियों का जीवन सुखमय होना चाहिए। ऐसे मनुष्य ... न बचें जो अपने जीवन-रक्षक पदार्थों के लिए ही लालायित हों।

हमारे गिरे हुए दर्जे को ऊँचा करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें अच्छी तथा स्वास्थ्य-प्रद भोजन पेट भर मिले। भोजन अच्छा होने के लिए यह ज़रूरी है कि खाना साफ बर्तनों में पकाया जाय। भोजन के बाद कपड़े की बारी आती है। हम जानते हैं कि गरमी, जाड़ा, बरसात इत्यादि का शरीर पर बहुत असर पड़ता है। अगर आप जाड़े में रुई की मिर्ज़ई न पहनेंगे अथवा कम्बल न ओढ़ेंगे तो आपको ठंढ लग जायगी। हर समय गंदे कपड़े पहने रहने से तरह तरह की बीमारी पैदा हो जाती है। इसी प्रकार रहने के मकान साफ़ जगह पर बने होने चाहिये। उसके कमरों में रोशनी, सफ़ाई, पानी इत्यादि का इंतज़ाम रहना चाहिये। एक परिवार के रहने के लिए मकान में जिसमें पाँच छै आदमी हों कम से कम चार पाँच कमरे होने चाहिए। तन्दुरुस्ती के लिए कसरत, खेल-कूद, नींद भी बहुत आवश्यक है और थक जाने पर किसी प्रकार के मनोरंजन का इंतज़ाम रहना चाहिए।

भारत के रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय। शिक्षा प्राप्त मनुष्य अधिक कमा सकते हैं। इसके अलावा वे उपयोगी वस्तुओं का उपभोग इस प्रकार से करते हैं कि उससे अधिक आराम मिलता है। इसके अलावा ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे भारत में सन्तान वृद्धि कम होवे। इस समय हिन्दुस्तान की आबादी सैंतीस करोड़ के लगभग मानी जाती है। यदि जनसंख्या घट जाय तो हमको उपभोग के लिए अधिक सामग्री मिलने लग जाय। बहुधा देखा गया है कि दूसरों को देख कर आदमी उसी की तरह रहने का प्रयत्न करता है। इससे रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है। यात्रा करने से हमको बाहर का तजुर्बा होता है और हम अच्छी वस्तुओं का उपभोग करने लगते हैं। इन सब बातों के अलावा इस बात की कोशिश होनी चाहिये जिससे हमारे किसानों का कर्ज़ किसी प्रकार कम हो। हमारे किसान भाई कर्ज़ में पैदा होते हैं, कर्ज़ में पलते हैं और कर्ज़ छोड़ कर ही मर जाते हैं। परन्तु यह सब काम उस समय तक नहीं हो सकते जब तक कि हमारी सरकार हमारी मदद को न आवे। सरकार की ओर से स्कूल, लाइब्रेरी, दवाखाने पार्क इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिए। ग़रीबों को मुफ़्त में ही प्रारम्भिक

शिक्षा देने का इन्तजाम आवश्यक है। सरकार चाहे तो किसानों का कर्ज घट जाए। इसके अलावा सरकार उद्योग-धंधों को मदद दे सकती है।

पारिवारिक बजट (Family Budget)

अब तक जो कुछ कहा गया है उसकी जड़ मनुष्य के रहन-सहन के दर्जे में है। उसको भली भाँति समझने के लिए हमको यह पता लगाना चाहिए कि कौन व्यक्ति कितनी आमदनी करता है तथा वह उस धन को किस प्रकार ख़र्च करता है। रहन सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए मनुष्यों के आय-व्यय का अध्ययन करना अनिवार्य है। अँग्रेज़ी में आय-व्यय सम्बन्धी लेखे को बजट कहते हैं। इस शब्द का अब हिन्दी में भी प्रयोग होने लग गया है। किसी मनुष्य या परिवार के बजट के अंदर यह देखा जाता है कि उस परिवार में कितने मनुष्य हैं, कितने कमाई करते हैं, वे कैसे मकान में रहते हैं, उनकी उम्र, योग्यता, शिक्षा आदि क्या है? परिवार की होने वाली आय क्या है, वह किस प्रकार खर्च की जाती है? अन्त में कुछ बचत भी होती है अथवा परिवार-वालों को कर्ज लेना पड़ता है? रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए व्यय सम्बन्धी अंकों से बड़ी सहायता मिलती है।

विविध व्यय सम्बन्धी अंकों के अध्ययन करने से यह निश्चय हुआ है कि जिस दर से एक कुटुम्ब की आमदनी बढ़ती है, भोजन का व्यय उसी दर से नहीं बढ़ता। लेकिन वस्त्र और मकान-भाड़े का खर्च उसी दर से बढ़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन की सामग्री के व्यय की वृद्धि का दर आमदनी की वृद्धि की दर से अधिक बढ़ जाता है। जर्मन निवासी डाक्टर एंजिल हज़ारों परिवार के बजट को देख कर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम आमदनी वाले परिवार का अधिकांश भाग जीवन निर्वाह में खर्च हो जाता है। लेकिन वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च लगभग बराबर होता है अर्थात् यदि पचास रुपये आमदनी वाले का वस्त्र में करीब आठ रुपए खर्च होते हैं तो सौ रुपये आमदनी वाले का सोलह और हज़ार रुपया आमदनी वाले का करीब एक सौ साठ रुपया खर्च होता है। इसी तरह किराए में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत

खर्च बराबर होता है। लेकिन यह बात ज़रूर है कि अधिक आमदनी वाले परिवार का शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि में अधिक खर्च हो जाता है।

किसान का खर्च

ऊपर कही बातों को और स्पष्ट करने के लिए दो तीन [illegible] का विवेचन करना आवश्यक मालूम पड़ता है। और चूँकि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है इसलिए पहले किसानों की ओर ही ध्यान देना [illegible] पड़ता है। यों तो आपको सुखी किसान भी शायद कहीं कहीं मिल जायेंगे। हमको उनसे अधिक मतलब नहीं क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। अस्तु, भारतीय किसान के रहन सहन का दर्जा बिल्कुल नीचा है। उसके कुटुम्ब की मासिक आमदनी पद्रह रुपए से कम ही रहती है। यह पता लगाया गया है कि सयुक्त प्रान्त में किसानों की वार्षिक आमदनी [illegible] नब्वे रुपये के बीच रहती है। इसी से हम इनके रहन सहन के दर्जे का अनुमान लगा सकते है। इन बेचारों को साल भर [illegible] रूखा सूखा भोजन भी नहीं मिलता। पहनने का कपड़ा बहुत ही मामूली, फटा और मैला रहता है। अक्सर ये लोग एक साधारण झोपड़े में ही गुजर करते है। अधिकतर यह पाया गया है कि जो परिवार बहुत गरीब होता है उसकी जनसंख्या बहुत अधिक होती है। इन गरीबों के बच्चे कभी एक कपड़ा पहिने या कभी कभी नंगे ही घूमा करते हैं। इन बच्चों को दोनों वक्त दूध-घी या अच्छा खाना तक नहीं मिलता। उनकी पढ़ाई लिखाई की तो कोई परवाह ही नहीं करता। भारत में शायद ही कोई किसान ऐसा होगा जो कर्जदार न हो। किसी का तो यह मत है कि वह कर्ज लेकर पृथ्वी पर आता है, जिन्दगी भर महाजन के यहाँ रुपया भरता है और अन्त में कर्ज छोड़ कर ही मर जाता है। बिना कर्ज के तो इनका काम ही नहीं चलता। बीज, पशु, औजार या ब्याह-शादी को तो छोड़ दीजिए, बेचारा किसान अपने रोज के खर्च के लिए भी कर्ज लेता है। उसको सरकारी लगान भी देना पड़ता है। इसी में उसकी आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है। फिर कर्ज की रकम को कौन कहे वह उसका ब्याज तक चुका पाता।

गाँव के मजदूर और उनका खर्च

अतएव यह तो सिद्ध हो गया कि भारतीय किसान बड़े कष्ट और श्रम से अपना जीवन निर्वाह करता है। किसान का दूसरा भाई है गाँव का मज़दूर। कुछ सज्जनों का कहना है कि इनकी हालत तो किसानों से भी ख़राब है। किसान इन लोगों पर ज़मींदारी हुकुम चलाते हैं अर्थात् जैसे जमींदार किसानों से बेगार लेते हैं तथा उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, वैसे ही किसान लोग इन मजदूरों के साथ व्यवहार करते हैं। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि इससे और मज़दूर के पारिवारिक व्यय से विशेष सम्बन्ध नहीं हैं पर यह ज़रूर है कि इससे मज़दूरों की आय कम हो जाती है। मज़दूरों और किसानों के बीच केवल एक फर्क पाया गया है और वह यह कि किसानों की आय प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती है लेकिन मज़दूरों की मज़दूरी कुछ न कुछ नियमित होती है। परन्तु सोचने लायक बात तो यह है कि अक्सर मज़दूरों का हिस्सा बाँध दिया जाता है! किसान के पास जो अनाज रहता है वह स्वयं उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी में से उसको मजदूर की मज़दूरी देनी पड़ती है अतएव वह मज़दूर को मज़दूरी के रूप में कम से कम अनाज देने का प्रयत्न करता है। ऐसी दशा में मज़दूर तो सचमुच किसानों से भी गए बीते बन जाते हैं तब भी हम उन्हें बिना अधिक गलती किए किसानों के रहन-सहन के दर्जे में रख सकते हैं।

गाँव के कारीगर का व्यय

भारतीय गांवों में यदि किसी की हालत किसानों और मज़दूरों से अच्छी कही जा सकती है तो वह है गाँव के शिल्पी या कारीगर की हालत। उसे न तो प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है और न मज़दूरों की तरह उनकी चुटिया किसानों के हाथ दबी रहती है। यदि कहा जाय कि गाँव के कारीगर की मासिक आमदनी पंद्रह रुपए के ऊपर पहुँच जाती है तो कोई गलत बात न होगी। बहुत से परिवारों के बजट को देखने के बाद पता चलता है कि या तो ये लोग भी खाने की चीजों पर आधी सी अधिक रकम खर्च कर देते

है । रोशनी और ईंधन पर इनकी आमदनी का बीसवां हिस्सा खर्च होता है और कपड़े खर्चे पर लगभग दस प्रतिशत । मकान का किराया, रोशनी और ईंधन के खर्च के बराबर होता है । आमदनी का बचा हुआ पाँचवां भाग अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है । हलांकि घी दूध तो इन्हें भी नहीं के बराबर ही मिलता है । सफ़ाई और रोशनी का भी इन्तजाम खराब रहता है और किसानों की तरह इनमें भी शराब या ताड़ी पीने की बुरी आदत पाई जाती है । यह बात भी नहीं है कि ये कर्ज न लेते हों और सूद की दर तो हमेशा की तरह पचहत्तर अस्सी प्रतिशत सालाना से कम नहीं होती । शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ये लोग भी बहुत कम खर्च करते हैं ।

अभ्यास के प्रश्न

१—रहन-सहन के दर्जे का अन्दाजा किन किन बातों से लगाया जाता है ?

२—अपने गाँव के साधारण किसान की रहन-सहन के दर्जे की तुलना उसी गाँव के मजदूर की रहन-सहन के दर्जे से कीजिए ।

३—अमीर लोग किन वस्तुओं पर अपना रुपया अधिक खर्च करते हैं ?

४—अपने गाँव के कम से कम एक साधारण किसान, एक अमीर किसान और एक गरीब किसान के आय-व्यय का एक मास का हिसाब लगाइये और यह बतलाइये कि निम्नलिखित मदों पर कितना प्रतिशत खर्च प्रत्येक दर्जे के किसान ने किया :—

(अ) भोजन (ब) कपड़ा (स) मकान भाड़ा (उ) शिक्षा (क) मुकदमेबाजी (ख) मादक वस्तु (ग) दानधर्म (घ) अन्य खर्च ।

५—किसी कुटुम्ब के मासिक आय-व्यय का हिसाब देख कर हम यह किस प्रकार बता सकते हैं कि व्यय अच्छे तरीके से किया जा रहा है या नहीं ?

६—रहन-सहन का दर्जा ऊँचा कर देने के क्या तरीके हैं ? उनका उपयोग भारत में कहाँ तक किया जा रहा है ?

७—पारिवारिक आय-व्यय रखने की आवश्यकता समझाइये।

८—अपने कुटुम्ब के मासिक व्यय की आलोचना कीजिये।

९—यात्रा का रहन-सहन के दर्जे पर क्या प्रभाव पड़ता है?

१०—रहन-सहन का दर्जा बढ़ाने में शिक्षा का महत्त्व समझाये।

११—रहन सहन के दर्जे का अर्थ समझाइये। गाँवों में रहन-सहन का दर्जा क्यों नीचा है? उसे किस प्रकार ऊँचा किया जा सकता है?

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो?

भोजन की आवश्यकता

अब तुम जान गए होगे कि हमारी रहन-सहन में भोजन बड़े महत्त्व का स्थान रखता है। अतएव यह बहुत जरूरी है कि हम यह जान लें कि हमको कैसा भोजन करना चाहिए। पहले यही बताइये कि आप भोजन क्यों करते हैं? हम जो वस्तुएँ खाते हैं उनसे क्या मतलब निकलता है? उत्तर में कहा जा सकता है कि हमें दो बात की आवश्यकता रहती है एक तो गर्मी की और दूसरे चर्बी की। आप अभी दिनों दिन लम्बे चौड़े होते जा रहे हैं और आपका डील डौल बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि आप खाना खावें। भोजन करने से करीब पचीस साल की उम्र तक हमारे शरीर और दिमाग की वृद्धि होती है ताकि वे मजबूत बन सकें। दूसरे काम करने से शरीर और दिमाग में जो कमी होती है उसकी भी आहार से पूर्ति होती है। जो वस्तु हम खाते हैं उनमें से कोई बदन को गर्म रखती हैं और किसी से गोश्त बनता है। बदन को चंगा रखने के लिये यह ज़रूरी है कि हम दोनों तरह की चीज़ें खाया करें। हमको जितनी गोश्त बनाने वाली चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है उससे चार गुना ज्यादा गर्म रखने वाली चीज़ों की है। अगर हम एक तरह का खाना ज़रूरत से ज्यादा खालें और दूसरी तरह का ज़रूरत

से कम, तो हमारा पेट तो भर जायगा लेकिन हमारी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचेगा।

चर्बी, प्रोटीन (Protein), चीनी और विटामिन (Bitamin)

ऊपर बताई हुई बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमको ख़ास ख़ास वस्तुएँ खानी चाहिये परन्तु अब यह कैसे समझा जाय कि कौन कौन सी चीज़ें अवश्य खानी चाहिए और कितनी। इसके पहले यह बताना जरूरी है कि प्रत्येक भोजन की वस्तु से हमको तीन पदार्थ मिलते हैं चर्बी, प्रोटीन और चीनी। दही, घी, मक्खन तथा नारियल के तेल आदि में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन एक पदार्थ का अंग्रेजी नाम है। मिर्च, बदाम, मूंगफली, दाल, सूजी, बिना कूटे व पालिश किए हुए चावल और गोश्त में प्रोटीन काफी होती है। इसी तरह शक्कर, शहद, गन्ना, आटा, चावल, जौ व मुरब्बे वगैरह में चीनी बहुत होती है। चर्बी, प्रोटीन और चीनी के अलावा हमको विटामिन नाम के एक तत्व की आवश्यकता पड़ती है। विटामिन कई तरह के होते हैं जैसे विटामिन A, विटामिन B, विटामिन C, विटामिन D इत्यादि। हमको इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। दूध और फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है, चर्बी, प्रोटीन व चीनी कम रहती है। लेकिन तब भी उनकी कदर इसीलिए की जाती है कि उनमें विटामिन होता है। गाय के दूध में ऊपर बताए चारों विटामिन होते हैं लेकिन विटामिन A सबसे अधिक होता है। यह जरूरी नहीं कि हर एक चीज में ये सारे विटामिन हों जैसे मिर्च, चाय, कहवा में विटामिन होता ही नहीं। गोभी, टमाटर आदि में पहले तीन विटामिन खूब होते हैं। फलों में विटामिन C की अधिकता रहती है।

भोजन के भेद

अस्तु, आजकल के प्रचलित भोजन तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं :— फल, अन्न और माँस। फल का आहार सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। फलों के ऊपर रहने वाले प्रकृति देवी के पशु पक्षी कितने सुन्दर, मन मोहक, रंग बिरंगे और मधुर कंठ वाले होते हैं। योरप के विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला

है कि फलों में एक तरह की बिजली होती है जिससे शरीर अच्छी तरह गठ जाता है। फलों के बाद अन्न का नम्बर आता है। रोटी, दाल, भात इन सब की गिनती अन्न में की जाती है। अन्न जितना सादा होता है उतना ही अच्छा होता है। हमारे पूर्वजों का उद्देश्य रहता था 'सादा जीवन, व ऊँचे विचार"। जो मजा तथा फायदा गेहूँ की बालियों में होता है वह गेहूँ में नहीं होता। गेहूँ से उतर कर रोटी का गुण होता है, उससे उतर कर पूड़ी का और अन्त में पकवानों का। आटा जितना मोटा हो उतना ही अच्छा होता है। आजकल चक्की में पिसने वाले आटे की बहुत सी चीनी गरमी के कारण जल जाती है। चावल में पकाने में उसका पानी अर्थात् माँड़ नहीं फेंकना चाहिए। पके हुए चावल में कुछ नहीं होता, सब गुण तो माँड़ में उतर आते हैं। हम लोगों में कुटे हुए चावल खाने की आदत है। कूटने से चावल का बहुत सा अंश अलग हो जाता है। इसी तरह से दाल को उसके छिलके के साथ खाना चाहिए। मूँग की छिलकेदार दाल में जो गुण होता है वह धुली मूँग की दाल में बिलकुल नहीं रहता। तरकारियाँ खून व पेट को साफ़ करती हैं। इसलिए हमारे भोजन में तरकारियों का होना जरूरी है। पेट के हाजमा को कभी बिगड़ने नहीं देतीं। इसके अलावा इनमें विटामिन, A, B, C, खूब होते हैं। डाक्टर लोग अन्नाहार में दूध को आवश्यक बताते हैं और थोड़ा सा घी भी। माँस खाने वालों के शरीर में अक्सर एक तरह का विष पैदा हो जाता है तथा माँसाहारी का मन उतना वश में नहीं रहता। यूरप तथा पश्चिम के अन्य देशों में माँसाहारियों का नम्बर घटता जाता है और फलाहार और अन्नाहार करने वाले मनुष्य तादाद में बढ़ते जा रहे हैं।

उपयुक्त भोजन की मात्रा

हमारे पुरखे पहले जो खाना खाते थे अथवा उन्होंने रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, दूध का जो सादा खाना ठीक किया था उसमें हमें सब चीज़ें मिल जाती हैं। रोटी और भात में चीनी की भरमार है, दाल और दूध से प्रोटीन मिलता है और अन्य पाचक पदार्थ मिल जाते हैं। आप कहेंगे कि यह तो पुराने जमाने की बातें हैं। आपका साथी राम पूछ सकता है कि क्या रोटी ज्यादा खाई जाय और दूसरी वस्तुएँ कम। श्याम कह सकता है

के मैं दूध तो खूब पिऊँगा मगर और चीज़ें केवल नाम करने को खा लूँगा।
इसलिए यह जानना ज़रूरी है कि कौन सी वस्तु कितनी खानी चाहिए।
रोटी या दूध से हमको जितनी चाहिए उतनी गोश्त बनाने वाली चीज़ नहीं
मिल सकती और शक्कर, चावल, घी, मक्खन तो हमको सिर्फ गरम रख सकते
हैं। जो लोग गोश्त खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करने वाली और गोश्त
बनाने वाली चीज़ें उसी से मिल जाती है। मगर बहुत से लोग ऐसे हैं जो
गोश्त नहीं खाते। हिन्दुओं में तो गोश्त खाने का रिवाज कम है। उनको
इसके बदले क्या खाना चाहिए? मूँग, मटर, अरहर और इसी तरह की
जितनी दालें हैं इन सब में गरमी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली
दोनों तरह की चीज़ें होती हैं। सेर भर मांस में गोश्त बनाने वाली जितनी
चीज़ें होती हैं उससे कहीं ज्यादा सेर भर दाल में होती है।

किसी ने सच कहा है कि हमारे आहार में मांस, मछली और अंडे रहने
की बिल्कुल जरूरत नहीं है। हमें पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन दूध, दही, मट्ठा
मिलना चाहिए। इसके अलावा हमारे भोजन में रोज़ कुछ न कुछ कच्चे
(बिना आँच पर पकाए हुए) पदार्थों का रहना बहुत ज़रूरी है। इसके
लिए हरा मटर, हरा चना, टमाटर, मूली, गाजर, ताजे फल, बेर, ककड़ी,
खरबूजा, खट्टे व मीठे नीबू का रोज सेवन करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य
बनने के अलावा हमारी आयु भी बढ़ जाती है। हमारे भोजन में गुड़ और
शक्कर का रहना बिल्कुल आवश्यक नहीं है। इन्हें यदि थोड़ा सा खाया
जाय तो कोई हानि नहीं होती पर ज्यादा खाने से ये नुकसान पहुँचाते हैं।
बाजार की मिठाइयाँ तो भूल कर भी नहीं खाना चाहिए। अस्तु हिसाब लगा
कर निकाला गया है कि स्वस्थ रहने के लिए एक युवा पुरुष को २४ घंटों में
निम्नलिखित भोजन करना चाहिए :—

घर का पिसा आटा ६ छटाँक, दाल १ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी
आधी छटाँक, तरकारी ६ छटाँक, फल ४ छटाँक, दूध आधा सेर और थोड़ा
सा नमक, जो कि खाना पचाने के लिए बहुत ज़रूरी है।

भोजन उसी समय करना चाहिए जब खूब भूख लगी हो। यह न होना
चाहिए कि बकरी की तरह हर समय मुँह चलता रहे। यह तभी समय हो
सकता है जब कि वक्त से खाना खाया जाय। खाने के अलावा पानी पीना

भी बहुत ज़रूरी है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि पानी हमेशा खाना खाने के घंटा आधा घटा बाद पिया जाय! यदि पानी पीने की इच्छा बहुत तेज़ हो तो खाने के साथ दो चार घूँट पानी पी ले। चौबीस घंटे में दो सेर के लगभग पानी ज़रूर पीना चाहिए। गरमी के दिनों में पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—एक युवा मनुष्य के लिए प्रतिदिन कितना भोजन स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है।

२—आपके भोजन में कौन सी बातों का किस परिमाण में होना आवश्यक है?

३—किसानों और मज़दूरों के भोजन में किन बातों की कमी रहती है और यह बिना खर्च बढ़ाये कैसे दूर की जा सकती है?

४—शहर में रहने वाले और गांवों में रहने वालों के भोजन में क्या अंतर रहता है?

५—जैसे जैसे आमदनी बढ़ने लगती है, भोजन में किस प्रकार का अंतर होने लगता है।

६—प्रोटीन, चर्बी और विटामिन किन पदार्थों में अधिक होते हैं?

७—भोजन में दूध, फल और हरी तरकारी का महत्व समझाइये।

८—सात्विक भोजन के लिए किन वस्तुओं का उपभोग कितने परिमाण में करना चाहिये?

९—तामसिक भोजन के पदार्थों की सूची दीजिये।

१०—मानसिक परिश्रम के करने वाले व्यक्तियों को अपने भोजन में किन वस्तुओं का अधिक परिमाण में उपयोग करना चाहिये।

नवाँ अध्याय

विनिमय

वस्तुओं की अदला-बदली (Barter)

लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई को बिना मोल लिए खाने को अनाज
नहीं मिल सकता। वह कुर्सी मेज़, खिड़की, हल, गाड़ी आदि बना कर
बेचता है। बेचने से जो दाम आता है उससे मंडी में जाकर वह अनाज
खरीदता है। परन्तु क्या यह ज़रूरी है कि बढ़ई माल को रुपए-पैसे के बदले
बेचे। हमारे गाँवों में अधिकतर यह होता है कि किसान अनाज देकर अपने
मतलब की वस्तु दूसरे से ले लेते हैं। अगर रामू को एक जोड़ा धोती लेना
होता है तो वह पन्द्रह बीस सेर अनाज देकर बज़ाज़ से उस धोती को ले लेता
है। लोहार को जब अनाज की ज़रूरत पड़ती है तो वह किसी किसान को
जिसे फावड़े आदि की ज़रूरत होती है वे औज़ार देकर अनाज ले लेता है।
पुराने समय में रुपया-पैसा तो चलता नहीं था। उस समय इसी तरह की
अदला-बदली होती थी। हमारे गाँवों की तरह ही अफ्रीका, आस्ट्रेलिया
आदि देशों के असभ्य जंगली अब भी हाथी दाँत, गोंद, मोम, शुतुर्मुर्ग के
पर वग़ैरह देकर उनके बदले में हथियार, औज़ार और खाने-पीने की चीज़ें
लेते हैं।

बदले के लिए कम से कम दो चीज़ें ज़रूर दरकार होती हैं। जब हम यह
कहते हैं कि किसी का बदला हो सकता है, तो हमारा मतलब यह रहता है
कि उस चीज़ का बदला किसी और चीज़ से हो सकता है। लेकिन एक बात
है। मान लो किसी बढ़ई ने एक हल तैयार किया और वह उसके बदले
अनाज लेना चाहता है। पर अनाज पैदा करने वाले किसान को उस समय
हल की दरकार नहीं है। या अगर उसे हल की ज़रूरत है तो हो सकता है
कि उसके पास बदले में देने के लिये काफ़ी अनाज न हो। यह भी हो सकता
है कि किसान हल की जगह अनाज को ज्यादा काम की वस्तु समझता हो
और इसलिए वह हल की जगह अनाज न देना चाहता हो। ऐसी हालत में
बेचारे बढ़ई को किसी ऐसे किसान को ढूँढ़ना पड़ेगा जिसे हल की ज़रूरत हो,

जिसके पास अनाज भी काफ़ी मात्रा में हो और जो हल को अनाज से अधिक उपयोगी समझता हो। अदला बदली हो जाने से दोनों को लाभ होता है। किसान को अनाज की अपेक्षा अधिक काम की चीज़ मिल जाती है। इसी तरह बढ़ई को भी हल के बदले अनाज मिल जाने से लाभ होता है। अगर बढ़ई को ऐसा कोई किसान नहीं मिलेगा तो वह भूखों मरने लगेगा। और फिर खाली अनाज से बढ़ई का काम नहीं चलता। उसे निमक, मिर्च, तेल, खटाई आदि भी चाहिए। मान लो उसे हल के बदले अनाज मिल भी गया तो उसे ऐसे आदमियों की तलाश करनी पड़ेगी जो नमक, मिर्च, मसाला आदि देकर अनाज ले लें। इसी तरह दूसरे पेशे वालों को भी तंग होना पड़ेगा क्योंकि सबको चीज़ें बदलने की जरूरत होती है। लेकिन अगर इस तरह सब लोग अपनी चीज़ें लेने वालों का पता लगाने लगें तो बहुत बखेड़ा पैदा हो जाय। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए रुपया-पैसे चलाए गए। और आजकल हमें जब किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम बाजार जाकर उसे मोल लेते हैं अर्थात् जिस मनुष्य के पास वह वस्तु रहती है उसे कुछ पैसे या रुपए देकर बदले में उस वस्तु को ले लेते हैं। किसी वस्तु की बिक्री से खरीदने और बेचने वालों को लाभ ही होता है, नुकसान नहीं। खरीदार रुपए की जगह उस वस्तु को ज्यादा काम की समझता है और बेचने वाले को रुपए की जरूरत रहती है।

माल की खरीद और बिक्री (Sale and Purchase)

हम जिस मनुष्य के पास से चीज़ मोल लाते हैं वह सौदागर या व्यापारी कहलाता है लेकिन सौदागर और व्यापारी में एक फर्क रहता है। व्यापारी थोक माल खरीदता है और ज़रूरत के मुताबिक बेचता है। सौदागर व्यापारियों से माल खरीद कर खाने या उपभोग करने वालों के हाथ बेचता है। व्यापारी एक फसल को एक जगह इकट्ठा करता है फिर उनको साफ कराकर फुटकर बेचने वालों के हाथ बेच देता है। व्यापारी कम से कम दामों में अनाज को मोल लेकर अधिक भाव पर बेचता है। किसान फसल तैयार होते ही बेच देते हैं। उस समय अनाज का भाव सस्ता रहता है। किसानों को यह विचार नहीं होता कि अगर अनाज रक्खा रहेगा तो आ

चल कर उससे काफी लाभ होगा। लेकिन दरअसल बात तो यह है कि हमारे किसानों की हालत ऐसी बुरी है और वे इतने कर्जदार रहते हैं कि वे अनाज को घर में रख नहीं सकते। व्यापारी उस सस्ते अनाज को मोल ले लेकर बखे नर लेता है और जब भाव खूब तेज होता है तब उसे बेचता है।

फसल तैयार होने के समय तो किसान प्रायः सब अनाज बेच देते हैं। पर थोड़े दिन बाद उनकी रसद चुक जाती है। तब वे बनिए की शरण जाते हैं। बनिया उस समय अनाज किसानों को बाँटता है और उनसे वादा कर लेता है कि फसल पर वे उसका सवाया दे देंगे। इसी तरह बोवाई के समय वह किसानों को तेज़ भाव पर अनाज देता है। आप हिसाब लगा सकते हैं कि बनिए को क्या लाभ होता है। मान लो फसल पर वह एक रुपये का बीस सेर गेहूँ खरीदता है। और बाद में आवश्यकता पड़ने पर वह पन्द्रह सेर का अनाज बेचता है और वादा करा लेता है कि दूसरी फसल पर व्याज सहित इन रुपयों का अनाज लेगा। फसल पर छै सात महीने में व्याज सहित रुपये का फिर बीस सेर के भाव से गेहूँ ले लेता है। इस तरह एक ही साल में दोगुना फायदा उठाता है। फसल की बिक्री में लाभ-हानि, देर-सवेर, तेज़ी-मन्दी का ध्यान रखने से यही लाभ होता है।

इस खरीद और बिक्री से बनिए व्यापारी को ही फायदा होता है। बेचारे किसान को तो नुकसान ही रहता है। अगर उपज कम होती है तो किसानों को अधिक दाम तो मिलते नहीं। हाँ, बनियाराम ज़रूरी माल को अधिक ऊँचे भाव पर बेचकर खरीदारों से ज्यादा फायदा उठा लेते हैं। किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए, उन्हें इन बनियों के हथकन्डे से बचाने तथा उनकी हालत को अच्छी बनाने के लिए गाँवों में माल बेचने तथा किसानों के लिए उनके जरूरत की वस्तु खरीदने वाली कमेटियाँ (समितियाँ) बन गई हैं। इन कमेटियों को क्रय विक्रय सहकारी-समितियाँ कहते हैं। इन समितियों का काम यह होता है कि ये अपने सदस्यों की उपज अच्छे से अच्छे दामों पर बेचने की कोशिश करती हैं। इसके अलावा समिति किसानों के लिए अच्छे अच्छे एक तरह के बीज इकट्ठा करती है, अच्छी खाद का

इन्तज़ाम करती है इत्यादि। आगे के किसी अध्याय में तुम्हें इन समितियों के बारे में खुल कर हाल बतलाया जायगा।

बाज़ार (Market)

अब प्रश्न उठता है कि माल कहाँ बेचा और खरीदा जाता है? तुम जवाब दोगे "बाज़ार में"। लेकिन बाज़ार से क्या समझा जाता है? आमतौर पर जहाँ पर हम तरकारी भाजी मोल लेते हैं अथवा जहाँ हम अपनी ज़रूरत की वस्तु या वस्तुएँ खरीदते हैं उस जगह को बाज़ार या मन्डी कहते हैं। गाँव में हम जानते हैं कि दूसरे तीसरे दिन या हर हफ्ते बाज़ार लगता है। जगह जगह म्युनिस्पैल्टी पक्की इमारत या घेरा बनवा देती है जिसमें तरह तरह के सामान बेचने के लिए दूकानें लगाई जाती हैं। पर साधारण तौर पर हम बाजार या मंडी से जिस स्थान को समझते हैं वह अर्थशास्त्र के अन्दर बाज़ार नहीं कहलाता। अर्थशास्त्र में किसी पदार्थ के बाज़ार से उन सारे क्षेत्र से हमारा मतलब होता है जिसमें बेचने और खरीदने वाले आपस में इस तरह से सम्बन्ध रखते हैं कि उस बाज़ार में वस्तु का अनकरीब एक सा दाम रहता है। यदि गेहूँ का व्यापार दुनियाँ के भिन्न भिन्न देशों में आसानी से और कम खर्च से होता है तो तमाम दुनिया गेहूँ का बाज़ार कहा जायगा। यह ज़रूरी नहीं हैं कि बेचने और खरीदने वाले एक ही स्थान में इकट्ठा हों। वे दूर दूर रह सकते हैं।

उदाहरण के लिए उस बाज़ार को ले लीजिए जिसमें कम्पनियों के हिस्से बिकते हैं। आप जानते हैं कि अक्सर बड़ी कम्पनियों और बैंकों में केवल एक ही व्यक्ति का रुपया तो लगा नहीं रहता। बल्कि कम्पनी में पाँच पाँच, दस दस या सौ सौ रुपयों के हिस्से होते हैं। शुरू में हर हिस्से के खरीदार को हिस्से के दाम देने पड़ते हैं। जब कम्पनी चल निकलती है और कम्पनी को खूब मुनाफ़ा होने लगता है तो हर हिस्से पर प्राप्त होने वाले मुनाफे की रकम बढ़ जाती है। इससे हिस्सों का दाम बढ़ जाता है अर्थात् यदि कोई अपने एक सौ के हिस्से को बेचे तो लोग उन्हें सौ से अधिक दाम पर खरीद लेंगे। चूँकि आदमी घर बैठे इन हिस्सों की खरीद-फ़रोख्त कर सकता है अतएव हिस्से का बाज़ार बहुत विस्तृत होता है।

हमने ऊपर कहा है कि बाज़ार में वस्तु की कीमत अनकरीब एक सी रहती है। आप पूछ सकते हैं क्यों। उत्तर है लागडाट के कारण। एक छोटा सा उदाहरण अपने अनाज की मंडी का ले लीजिये। उसमें बहुत से चावल, दाल, गेहूँ बेचने वाले बैठते हैं। मान लो गेहूँ का भाव बारह सेर फी रुपए का है। अब अगर मेवालाल एक रुपये में ग्यारह ही सेर गेहूँ देना चाहेगा तो खरीदने वाले उसे छोड़ कर औरों से गेहूँ मोल लेंगे। इसी तरह अगर राम चन्द तेरह सेर का गेहूँ बेचने लगे तो खरीदने वाले और दूसरे बनिए से जल्दी उसका सारा गेहूँ मोल ले लेंगे और भाव फिर बारह सेर का हो जायगा। इस तरह गेहूँ का भाव बारह सेर का ही बना रहेगा। जिन पदार्थों का बाज़ार फैला हुआ होता है उनके साथ भी यही होता है। अगर बाज़ार के किसी कोने में भाव महँगा है तो दूसरी जगह वाले माल बेचने के लिए वहाँ पहुँच जाएँगे। और जहाँ पर माल सस्ता होता है वहाँ का माल दूसरी जगह वाले जल्दी से खरीद लेवे हैं और वहाँ भी फिर भाव बढ जाता है।

बाज़ार का क्षेत्र

किसी वस्तु की कीमत जितने क्षेत्र में समान हो उतना ही अच्छा होता है। डाक, तार, टेलीफ़ोन इत्यादि की सहायता से वस्तुओं के मूल्य में घट-बढ का समाचार आसानी से किसी स्थान में तुरन्त भेजा जा सकता है, और रेल, नहर, सड़कें, मोटर आदि से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचाया जाता है। इनसे समय और धन दोनों में किफायत होती है और इससे बाज़ार का क्षेत्र बढ़ता है। यों तो बाजार बढ़ाने के लिए पाँच बातों का होना जरूरी है। पहले तो वस्तु ऐसी होनी चाहिये जो आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सके। मकान आदि की तरह बड़ी व स्थिर न होना चाहिये। छोटी होने के अलावा वस्तु जल्दी न बिगड़ती हो। फल और मछली की कीमत एक सी नहीं रह सकती। लेकिन सोना चाँदी वगैरह की कीमत बाजार में एक सी रहती है। दूसरी बात यह है कि पदार्थ को ले आने में समय कम लगे साथ ही खर्च भी कम पड़ना चाहिए। फल वगैरह ऐसी चीज़ें हैं कि जब तक उन्हें सावधानी से न रखा-जाय तब तक

ये दूर नहीं भेजे जा सकते। पत्थर की नक्काशी व शीशे की चीजों के टूट-फूट जाने का बड़ा डर रहता है और उन्हें दूर भेजने के लिये बड़ी होशियारी से उनकी पार्सल बनानी पड़ती है। इसका व्यय तथा मार्ग में उनके टूट जाने का डर उनकी कीमत और खर्च बढ़ा देता है। तीसरी बात यह है कि वस्तु की माँग काफी और चारों ओर होनी चाहिये। इसी तरह पदार्थ ऐसे होने चाहिये कि लोगों को उसके बारे में सारा हाल अच्छी तरह बताया जा सके। तथा दूर दूर रहने वाले खरीददार अच्छी तरह यह जान सकें कि वे किस तरह का माल मँगा रहे हैं। खेती करने से जो अनाज आदि चीजें पैदा की जाती हैं वे कई प्रकार की होती हैं। गेहूँ भी कई प्रकार का होता है। इनका दूर दूर रहने वाले आदमियों को ठीक ठीक परिचय देना बड़ा कठिन होता है। इसके अलावा कीमत के विचार से गेहूँ, चना आदि चीज़ें सोना चाँदी की बनिस्बत बहुत ज्यादा जगह घेरते हैं। इसी कारण गेहूँ, चना आदि का बाजार बहुत विस्तृत नहीं होता। इस तरह जमीन का बाजार बहुत कम विस्तृत होता है क्योंकि वह बिल्कुल स्थिर होती है। मकानों और अपने अपने मन के पसन्द की चीजों की भी यही हालत है।

वस्तु की कीमत किस प्रकार निश्चय होती है?

किसी वस्तु के बाजार के सम्बन्ध में बताते समय हमने कहा है कि बाजार में कीमत एक सी रहती है। सवाल उठता है कि बाजार में कौन सी कीमत निश्चित की जाती है। विनिमय के सम्बन्ध में हमने कहा था कि किसी वस्तु की बिक्री उसी समय हो सकती है जब कि वह आसानी से प्राप्त हो तथा खरीददार को उसकी आवश्यकता हो। जब किसी वस्तु में उपरोक्त दोनों गुण होते हैं तब उसकी माँग तथा पूर्ति के अनुसार कीमत निश्चित होती है। माँग से हमारा मतलब वस्तु की उस मात्रा या वजन से है जिसे कुल खरीददार मोल लेने को तैयार रहते हैं और पूर्ति वस्तु की उस मात्रा के बराबर है जिसे व्यापारी बेचने को तैयार रहता है। यदि माँग अधिक है तो खरीददार आपस में चढ़ा-बढ़ी करते हैं और बेचने वाले को अधिक दाम मिलता है। अगर यदि पूर्ति ज्यादा है व खरीद कम तो कम दाम पर ही चीजें बिकेंगी। परन्तु यदि किसी वस्तु के सब व्यापारी आपस में किसी तरह का

समझौता करके यह निश्चय कर लें कि हम अमुक कीमत से कम पर माल नहीं बेचेंगे तो खरीददार को शायद उतनी ही कीमत देनी पड़े। खरीददार क्यों उस निश्चित कीमत को देगा ? क्योंकि उसे उस चीज की आवश्यकता है और जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे ही वैसे वह उस वस्तु की जरूरत को और अधिक ही महसूस करता जायगा। यह तो सब कोई जानता है कि ग़रज बावली होती है। अगर अपनी ग़रज (स्वार्थ या आवश्यकता) है तो हम उतने ही दाम देकर उस चीज को खरीदेंगे। मान लो घर में आटा नहीं है और बाजार में पिसा हुआ आटा भी नहीं मिल सकता तब तुमको मंडी जाकर अनाज मोल लेना पड़ेगा। उस समय यदि मंडी वाले बारह सेर की जगह दस सेर फी रुपये के दर से ही गेहूँ आदि देने का निश्चय कर लें तो तुम क्या करोगे। बिना अनाज लिए तुम्हारा पेट का काम चल नहीं सकता। अगर तुम उतना दाम न देना चाहोगे तो जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे वैसे तुम्हें अनाज की जरूरत ज्यादा महसूस होती जायगी और तुम अधिक दाम देने को तैयार होते जाओगे, यहाँ तक कि अंत में तुम व्यापारी को मुँह माँगा दाम देकर उस पदार्थ को खरीद लोगे।

यदि सोच कर देखा जाय तो मालूम होगा कि ऊपर दिये हुए उदाहरण में पूर्ति तो कम थी और खरीददार की माँग बहुत अधिक। माँग और पूर्ति का किसी वस्तु की कीमत पर क्या असर पड़ता है ! इसका एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिए आपको अनार लेना है। फल की मंडी में जाने पर आपने कई फलवालों के पास अनार देखा मगर भाव पूछने पर सब ने एक रुपया सेर बताया। अगर आपको अनार लेना बहुत ही जरूरी है तो आप फलवालों के इर्द गिर्द इस प्रकार चक्कर लगावेंगे जैसे दूध के चारों ओर बिल्ली। फलवाले इससे आपकी आवश्यकता की थाह पा लेंगे। और फिर तो आप उनसे कभी भी रुपये सेर से कम पर अनार न ले सकेंगे। मान लीजिए आपके ले चुकने पर एक सज्जन और आ पहुँचे। जब उन्हें अनार का भाव मालूम पड़ा तो वे बोले तेरह आने सेर दोगे। अनार वाला बोला कि देखिए बाबू साहब खड़े हैं पूछ लीजिए। सज्जन महोदय को अनार की आवश्यकता है इसलिए उन्होंने चौदह आने सेर पर अनार माँगा। भाव कुछ बढ़ते देखकर अनार वाले टेढ़े पड़ने लगे। इस पर

जाने लगा। इस पर अनारवाला सोचता है कि शायद इससे ज्यादा दाम नहीं देना चाहते। साथ ही वह इस बात पर भी ध्यान देता है कि रुपये में उसे चार आने का फायदा होता है। चार आने न सही ढाई या तीन आने सही। बस वह आवाज़ लगाता "बाबू जी यहाँ तो आइए" "आखिर क्या भाव लेना चाहते हैं" "कुछ और दीजिएगा" "आपके खातिर दो पैसा घटा दूँगा"। होते होते आख़िर पन्द्रह आने पर सौदा तय हो गया। देखा आपने। दूसरे सज्जन की माँग इतनी अधिक नहीं थी कि वे रुपये सेर का दाम देने को तैयार हो जाते। उन्होंने देखा कि इन अनार वालों का गुट्ट अधिक दाम माँग रहा है तो वे जाने लगे। अनार के रहते माँग कम हो गई और इसी लिए गुट्ट में से एक को कम दाम पर अनार बेचना पड़ा। यदि दूसरे सज्जन के सामने और लोग भी आने लगते तो अनार का भाव पन्द्रह आने पर ही बना रहता।

यदि माँग बिल्कुल ही कम हो तो कीमत और भी गिर जाती है। अनार जल्दी बिगड़ने वाला फल है मान लो रात हो गई और बाज़ार में सन्नाटा छाने लगा अर्थात् ग्राहकों का आना कम हो गया। उसी समय एक मनचला जवान आ पहुँचा। भाव पूँछ कर वह बोला कि चौदह आने सेर दो तो दो सेर दे दो। अनार वाला मन में सोचता है कि क्या पता दो सेर अनार बेचने के लिए मुझे कल कब तक ठहरना पड़े। फिर रात को कुछ अनार बिगड़ने लगेंगे। इसके अलावा तुरंत नफे के चार आने मिल जायेंगे। यह सोच कर वह चौदह आने सेर पर ही अनार बेच देता है।

किसी चीज़ के भाव के निश्चित होने पर उस चीज़ की मात्रा या वजन का असर ज़रूर पड़ता है। तीसरे सौदे में अनार वाले ने इसका ख्याल किया था। यही क्या आप कहीं भी थोक या अधिक माल लीजिए तो आपको कम कीमत देनी पड़ेगी। बाजार में आप आम खरीदने जाइए। अगर पैसे में एक आम मिलता है तो शायद दस पैसे में एक दर्जन और अठारह आने में सौ आम मिल जाएँगे। इसके अलावा अनार वाले ने भविष्य का भी ख्याल किया था।

यदि अनाज वालों को यह पता चल जाय कि वर्षा की कमी के कारण

अबकी बार खेती खराब हो रही है तो वे अभी से भाव तेज़ कर देंगे। वे जानते हैं कि यदि आज कोई तेज भाव पर अनाज नहीं खरीदेंगे तो कल आवश्यकता बढ़ जाने पर लोग अवश्य ही अनाज खरीदेंगे। व्यापार में भविष्य कितना खेल खेलता है इसका अंदाज़ा लगाना कठिन है। कितने सेठ साहुकारों ने इसी की बदौलत कोठियाँ खड़ी करलीं और इसी वजह से अपनी जीविका पैदा कर रहे हैं। समय के साथ भी कीमत घटती बढ़ती है। यदि आज गेहूँ दस सेर का बिकता है तो हो सकता है कल ग्यारह सेर का बिकने लगे। क्यों? मान लीजिए कल सुबह गाँव से गेहूँ की बीस गाड़ियाँ आ गईं। इससे गेहूँ की पूर्ति के लिहाज से माँग के कम पड़ जाने से भाव गिर गया और गेहूँ ग्यारह सेर का बिकने लगा। ख्याल कीजिए की किसी वर्ष खेतों में खूब अनाज पैदा हुआ। परन्तु इसी समय यूरप में लड़ाई छिड़ जाने से वहाँ अनाज की माँग बहुत बढ़ गई। किसानों और व्यापारियों ने अच्छे दाम पर अनाज बाहर भेजना शुरू किया। इस समय देश में अच्छी फसल होने पर भी अनाज की कीमत बढ़ जायगी।

यदि हम अनार वाला उदाहरण फिर से ले लें तो क्या अनार बेचने वाला बारह आने सेर का दाम ले लेगा? कदापि नहीं। बारह आने तो उसका लागत खर्च है। मुनाफा व मेहनत के दाम कहाँ गए? बारह आने छोड़ वह तेरह आने पर भी अनार बेचने को तैयार नहीं होगा। लेकिन वस्तु की हालत खराब हो जाने पर कीमत अवश्य गिर जाती है। मान लो कोई जलेबी वाला है। रात हो जाने पर जलेबी सूख कर बासी हो जाती है। वह जानता है कि दूसरे दिन ताज़ी जलेबियाँ बनेंगी उस समय बासी जलेबियों को कोई नहीं पूछेगा। इसलिए वह रात को भाव और कम कर देगा या अंत में जलेबियों को स्वयं खा लेगा।

किसी वस्तु की उत्पत्ति में जो खर्च बैठता है उस वस्तु की कीमत उस खर्च के आस पास ही रहती है। यदि आशा, निराशा, रुपये की तंगी इत्यादि का ख्याल न किया जाय तो उस चीज़ की कीमत हमेशा चीज़ को उत्पन्न करने के व्यय से थोड़ा सा अधिक ही रहती है। इस अधिकता में बेचने वाले का मुनाफा शामिल रहता है। एक किसान को उपज करने में खेतों को जोतना, बोना व सींचना पड़ता है। इसके अलावा अनाज की कटाई, मँड़ाई

करके बाजार में लाने में खर्च होता है। यह सब खर्च तथा उसकी मजदूरी मुनाफा और खेत का लगान उत्पादन व्यय में शामिल रहता है। यही बात मिलों में तैयार किए जाने वाले माल की कीमत के बारे में है। तुमको मालूम है कि कई मिलें एक ही तरह का माल तैयार करती हैं। परन्तु सबका खर्च भिन्न होता है किसी का कम किसी का ज्यादा। ऐसी हालत में तुम बता सकते हो कि बाजार में उस वस्तु का मूल्य सबसे कम लागत के हिसाब से निश्चित होगा या सबसे अधिक लागत के अनुसार इन दशाओं में हमेशा किसी चीज की कीमत सबसे अधिक लागत का ध्यान रख कर निश्चित होती है। हाँ यदि लागडाट हो तो सब से कम लागत वाली मिल कम कीमत पर माल बेचेगी। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो दूसरी मिलें बन्द हो जाएँगी।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उनकी मात्रा कभी बढ़ाई नहीं जा सकती जैसे पुराने चित्र, सिक्के इत्यादि। इनकी कीमत माँग और पूर्ति के हिसाब से ही तै की जाती है। उत्पादन-व्यय का उस पर कोई असर नहीं पड़ता।

खेती से उत्पन्न पदार्थों की कीमत

ऊपर कीमत निश्चय होने के सम्बन्ध में जो बातें बतलाई गई हैं वे हमारे गाँव में बिकने वाली चीज़ों के ऊपर नहीं लागू होतीं। इसकी एक खास वजह है। हमारे किसान कर्जदार रहते हैं। गाँव के महाजन किसानों को खाने के लिए अनाज उधार देते हैं। लेकिन यह खाते में अनाज का वज़न न लिख कर बाज़ार भाव से सेर आधा सेर कम भाव अनाज का दाम लगा कर खाते में लिख लेते हैं। फसल पर यह लोग रुपये के बदले में अनाज लेते हैं। परन्तु किस भाव? इस बार अनाज बाज़ार से सेर आधा सेर अधिक भाव पर लिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि दस सेर का भाव है तो उधार देने के समय अनाज का भाव नौ सेर का लगाया जाता है और फसल पर लेते समय ग्यारह सेर का भाव लगाया जाता है। बेचारे किसानों को इससे काफी घाटा सहना पड़ता है।

इसके अलावा बहुत सी उपज को किसान व्यापारी के हाथ बेचता है। व्यापारी फसल के समय तो सस्ते दामों में अनाज खरीदता है, फिर कुछ

दिनों बाद उसी अनाज को किसानों के हाथ महँगा दामों में बेचता है। आप कह सकते हैं कि किसान अपने लिए अनाज बचा कर क्यों नहीं रख लेता। ठीक है, परन्तु हमारे किसान की ऐसी हालत है कि वह फसल को अपने पास रख तो सकता ही नहीं। किसान जितना अनाज पैदा करता है उसका एक बड़ा भाग तो नाई, धोबी, लोहार वग़ैरह के पास चला जाता है। कर्ज़ पटाने व लगान देने के लिए रुपए की जरूरत पड़ती है। इसीलिए उसे बाकी भाग भी फौरन बेचना पड़ता है। किसान जब मंडी में अनाज बेचने जाता है तो उसके और व्यापारी के बीच में दलाल आ पड़ता है। फिर उसे अनाज उतारने वाले को, तौलने वाले को, रसोइया को, भिश्ती और मेहतर को कुछ न कुछ देना पड़ता है। इसके अलावा मंडी के कुएँ के लिये गंगाजली के नाम पर व धर्मखाते के नाम अनाज वसूल किया जाता है। फिर जिन बाट से तौल कर व्यापारी अनाज लेता है वे गड़बड़ होते हैं। इन सब बातों से किसान जिस भाव से अनाज बेचता है वह और सस्ता हो जाता है। बल्कि यह कहा जाय कि हमारे किसान की हालत ऐसी गिरी हुई है कि माल बेचते समय किसान लूटा जाता है। किसानों की बिगड़ी हुई हालत के अलावा अनाज को बेचने के लिए उसे अच्छे तरीके नहीं प्राप्त हैं। हमारे किसानों की अच्छे बाजारों तक पहुँच नहीं होती। खेती से उत्पन्न पदार्थों को बाजार में बेचने के प्रश्न के ऊपर हम अगले किसी अध्याय में अच्छी तरह विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अदला-बदली की असुविधाएँ उदाहरणों सहित समझाइये।

२—किसी वस्तु की बिक्री में बेचने वाले और खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है। उदाहरणों सहित समझाइये।

३—फसल बेचते समय भारतीय किसानों को किस प्रकार हानि उठानी पड़ती है?

४—अपने गाँव के किसी किसान के साथ मंडी जाकर यह पता लगाइये कि अपना अनाज बेचते समय तौलने वाले को, नौकरों को तथा धर्म के नाम पर कितना अनाज देना पड़ा।

५—यदि किसी वर्ष वर्षा कम हो जाय तो उसका असर अनाज की कीमतों और अन्य वस्तुओं की कीमतों पर कैसा पड़ेगा ?

६—यदि किसी वर्ष वर्षा बहुत अच्छी हो और फसल अच्छी आवे परन्तु विदेश से अनाज की माँग बढ़ जाय तो अनाज की कीमत पर तथा अन्य वस्तुओं की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

७—स्वदेशी आंदोलन का गाँधी टोपी की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ा ? इसका प्रभाव विदेशी टोपियों की कीमत पर क्या हुआ ?

८—वस्तु की कीमत का उसके लागत खर्च से क्या सम्बन्ध रहता है ?

९—लागत खर्चे में जो खर्च शामिल किये जाते हैं उनकी सूची एक किसी वस्तु का उदाहरण लेकर तैयार कीजिये।

१०—सूती कपड़ा भारत में सैकड़ों मिलों में तैयार किया जाता है और प्रत्येक का औसत लागत खर्च भिन्न भिन्न है। ऐसी दशा में सूती कपड़े का मूल्य किस मिल के लागत खर्च के बराबर होगा ?

११—लागत खर्च से कम कीमत पर वस्तु किन दशाओं में बेची जाती है ?

१२—आप 'बाजार के क्षेत्र' से क्या समझते हैं ? किसी वस्तु के बाजार का क्षेत्र किन बातों पर निर्भर रहता है ? विस्तृत बाजार वाली कम से कम दस वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये ?

१३—निम्नलिखित वस्तुओं का बाजार किन दशाओं में विस्तृत हो सकता है ?

कलमी आम, लकड़ी, कंपनी का हिस्सा (शेयर), पुस्तक, नयी मशीन।

१४—किसी वस्तु की कारखाने की कीमत और फुटकर बिक्री की कीमत के पारस्परिक संबंध उदाहरणों सहित समझाइये।

१५—सफल दूकानदार में किन गुणों की आवश्यकता है ?

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की विक्री

प्राक्कथन

पिछले अध्याय में हमने फसल की बिक्री के बारे में थोड़ा सा हाल बताया था। हम यह बता चुके हैं कि किसानों को ज्यादातर अपना माल उन महाजनों के हाथ बेचना पड़ता है जिनसे वे रुपया उधार लिए रहते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती कि वे माल लेते समय बाजार से बहुत सस्ता दाम लगाते हैं। परन्तु कुछ किसान ऐसे भी हैं जो स्वयं मंडी में जाकर अनाज बेचते हैं। आप पूछ सकते हैं कि किसान किस मंडी में अपना अनाज बेचता है और किस प्रकार बेचता है।

इसके पहले कि हम मंडी और बिक्री के ढंग के बारे में कुछ बताएँ, यह कहना गलत न होगा कि किसान और ख़रीददारों के बीच में व्यापारी का होना ज़रूरी है। सब खरीददार फ़सल तैयार होते ही साल भर के लिये अनाज या अन्य उपज तो खरीद नहीं सकते। उन्हें जब ज़रूरत होती है तथा जब जेब में पैसे होते हैं तब अनाज खरीद लेते हैं। परन्तु हमारे किसान के लिये यह सख्त ज़रूरी है कि फ़सल तैयार होने के बाद जितनी जल्दी हो सके वह बिक जाय। वह साल छै महीने तक अनाज को लिये बैठा नहीं रह सकता। पहले तो उसके पास इतनी जगह ही नहीं होती कि वह उपज को रक्खे। आप जानते ही हैं कि फसल काट कर वह खलिहान में रखता है। दूसरी बात यह है कि किसान को लगान, सूद, मजदूरी आदि देनी पड़ती है। सरकार लगान अधिकतर रुपये में माँगती है। कुछ मजदूरी भी पैसों में देनी पड़ती है। अतएव यह ज़रूरी हो जाता है कि किसान फसल को बेच दे। चूँकि किसान को बेचना ज़रूरी है और खरीददार सब फसल खरीद नहीं सकते, इस लिए इन दोनों के बीच व्यापारी का होना ज़रूरी है। इन व्यापारियों से बड़ा काम निकलता है। यह एक एक फसल को एक स्थान में इकट्ठा करते हैं। फिर उन्हें साफ करा कर तथा उनकी किस्मों को अलग

अलग करके बाज़ारों में भेज देते हैं। वहाँ छोटे दूकानदार अनाज को खरीद कर फुटकर खरीदारों के हाथ बेच देते हैं।

बिक्री की बातें

अस्तु, उपज को मुनाफे के साथ बेचने के लिए यह अत्यन्त ज़रूरी है कि बेचने वाले को बाज़ार भाव व बाजार की दशा का पूरा ज्ञान हो। कौन ... कहाँ सस्ती बिकती है, कहाँ ले जाने से महगी बिकेगी, किस रास्ते तथा किस तरह ले जाने से भाड़ा कम पड़ेगा इन सब बातों का पूरा ज्ञान होना जरूरी है। उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि उपज को किस समय, अथवा कितने दिनों के अन्दर बेच देना चाहिए। परन्तु हमारे किसान तो अशिक्षित और निर्धन हैं। वे भाव ताव के बारे में कुछ नहीं जानते। प्रायः उन्हें बाहर की मडियों का भाव मालूम नहीं रहता। और न उन्हें बाहर जाकर बेचने का सुभीता ही रहता है। इसलिए उन्हें गाँव में या पास की किसी मंडी में जो दाम मिलता है उसी में संतोष करना पड़ता है।

मंडी में फसल की बिक्री

प्रथम तो किसान को यही नहीं मालूम पड़ता कि उसका माल उचित भाव से बिक रहा है या नहीं और उसे ठीक ठीक दाम मिल रहे हैं या नहीं। फिर म्युनिस्पिल टैक्स (चुंगी) के अलावा किसान को मंडी में गाड़ी ठहराने का शुल्क, दलाल की दलाली देना पड़ता है। फिर अनाज उतारने वाले पल्लेदार को, माल तौलने वाले को, भूसा निकालने वाले को तथा गौशाला, मंदिर, प्याऊ आदि न जाने उससे किस किस के लिए दान लिया जाता है। तम्बाकू खरीदने वाला तौलाई की गिनती के लिए मन पीछे तम्बाकू का एक पूड़ा लेता है, गगा जी के नाम पर दूसरा पूड़ा लिया जाता है। तौलने वाला अपने काम के लिए एक पूड़ा लेता है। फिर तौलाई और दलाली अलग लगती है। इस तरह से बेचने वाले की खासी रकम निकल जाती है। इसके अलावा अनाज जिस बाट से तौला जाता है वह अक्सर बनावटी होता है। व्यापारी सरकारी पंसेरी की जगह पत्थर के काम में लाते हैं। बेचारा किसान इस बाबत में भी कुछ नहीं कह

सकता । यही नहीं कभी तौलने वाला डंडी मारता है, तराजू में पासंगा
रखता है इत्यादि

गाँव में बनी वस्तुओं की बिक्री

इसी प्रकार की हालत हमारे गाँवों के शिल्पी और कारीगरों की भी है। गाँवों में अधिकतर जुलाहे, बढ़ई, रस्सी बटने वाले, तेली, मोची आदि कारीगर और दस्तकार रहते हैं। इनको भी बाज़ार भाव का ज्ञान नहीं होता। जुलाहा बुन कर कपड़ा तैयार करता है, बढ़ई बिना माँग के हल को बना लेता है, रमू किसान फुरसत के वक्त में सन को बट कर रस्सी तैयार करता है, मालादीन टोकरी बना डालता है, शकूर तेली अलसी और सरसों का तेल तैयार करता है। इन को बेचने के लिए वे पहले गाँव में ही खरीददार ढूँढते हैं। अपने तैयार माल को गाँव के महाजन या साहूकार के पास ले जाते हैं। उससे पूछते हैं कि क्या उसे कपड़े, रस्सी आदि की ज़रूरत है। परन्तु एक बात है। इन महाजन और साहूकारों के हाथ माल बेचने से उन बेचारों को पूरा दाम कभी नहीं मिलता। गाँव के ये कारीगर अपने माल को गाँव के हाट में भी बेचते हैं। यदि गाँव के पास कहीं मेला होता है तो बेचने की गरज़ से माल को वे वहाँ ले जाते हैं।

ग्रामीण सड़कें

माल को बेचने की प्रथा में जो बुराइयाँ हैं उनको दूर करने के लिए देश की सरकार कोशिश करती रहती है। माल को अच्छी मंडी में पहुँचने के लिए पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि गाँवों का मंडियों से सम्बन्ध हो। अर्थात् मंडियों को मिलाने के लिए अच्छी उम्दा सड़कें हों। आप यदि गाँवों की ओर जाने का कष्ट करें तो आपको मालूम होगा कि प्रथम तो गाँवों में जाने के लिए रास्ता ही नहीं होता, यदि होता भी है तो कच्चा, धूल और गड्ढों से भरा हुआ, जिसमें से बैलगाड़ी को निकाल ले जाना मुश्किल जान पड़ता है। फिर बैलगाड़ी, ऊंट तथा घोड़े-गदहे होते ही कितने किसानों के पास हैं। गाँव में मुश्किल से दो तीन बैलगाड़ियाँ निकल सकती हैं। ऐसी हालत में यहाँ बड़ा ज़रूरी है कि गाँवों में पक्की सड़कें बनाई जावें। बीसवीं शताब्दी के नए ज़माने में बैलगाड़ी का काम नहीं। यदि मोटर

लारी का इन्तजाम हो सके तो बड़ा ही अच्छा हो और किसान अपने माल को अच्छी मंडी में कम खर्च से पहुँचा सके। द्वितीय महायुद्ध खतम हो जाने के कारण फौज की मोटर लारियों से कृषि पदार्थों की ढुलाई का काम लिया जा सकता है।

यह संतोष की बात है कि भारत सरकार और प्रांतीय सरकार यातायात की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं और इस हेतु योजनाएँ बनाली हैं। इन योजनाओं में लारी रेल की लागदाट बिलकुल घट जाएगी।

सहकारी संस्थाएँ और बिक्री (Marketing Cooperative Societies)

लेकिन किसानों की तो अवस्था ऐसी है कि माल को मंडी में पहुँचाने का इन्तजाम हो जाने से भी उनकी हालत अधिक नहीं सुधर सकती। हर एक किसान के पास शायद इतनी अधिक फसल नहीं होती कि वह उसे मोटर पर लाद कर मंडी ले जाए। इससे भी अधिक मार्के की बात तो यह है कि किसान यह नहीं जानता कि फसल को किस मंडी में ले जाएँ। फिर भाव-ताव और मंडी में लिए जाने वाले तरह तरह की उगाही का सवाल तो बाकी ही रह जाता है। यह देखा गया है कि सहकारी संस्थाएँ किसानों को इस दुख से उबार सकती हैं। सहकारी संस्था वह संस्था है जो सरकार के सहकारी विभाग की ओर से खोली जाती हैं। इसमें गाँव वाले सदस्य बनाए जाते हैं। संस्था का मैनेजर, जिसकी नियुक्ति सरकार की ओर से होती है, किसानों की उपज को खरीद कर उसे महँगी से महँगी मंडी में बेचता है। इस प्रकार से संस्था को जो लाभ होता है उसमें से मैनेजर वगैरह की तनख्वाह काटने के बाद जो बचता है वह तो मेम्बरों को ही बाँट दिया जाता है। यही नहीं, बाज़ार सम्बन्धी अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करने के बाद सहकारी समिति माल को अंतिम खरीददार के हाथ भी बेच सकती है। ऐसा करने से बीच के कई दलालों की दलाली तथा नाना प्रकार के शुल्क आदि से सहज ही में छुटकारा मिल जाता है और किसानों को भी अधिक से अधिक दाम मिल जाता है।

विदेशों में तो इन संस्थाओं को काफी सफलता मिली है। इंगलैंड, अमरीका आदि देशों में हजारों ऐसी समितियाँ काम कर रही हैं। हमारे

देश में भी ऐसी समितियाँ खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है। जब प्रांतीय इंतजाम कांग्रेस के हाथ में आया तब ये समितियाँ खूब ज़ोर-शोर से खोली गईं। प्रांतीय सरकारों ने अब इन समितियों की अधिक संख्या में व्यवस्था और उन्नति करने की योजना बनाई है। इन समितियों को माल रखने की सुविधा देने के लिए सरकारी व्यय से छोटी बड़ी सीमेंट की खत्तियाँ (जमीन के अंदर गोदाम) बनाई जाएँगी। परन्तु भारत में एक और विशेष बात है। हमारे किसान बहुत ऋणी हैं। यह बात किसी से नहीं छिपी है। पहले तो इस कर्ज के मारे किसानों को अपना माल महाजन के हाथों में ही बेचना पड़ता है। दूसरे कर्ज अधिक होने से महाजन किसी प्रकार किसान से अपना रुपया निकालना चाहता है। महाजन भी समिति के मेम्बर बन तो सकते ही हैं। बस वे उस समिति से किसान को रुपया कर्ज दिला देते हैं। यह रुपया वे किसानों से खुद दिए हुए कर्ज की अदायगी में वसूल कर लेते हैं। और फिर महाजन साहब समिति की मेम्बरी छोड़ देते हैं। बाद में किसान के रुपया चुका न सकने के कारण समिति का काम रुक जाता और फिर सब चौपट हो जाता है। परन्तु समिति के इन गुण-दोषों के बारे में बताने की यह जगह नहीं है। आगे चल कर साख के सम्बन्ध में बताते समय हम इन संस्थाओं के बारे में और खुल कर बताएँगे।

हमारे सामने सब से बड़ा प्रश्न तो यह है कि हमको अपने अपढ़ और मूर्ख किसान समूह को पढ़ा लिखा कर एक ऐसे व्यापारी मंडल में बदल देना है कि वे आज कल के व्यापारी मंडली का सफलतापूर्वक सामना कर सकें। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि किसानों की पुश्तैनी आलस और असमर्थता को उनसे दूर भगा दिया जाय। व्यापारियों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह घुसा देने की ज़रूरत है कि वे उचित लाभ लेते हुए किसानों से मिल कर काम करें। अब तो व्यापारियों को कन्ट्रोल में लाने के लिए तथा बड़ी मंडियों में सुप्रबंध के लिए कमेटियाँ बनाई जाएँगी। ये कमेटियाँ उन सब बेईमानी और दिक्कतों को दूर करने तथा किसान को ठहरने की सुविधा देंगी।

ग्रामीण बाज़ार

रोजमर्रा के काम के लिए गाँव में [illegible] तो रहते ही हैं जैसे तेली

की दूकान, मोची की दूकान, बढ़ई की दूकान, भुंजवा की दूकान इत्यादि। परन्तु बात यह है कि गाँव का बढ़ई, चमार, तेली वगैरह हर समय लकड़ी, चमड़े और तेल का ही काम नहीं करते। अधिकतर इनके पास खेत होते हैं और ये अपना अधिक समय खेती करने में लगाते हैं। बिहारी चमार के चमड़े की कटाई, सिलाई आदि करने के औजार रहते हैं, परन्तु वह उनको तभी निकालता है जब गाँव का कोई मनुष्य उसे अपना जूता मरम्मत करने को दे जाता है। या जब कुएं से पानी निकालने वाले चमड़े का डोल फट जाता है और उसका मालिक उस डोल को ठीक कराने के लिए बिहारी के पास लाता है। बिहारी बाजार के महादेव चमार की तरह दूकान खोल कर दिन भर नहीं बैठा रहता। इसी प्रकार बाजार में दूकान कर सीतल बढई लकड़ी का कोई न कोई काम करता ही रहता है, उसका मुख्य पेशा लकड़ी का काम करना है। जब उसके पास मरम्मत के लिये कोई काम नहीं रहता तब वह अपने मन से कुर्सी मेज, खाट आदि चीजें बनाया करता है। जब कहीं पर चमार, बढ़ई, तेली, कुम्हार आदि दूकान खोल कर काम करते हैं तब हम कहते हैं कि उस जगह पर बाज़ार है। अधिकतर गाँवों में बाज़ार नहीं होता। गाँव में कुछ ऐसे आदमी होते हैं जो खेती करने के अलावा, बढई चमार, कुम्हार आदि का काम भी जानते हैं। अतएव जब रामू को चारपाई की ज़रूरत पड़ती है तो गोपाल बढ़ई फ़ुरसत के समय म लकड़ी को काट छील कर रामू के लिये एक चारपाई बना देता है। इसी तरह जूता फट जाने पर हामिद चमार अपने कामों से फ़ुरसत पाकर जब बैठता है तो औज़ार निकाल कर जूते को सी देता है। यह ज़रूरी नहीं कि प्रत्येक गाँव मे एक बाजार हो। शहरों में तो बाजारों का होना अनिवार्य है क्योंकि वहाँ तो हर समय कोई न कोई व्यक्ति माल खरीदने अथवा कोई वस्तु बनवाने के लिये तैयार रहता है। बढ़ई, चमार, लोहार वगैरह को सुबह से शाम तक करने के लिये काफी काम रहता है। लेकिन गाँवों में इतना काम कहाँ से आया? अतएव कुछ बड़े बड़े गाँवों में ही बाजार रहते हैं बाकी में नहीं। और जैसा कि हम ऊपर देख चुके बाजारों की ज़रूरत भी वहाँ नहीं रहती है।

हाट

यदि गाँवों में बाजार हो तब भी गाँव वालों को हर एक आवश्यक चीज
वहाँ नहीं मिल सकती। मान लीजिए कोई वस्तु गाँव में नहीं बनती और
रामू किसान को उसकी बड़ी जरूरत है। एक दूसरे गाँव मे वह वस्तु बनाई
जाती है। परन्तु उस वस्तु के बनाने वाले को क्या गरज पड़ी है कि वह रोज
रामू के गाँव में उस वस्तु को बेचने आया करे। इसलिए हफ्ते मे कहीं एक
बार कहीं दो चार बाज़ार लगता है। इसे हाट कहते हैं। ग्राम समूह के बीच
के किसी एक गाँव को हाट के लिए चुन लिया जाता है। हाट के दिन उस
गाँव के चारों ओर स्थित गाँवों से लोग अपनी अपनी वस्तुओं को लेकर आते
हैं। कोई तरकारी भाजी बेचने लाता है कोई टोकरी, कोई रस्सी, कोई
कपड़ा इसी तरह जो जिसके पास होता है वह उसे बेचने के लिए लाता है।
तेली तेल लाता है। लोहार फावड़ा, कुदाली लाता है, और चमार जूता,
चमड़े का डोल आदि चीज़ें लाता है। बेचने वालों के अलावा गाँवों से
माल खरीदने वाले भी आते हैं जो जिसको जरूरत होती है वह उस वस्तु
को खरीद लेता है। अधिकतर हाट दोपहर के बाद लगता है और रात होते
होते हाट उठ जाता है।

गाँव का मेला

हाट के अलावा त्योहारों पर मेला लगता है चूँकि त्योहार साल भर में
एक बार आते हैं इसलिए मेला साल भर में लगता है। मेला किसी कसबे
या बड़े गाँव में लगता है। उसमें बड़ी भीड़ होती है। मेले में दूर दूर के
गाँवों से लोग आते हैं। जब मेला लगना है तो गाँव में सब लोगों के
घर पर मेहमान आते हैं। झुँड के झुँड लोग मेला देखने आते हैं। मेले में
जो भीड़ होती है उसमें यदि कोई छूट जाय तो बड़ी मुश्किल से मिलता है।
इसलिए मेले में सब लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई भटक
न जाय। ऊपर बताई बात से यह तो मालूम पड़ जाता है कि मेले में सैकड़ो
आदमी इकट्ठा होते हैं। मेले में तरह तरह की दूकानें आती हैं। कहीं
खिलौने बिकते हैं। कोई कागज के फूल, चिड़ियाँ और बाँसुरी बेच रहा है।
कहीं फल बिकते हैं, कहीं मिठाई और कहीं बरतनों के ढेर लगे रहते हैं।

मेले में खेल भी बहुत होते हैं। मेले में हिंडोले भी गड़ते हैं। लड़के और बड़े लोग उन पर झूलते हैं। कहीं कहीं बड़े मेले लगते हैं। जो चीजें गाँव के हाट व बाजारों में बिकने नहीं आतीं वे मेलों में बिकने आती हैं। बड़े बड़े मेलों में गाय, बैल, घोड़े आदि भी बिकने आते हैं।

हाट और मेले का महत्व

गाँव और गाँव के रहने वालों का ख्याल रखते हुए यदि हाट और मेलों के बारे में सोचा जाय तो वे काफी महत्व रखते हैं। हाटों में अधिकतर अनाज आदि की बिक्री अधिक होती है। इसके विपरीत मेलों में खेल खिलौने और मिठाई के अलावा दस्तकारी की वस्तुओं और जानवरों की खरीद फरोख्त होती है। अतएव हाट तो किसानों के लिए उपयोगी होते हैं और मेले कारीगरों और दस्तकारों के वास्ते। इसके अलावा यदि गाँव भर का ख्याल किया जाय तो हाट मेलों से बढ़ कर स्थान रखते हैं। क्योंकि हाट में अनाज, तरकारी व हाथ की बनी हुई चीजें बिकने आती हैं। व्यापारी लोग अक्सर हाटों से ही अनाज खरीद ले जाते हैं।

हाट और मेले का संगठन

परन्तु कुछ गांवों से हाट व मेले का स्थान पास नहीं पड़ता। यह बहुत जरूरी है कि हाट लगने के स्थान इस प्रकार चुने जाएँ कि आस-पास के गाँवों के निवासियों को उसमें पहुँचने का मौका मिले। इसके अलावा किसानों को ठगे जाने से बचाने के लिए उन्हें बाजार-भाव का ज्ञान करना बड़ा आवश्यक है और आजकल न तो हाट ही व्यवस्थित रूप में लगते हैं और न मेले ही। हालाकि इनके ज़रिए किसान व गाँव के कारीगर अपना बहुत कुछ माल बेच सकते हैं परन्तु देखा जाता है कि इनमें और खास कर मेले में मजा उड़ाने, तमाशा देखने आदि की गरज से लोग ज्यादा आते हैं। हलवाइयों, खिलौने बेचने वालों, चटपटे बेचने वालों और झूला झुलाने वालों को तो काफी आमदनी होती है परन्तु औरों की बिक्री बहुत कम होती है। इस बात की बड़ी जरूरत है कि इनका इस प्रकार से संगठन किया जाय कि हाट और मेलों में बड़ी तादाद में बेचने और खरीदने वाले आवें और

खूब खरीद-फरोख्त होवे, लेकिन इस तरह से कि किसानों को धोखा न खाना पड़े।

अभ्यास के प्रश्न

१—उन व्यापारियों की सूची तैयार कीजिये जो आपके गाँव से अनाज खरीदकर मंडी में ले जाते हैं। यह भी पता लगाइये कि किसी व्यापारी ने अनाज आपके गाँव में किस भाव में खरीदा और उस समय पास की मंडी में उनका क्या भाव था?

२—फसल तैयार होते ही किसानों को क्यों बेंच देनी पड़ती है? इससे उनको क्या हानियें होती हैं? ये हानियें कैसे रोकी जा सकती हैं?

३—आपके जिले में खेती की उपज की बिक्री का क्या ढंग है? किसान को अपने माल की उचित कीमत क्यों नहीं मिलती?

४—क्या आपके गाँव के पास से पक्की सड़क गई है? यदि नहीं तो उसके न होने से आपके ग्रामवासियों को क्या असुविधाएँ होती हैं?

५—यदि आपको अपने जिले में नई सड़कों के बनवाने का कार्य सौंपा जाय तो आप किस प्रकार की सड़कें कौन से स्थान से कहाँ तक बनवायेंगे?

६—बनिए से किसानों को क्या लाभ है? क्या यह जरूरी है कि उनको हटाने के लिए सहकारी बिक्री समितियाँ बनाई जायँ?

७—सहकारी बिक्री समिति का सगठन समझाइये और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों का दिग्दर्शन कीजिये।

८—आपके गाँव के आस-पास किन-किन स्थानों में किस किस दिन 'हाट' लगते हैं? इन हाटों में कौन कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं? इन हाटों से किसानों को क्या लाभ होते हैं? इन हाटों की व्यवस्था में किन सुधारों की आवश्यकता है?

९—आपके गाँव के आस-पास किस स्थान में कब 'मेला' लगता है? इस मेले में अधिकतर कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं और इस मेले से किसानों को क्या लाभ होते हैं?

१०—गाँव के कारीगरों को अपनी बनी हुई वस्तुएँ बेचने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं ?

११—आपके गाँव में ग्वालों की संख्या कितनी है ? प्रति दिन उनके यहाँ कितना दूध होता है और उसके बेचने का क्या प्रबन्ध है ? दूध के बिकने पर शेष दूध का क्या उपयोग किया जाता है ?

१२—यदि आपको अपने गाँव में सहकारी बिक्री समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप अपना कार्य किस प्रकार आरंभ करेंगे ?

१३—आपकी प्रान्तीय सरकार किस प्रकार किसान की बिक्री संबंधी दिक्कतें दूर करने की कोशिश कर रही है ?

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण (Distribution)

वितरण क्या है ?

अभी तक हमने केवल इस बात पर विचार किया है कि धन किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है। परन्तु यह हमने अब तक नहीं बताया है कि उत्पत्ति के कार्य में हाथ बटाने वालों को उत्पन्न किए धन का हिस्सा किस प्रकार मिलता है। इसके पहले कि यह बताया जाय कि प्रत्येक का किस प्रकार हिस्सा लगाया जाता है यह याद दिलाना जरूरी मालूम पड़ता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधन क्या क्या हैं ? तुम जानते ही हो कि भूमि का होना अनिवार्य है। ज़मीन के अलावा मेहनत करना भी ज़रूरी है। इसके अलावा धन भी लगाना पड़ता है और साथ ही साथ इंतजाम की भी जरूरत पड़ती है। ज़मीन जिसकी होती है वह कुछ रुपए लेकर अपनी जमीन दूसरों को लगान पर दे देता है। किसान जमींदारों से लगान पर खेत ले लेते हैं। मेहनत करने वाले मजदूर को अपने श्रम के बदले में मजदूरी मिलती है। रुपया कर्ज देने वाला महाजन कर्जदार से सूद वसूल

करता है। और इन सब के बाद जो कुछ बच रहता है वह इन्तजाम व सादस करने वाले का मुनाफा कहलाता है। इस प्रकार उत्पन्न किए धन में से चार हिस्से किये जाते हैं जिनको लगान, मजदूरी, सूद और मुनाफा कहते हैं।

खेती में वितरण

हमारे देश के बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास निज की जमीन नहीं रहती और न पूंजी या रकम ही होती है। जमीन तो वे जमींदार से लेते हैं और पूंजी महाजन से। वे तो केवल मेहनत ही करते हैं। फिर मेहनत करने के लिए भी तो किसान कभी कभी मजदूरों को लगा लेता है। अक्सर खेतो सींचने, काटने इत्यादि के लिए मजदूर नौकर रक्खे जाते हैं। फसल काटने पर जब उपज तैयार होती है तब पहले तो उन्हें जमींदार का लगान चुकाना पड़ता है। इसके बाद जिस महाजन से किसान कर्ज लेकर बीज आदि मोल लाता है और अनाज पैदा होने तक खाता पीता है, उसे सूद व कर्ज का रुपया अदा करना पड़ता है। यह कोई जरूरी नहीं कि वह कर्ज का सारा रुपया लौटा दे। महाजन तो सूद चाहता है। जब तक उसे सूद का रुपया मिलता जाता है वह कुछ नहीं कहता। इसके सिवा मजदूरों की मजदूरी भी तो किसान ही देते हैं। ज्यादातर फसल तैयार होने के पहले ही वह दे दी जाती है, जहां नहीं दी जाती वहां फसल में से हिस्सा दिया जाता है। बाकी जो कुछ रह जाता है वह किसान के हाथ लगता है। कहीं कहीं लगान सूद मजदूरी एक ही मनुष्य को मिलती है और कहीं कहीं भिन्न भिन्न आदमियों को। जिसकी जमीन है वही यदि पूंजी भी लगावे और मेहनत भी करे तो सब हिस्से उसे ही मिल जायँगे। लेकिन हिन्दोस्तान में ऐसा हाल बहुत कम है। यहाँ की जमीन की मालिक गवर्नमेन्ट भी समझी जाती है। अतएव यदि कोई शख्स अपनी ओर से पूंजी व मेहनत दोनों ही लगावे तब भी उसे गवर्नमेन्ट को लगान या मालगुजारी देना पड़ता है। और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है यहाँ के किसानों को पूंजी भी महाजन से उधार लेनी पड़ती है। इससे उन्हें जमीन से पैदा होने वाली सम्पत्ति का केवल मजदूरी और मुनाफे वाला अंश मिलता है। चूंकि उन्हें

मज़दूरी भी लोगों से करानी पड़ती है, इसलिए उन्हें मजदूरी में से भी कुछ हिस्सा औरों को बाँट देना पड़ता है।

यह सब करने के बाद शायद ही कुछ बचता हो। फिर मुनाफ़े की कौन कहे। सरकार लगान और मालगुजारी का बदोबस्त हर बार बीस तीस साल में करती है। लगान इतना बढ़ गया है कि हर साल हजारों किसानों को लोटा-थाली बेच कर भीख माँगने की नौबत आती है। जब लगान चुकाने में तो बेचारे किसानों की यह हालत होती है तो कैसे कहा जा सकता है कि आजकल किसानों को खेती में मुनाफा भी मिलता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से मुनाफा होना अवश्य चाहिए, लेकिन जिस दशा में हमारे किसान खेती करते हैं उसमें यदि उन्हें मुनाफा और पूरी मजदूरी न मिले तो कोई ताज्जुब नहीं।

लगान (Rent)

अस्तु, तुम पूछ सकते हो कि लगान शुरू कब से हुआ और वह किस सिद्धात के अनुसार लगाया जाता है। जमीन, खेत, जंगल, खान आदि को व्यवहार में लाने के लिए उससे स्वामी को दी जाने वाली रकम को लगान कहते हैं। जमीन पर कब और किसका अधिकार हुआ और कैसे ? शुरू में आदमियों की संख्या कम थी और उनको देखते हुए जमीन बहुत अधिक थी। अतएव जो जहाँ चाहता खेती करता। जितनी ज़मीन जोतना चाहते थे, जितनी लकड़ी काटना चाहते थे, जितनी धातु खान से खोदना चाहते, सब स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते थे। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था। उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला सर्व जगह चलता था। जो अधिक बलवान होता वह दूसरे को बेदख़ल कर देता था। इसके बाद जन-संख्या जैसे जैसे बढती गई वैसे ही वैसे भूमि की माँग भी बढ़ती गई। भूमि का क्षेत्र परिमिति होने के कारण जिसके अधिकार में जो ज़मीन आ गई वही उसका मालिक बनने लगा। अब अगर किसी के पास ज़रूरत से ज्यादा ज़मीन होती तो उसने उसके उपयोग करने का अधिकार दूसरे को देकर उसके बदले में उत्पत्ति का कुछ हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इस हिस्से का नाम ही लगान है।

प्राचीन काल में ज़मीन का मालिक राजा नहीं होता था । लेकिन राजा खेती करने वालों से उपज का छठा हिस्सा लिया करता था । बस राजा का सिर्फ इतना ही हक़ था । यह एक तरह का टैक्स (कर) कहा जा सकता है लेकिन लगान नहीं क्योंकि राजा इसके बदले में कुछ नहीं देता था ।

लगान दो तरह से निश्चित होते हैं । एक तो रिवाज के अनुसार दूसरा चढ़ा ऊपरी से । भारत में कहीं कहीं रीति-रिवाज़ के मुताबिक पैदावार का आधा, तिहाई, चौथाई या पाँचवाँ भाग के बराबर लगान लिया जाता है । भारत में चढ़ा ऊपरी वाली रीति भी प्रचलित है अर्थात् जो सबसे अधिक लगान देता है वही ज़मीन पाता है । इसके अलावा लगान कई तरह के होते हैं । एक तो कुल लगान होता है जिसे बोल-चाल में लगान ही कहते हैं । दूसरा आर्थिक लगान होता है । आर्थिक लगान का हिसाब इस प्रकार लगाया जाता है कि खेत की पूरी उपज के मूल्य में से उसकी खेती के सब प्रकार का लागत खर्च निकाल दिया जाता है । बची हुई सारी रकम आर्थिक लगान कहलाती है । कुल लगान में आर्थिक लगान के अलावा ज़मीन में लगे हुए धन का सूद और जमीन के मालिक का मुनाफा भी शामिल रहता है । भारत के कुछ प्रांतों में तो किसान से सरकार लगान सीधे वसूल करती है । इस प्रथा को रैय्यतवारी कहते हैं । अन्य जगहों में अधिकतर जमींदारी प्रथा चालू है । सरकार की ओर से जमीन का इंतजाम जमींदारों के हाथ में रहता है । निश्चित दर के लगान पर किसानों को खेत जोतने का अधिकार दे देते हैं । ऐसी हालत में किसान जमींदार को आर्थिक लगान नहीं देता । उसके बजाय वह जिस दर से लगान देता है वह सरकार पहले से ही निश्चित कर देती है । जमींदार भी किसानों से वसूल होने वाली सारी रकम सरकारी खज़ाने में नहीं जमा करता । उसे जो रकम सरकार को देनी पड़ती है वह भी सरकार द्वारा पहले से निश्चित कर दी जाती है । यह रकम प्रायः किसानों से मिलने वाले लगान का ४०% या ५०% होता है ।

यह जरूरी नहीं कि दो बराबर क्षेत्र वाले जमीन के टुकड़ों का लगान बराबर हो । उन टुकड़ों के गुण भिन्न भिन्न हो सकते हैं, अतएव उनके लगान में भी फर्क होगा । जब आबादी के बढ़ने से अथवा पास से रेल निकल

जाने के कारण जमीन की माँग बढ़ जाती है तो लगान भी बढ़ जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है भारत में पहले रीति-रिवाज के मुताबिक ही लगान लिया जाता था। जब तक किसान दस्तूर के मुताबिक लगान देता रहता था तब तक उसे बेदखल नहीं कराया जा सकता था। लेकिन फिर ...दी की वृद्धि और उपज के बाजार का क्षेत्र बढ़ने के कारण भूमि की माँग बढ गई। इससे लगान-सम्बन्धी दस्तूर टूट गया और अब अधिकांश किसानों का लगान बंदोबस्त के समय सरकार निश्चित करती है।

मज़दूरी (Wages)

भारतीय किसान साधारणतः यदि अपनी ओर से कोई चीज लगाता है तो वह उसकी मेहनत है। इसके बदले में उसे मजदूरी मिलनी चाहिए। लेकिन उसे मजदूरी देने वाला तो कोई होता नहीं, वह स्वयं जो उपज पैदा करता है उसी में उसकी मजदूरी शामिल रहती है। बढ़ई, लोहार आदि जो अपने औजारों से अपनी ही भूमि पर काम करते हैं उन्हें जो मजदूरी मिलती है उसमें उनकी मजदूरी ही नहीं बल्कि जमीन का लगान और औजार में लगे धन का सूद भी मिला रहता है।

अस्तु, आजकल वस्तु बनाने वाले मजदूरों को उनकी बनाई वस्तु नहीं दी जाती। यदि दी जाय तो बड़ी मुश्किल आ पड़े। मान लीजिए, कोई मजदूर कोयले की खान में काम करता है। अब यदि उसकी मेहनत के बदले उसे मजदूरी के रूप में कोयला ही दिया जाय, तो वह उसका क्या करे? कोयले की खान शहरों के पास तो होती नहीं जो मजदूर उसे बेचने की कोशिश करे। मजदूर को तो अपने पेट पालने के लिए आटा-दाल और पहनने को कपड़ा-लत्ता चाहिए। मज़दूरी के बदले कोयला मिलने से उसे हर वक्त और हर जगह पर कोयले के बदले उसकी आवश्यकता की ये वस्तुएँ तो मिल नहीं सकती हैं इसलिए आजकल मज़दूरों की मज़दूरी रुपए-पैसे में चुकाई जाती है। इस प्रकार की मजदूरी को नकद मज़दूरी कहते हैं।

असली मजदूरी और नकद मजदूरी में बहुत फर्क होता है। मजदूर अपनी मजदूरी के पैसों से खाने-पीने की वस्तुएँ, कपड़ा आदि मोल लेता है। यदि मजदूरी के पैसों से वह इन वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद सकता है तब

कही जायगी। परन्तु यदि वह अब कम सामान
। असली मजदूरी अधिक कही जायगी। परन्तु यदि वह अब कम सामान
खरीद सकता है तब हम कहेंगे कि उसकी असली मजदूरी घट गई। यह
कोई जरूरी नहीं है कि नकद मजदूरी बढ़ने से असली मजदूरी भी चढ़ जाय।
मान लो पहले रामलाल को एक रुपया रोज मिलता था। उस समय गेहूँ
सोलह सेर का था। लेकिन अब उसकी मजदूरी दो रुपया हो गई। दूसरी
ओर गेहूँ का भाव केवल रुपए में छै सेर रह गया। पहले तो रामलाल
सोलह सेर गेहूँ खरीद सकता था लेकिन अब मजदूरी दुगनी हो जाने पर
भी वह अब केवल बारह सेर गेहूँ ही खरीद सकता है। अतएव उसकी
असली मजदूरी तो घट गई।

मजदूरों को नकद मजदूरी तो अधिकतर कारखानों में ही मिलती हैं और
यह जोर डाला जाता है कि मजदूरी की रकम इतनी हो कि मजदूर अपना
भरण-पोषण कर सकें। तिस पर देखा जाता है कि मजदूरी तय करते समय
यह बात नहीं उठाई जाती। फिर भारत के सम्बन्ध में एक बात और है।
यहाँ पर दिन पर दिन जनसंख्या बढ़ती ही जाती है। इसलिए मजदूरों की
माँग तो वहीं रहती है लेकिन काम करने वालों की तादाद बढ़ती जाती
है। फलतः आपस में काम पाने के लिए लाग-डाट चलती है। कारखाने
वाले इसका फायदा उठाकर मजदूरी कम कर देते हैं। मजदूरी की पूर्ति
के सम्बन्ध में जानने योग्य बात यह है कि यह जल्दी घटती बढ़ती नहीं।
नए कारखाने के खुलने पर ज्यादातर मजदूरी और जगह की अपेक्षा चढ़ी
हुई ही रहती है। एक बात और है; कारखानों या किसी व्यापारी के दफ्तर में
काम करने के लिए मजदूर का पढ़ा-लिखा होशियार और विश्वास पात्र
होना बड़ा जरूरी है। हमारे मजदूर अधिकतर पढ़े-लिखे नहीं होते अतएव
वे नहीं जानते कि कहाँ अधिक मजदूरी मिलती है। मजदूरी बाँटने वाले
तथा अन्य लोग उन्हें खूब धोखा देते हैं। खेती में काम करने वाले मजदूरों
को, जो कि अधिकतर जिन्स में मजदूरी पाते हैं, बहुत कम मजदूरी मिलती
है। फसल काटने के समय उन्हें कुछ ज्यादा मजदूरी मिलती है और उसमें
भी उनका पेट भर नहीं सकता। फिर और दिनों की तो बात ही क्या।
लेकिन बेचारों को उसमें ही संतोष करना पड़ता है। अस्तु, जैसा कि
योरप वगैरह में होता है वैसे ही भारत में भी यह बड़ा जरूरी

मजदूरों को इतनी मजदूरी मिले जिससे उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें।

सूद (Interest)

हमारे किसानों की हालत इतनी ख़राब रहती है कि उन्हें अपने श्रम पूरी तौर से बदला भी नहीं मिलता। फसल तैयार होने नहीं पाती जमींदार का करिन्दा, मजदूर, महाजन सब उसे लूटने आ पहुँचते हैं। न उसे बीज खरीदने, बैल मोल लेने आदि कार्यों को रुपया उधार देता है। इस रुपए को काम में लाने के लिये किसान को सूद देना पड़ता है। यदि तुम मुझे एक रुपया देते हो तो महीने भर बाद तुम मुझसे एक रुपया और एक पैसा पाने के हकदार हो जाते हो। यह एक पैसा एक रुपए पर एक महीने का सूद हुआ। सूद की दर निश्चित नहीं होती। कर्ज लेते वक्त यह कर्जदार और महाजन के बीच ठीक कर ली जाती है। हमारे महाजन गाँव के अपढ़ किसानों को खूब लूटते हैं। तीस चालीस रुपए देकर पचास के रुक्के पर अँगूठा लगवा लेना तो आसान काम है। इसके अलावा सूद की दर पैसे दो पैसे रुपया से लेकर आना दो आना रुपया माहवार तक होती है। बेचारे किसानों का रुपया उधार लिए बग़ैर काम ही नहीं चल सकता। कहाँ तक कहा जाय, यदि वे उधार न लें तो उनके रोजाना खाने-पीने का खर्च न चले। सचमुच उधार लेने की हद हो गई है और यही कारण है कि आजकल हमारे ग़रीब किसान कर्ज में पैदा होते हैं, कर्ज में पलते हैं और कर्ज छोड़ कर ही मर जाते हैं।

शहरों में सेठ-साहूकार जायदाद रहन करके या गहना गिरवी रख कर रुपया कर्ज देते हैं। परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि रुपया उधार देने के लिए कोई वस्तु गिरवी रक्खी जाय। अक्सर महाजन विश्वासपात्र सज्जनों को हाथ का रुक्का लिखा कर ही रुपया उधार दे देते हैं। कभी कभी रुक्के में फ़ेर पड़ने से या उसके खो जाने पर महाजन को असल से भी हाथ धोना पड़ता है। महाजनों के अलावा काबुली पठान भी रुपया उधार देते हैं। ये ज्यादातर अपना रुपया बहुत गरीब लोगों को देते हैं और उससे आने आने प्रति रुपया प्रति मास या उससे भी अधिक सूद वसूल करते हैं। ये

पठान अदालत में बहुत कम जाते हैं। क्योंकि इन्हें अपने डंडे का विश्वास होता है और उसके ज़ोर से ये अपनी रकम वसूल कर लेते हैं।

सूद की दर के बारे में हम बहुत कुछ ऊपर बता आए हैं। रुपयों की माँग और पूर्ति के मुताबिक यह घटती और बढ़ती रहती है। शहरों में बैंक वगैरह तो १०% या १२% पर ही उधार दे देती हैं लेकिन किसानों और मज़दूरों से २०% से लेकर ३०% सालाना तक सूद वसूल किया जाता है। आजकल यदि देखा जाय तो रुपया के लेन देन के बग़ैर कुछ काम ही नहीं चल सकता। विदेशों से करोड़ों रुपए का माल आता है और वहाँ जाता है। व्यापार में उन्नति करने के लिए यह बड़ा जरूरी है कि उसमें रकम लगाई जाय। व्यापारी के पास पर्याप्त रकम तो होती नहीं। उसे बैंकों से रुपया उधार लेकर लगाना पड़ता है। कहाँ तक बताएँ, सरकार को भी कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज में कोई बुराई नहीं समझी जाती। लेकिन यह बात उसी वक्त वक्त लागू होती है जब कर्ज से होने वाली उन्नति से सूद से अधिक फायदा होता रहता है।

लेकिन भारतीय किसान और मजदूर तो फजूलखर्ची और अनुत्पादक कार्य के लिए भी कर्ज लेते हैं। विवाह सादी या जन्ममरण सम्बन्धी रिवाज में बहुत खर्च कर दिया जाता है। फिर अपने रोजाना खर्च के लिए किसान जो रुपया उधार लेते हैं वह अनुत्पादक होते हैं। उनसे सूद का मिलना तो अलग रहा असल का भी खातमा हो जाता है। इसके अलवा किसानों की साख और हैसियत कम होने से उससे अधिक दर से सूद लिया जाता है।

मुनाफा (profit)

लगान, मजदूरी और सूद चुकाने के बाद मुनाफा ही बच रहता है। जहाँ तक गरीब किसानों का सम्बन्ध है उन्हें मुनाफे के नाम शायद कुछ नहीं मिलता क्योंकि पहले तो उन्हें मजदूरी चाहिए। अर्थात् उपज से खाने-पीने का खर्च चलाने लायक धन मिलना चाहिए। लेकिन जब उसकी उपज से उसका खर्च ही नहीं चलता तब फिर मुनाफे की पूछ कहाँ? हाँ, व्यापार संसार में बिना मुनाफे के कोई काम नहीं किया जाता। छोटी से छोटी दूकान से लेकर, बड़े बड़े कारखाने तक में मुनाफा का होना अनिवार्य है

मजदूरों को इतनी मजदूरी मिले जिससे उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें।

सूद (Interest)

हमारे किसानों की हालत इतनी ख़राब रहती है कि उन्हें अपने श्रम पूरी तौर से बदला भी नहीं मिलता। फसल तैयार होने नहीं पाती कि जमींदार का करिन्दा, मजदूर, महाजन सब उसे लूटने आ पहुँचते हैं। महाजन उसे बीज खरीदने, बैल मोल लेने आदि कार्यों को रुपया उधार देता है। इस रुपए को काम में लाने के लिये किसान को सूद देना पड़ता है। यदि तुम मुझे एक रुपया देते हो तो महीने भर बाद तुम मुझसे एक रुपया और एक पैसा पाने के हकदार हो जाते हो। यह एक पैसा एक रुपए पर एक महीने का सूद हुआ। सूद की दर निश्चित नहीं होती। कर्ज लेते वक्त यह कर्जदार और महाजन के बीच ठीक कर ली जाती है। हमारे महाजन गाँव के अपढ़ किसानों को खूब लूटते हैं। तीस चालीस रुपए देकर पचास के रुक्के पर अँगूठा लगवा लेना तो आसान काम है। इसके अलावा सूद की दर पैसे दो पैसे रुपया से लेकर आना दो आना रुपया माहवार तक होती है। बेचारे किसानों का रुपया उधार लिए बग़ैर काम ही नहीं चल सकता। कहाँ तक कहा जाय, यदि वे उधार न लें तो उनके रोजाना खाने-पीने का खर्च न चले। सचमुच उधार लेने की हद हो गई है और यही कारण है कि आजकल हमारे ग़रीब किसान कर्ज में पैदा होते हैं, कर्ज में पलते हैं और कर्ज छोड़ कर ही मर जाते हैं।

शहरों में सेठ-साहूकार जायदाद रहन करके या गहना गिरवी रख कर रुपया कर्ज देते हैं। परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि रुपया उधार देने के लिए कोई वस्तु गिरवी रक्खी जाय। अक्सर महाजन विश्वासपात्र सज्जनों को हाथ का रुक्का लिखा कर ही रुपया उधार दे देते हैं। कभी कभी रुक्के में फेर पड़ने से या उसके खो जाने पर महाजन को असल से भी हाथ धोना पड़ता है। महाजनों के अलावा काबुली पठान भी रुपया उधार देते हैं। ये ज्यादातर अपना रुपया बहुत गरीब लोगों को देते हैं और उससे आने आने प्रति रुपया प्रति मास या उससे भी अधिक सूद वसूल करते हैं। ये

पर तो दूकानदार हर एक ग्राहक से मोल करता है, दाम बंधे तो होते नहीं। एक वस्तु का दाम किसी से चार आना, किसी से साढ़ेचार या पाँच आना लिया जाता है। ग्राहक जितना ही अबोध होता है उतना ही दूकानदार को अधिक मुनाफा होता है।

आजकल अधिक मुनाफा लेना व्यापार-कुशलता का चिन्ह माना जाता है। जिस मनुष्य को सबसे अधिक मुनाफा होता है लोग उसकी ही नकल करने की कोशिश करते हैं। मुनाफा बढ़ाने के लिए कंपनियाँ अपने नौकरों से कह देती हैं कि यदि किसी निश्चित सीमा से अधिक लाभ हुआ तो इस अधिक लाभ का एक हिस्सा तुमको भी दिया जायगा। इससे मज़दूर और दिल लगा कर काम करते हैं। परन्तु याद रखना चाहिए कि अधिक मुनाफा करने से कुछ थोड़े से मनुष्यों के पास द्रव्य और रुपया इकट्ठा हो जाता है। इसके विपरीत हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सब की आवश्यकताओं को पूरा करें। मनुष्य का उद्देश्य सुख-शांति प्राप्त करना रहता है परन्तु केवल रुपया पैसा से ही आदमी को सुख-शांति नहीं मिल सकती। अगले किसी अध्याय में हम ज़मींदारी प्रथा, किसान का ज़मींदार से क्या सम्बन्ध रहता है इत्यादि के बारे में तुम्हें कुछ हाल बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—वितरण का अर्थ उदाहरणों सहित समझाइये।

२—लगान का सिद्धान्त समझाइये। अत्यधिक लगान किन दशाओं में लिया जा सकता है?

३—युक्तप्रान्त में लगान और मालगुजारी का क्या सम्बन्ध है?

४—ज़मीन कितने प्रकार की होती है? उनके गुणों का लगान से क्या संबंध है? जमीन की स्थिति का लगान से क्या सबन्ध है?

५—नई सड़कों के बनने, नई रेल की लाइन खुलने, मनुष्य की संख्या वृद्धि इत्यादि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—अनाज की मूल्य वृद्धि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

७—मजदूरी किस सिद्धान्त के अनुसार निश्चित होती है? भारत में मजदूरी कम होने के प्रधान कारण क्या हैं?

यदि किसी काम के करने वाले को उस काम से मुनाफा नहीं होगा तो वा व्यर्थ क्यों मेहनत करेगा ? कारखाने वाले अपना मुनाफा बढ़ाने के लि कम से कम लागत खर्च देने की कोशिश करते हैं अर्थात् वे श्रम आदि उत्पत्ति के साधनों का कम से कम बदला देने का प्रयत्न करते हैं।

मुनाफे का कम ज्यादा होना कई बातों पर निर्भर रहता है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है उत्पादन व्यय के कम होने से मुनाफा बढ़ जाता है अब सोचने की बात है कि उत्पादन व्यय कैसे कम हो सकता है। पहले बात तो यह है कि काम करने वालों से उसी मजदूरी में अधिक काम लिया जाय। दूसरा ढँग यह होगा कि मजदूरी की दर घटा दी जाय। इसके लिये यह बड़ा जरूरी है खाने-पीने वगैरह की चीजों की कीमत न घटे। क्योंकि हमको तो असली मजदूरी कम करनी चाहिए। नगद मजदूरी कम होने से ही हमारा काम नहीं निकलता। मजदूरी के अलावा समय के ऊपर भी मुनाफा निर्भर रहता है। जितनी जल्दी माल बिक कर मुनाफा निकल आता है मुनाफे की दर उतनी ही अधिक होती है। माल बिकने के सम्बन्ध में लागडाँट और प्रतियोगिता का सवाल उठता है। यदि बाजार में चढ़ा ऊपरी चल रही है तो तुम्हारी वस्तु की कीमत घट जायगी और कीमत के साथ मुनाफा भी घट जायगा। मुनाफा बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि कारखाना या दूकान अच्छी जमीन पर तथा मंडी के पास हो। इसके अलावा कारखाने का प्रबन्ध बड़ी बुद्धिमानी और दूरन्देशी के साथ होना चाहिए। बड़े बड़े कारखानों में इस प्रबन्ध के लिए मैनेजर रक्खे जाते हैं और उन्हें हजारों रुपया महीना वेतन मिलता है।

कारखानों के मालिकों को खूब मुनाफा होता ही है इसके अलावा हर प्रांत और नगर में कुछ ऐसे बड़े सौदागर होते हैं जो देश के अंदर और बाहर के भाव का हर वक्त पता लगाए रखते हैं। और वे एक ओर से माल खरीद कर दूसरी ओर बेच देते हैं। बीच का मुनाफा वे खुद खा जाते हैं कुछ सौदागर जिन्हें आढ़तिया कहते हैं बनियों या किसानों से माल खरीद कर बड़ी बड़ी मंडी या बन्दरगाहों में भेज देते हैं। ये लोग अपने काम में बड़े चतुर होते हैं और किसानों तथा बनियों की अज्ञानता से खूब लाभ उठाते हैं। दूकानदारी में मुनाफे का एक विचित्र ही ढंग रहता है। बा

पर तो दूकानदार हर एक ग्राहक से मोल करता है, दाम बंधे तो होते नहीं। एक वस्तु का दाम किसी से चार आना, किसी से साढ़ेचार या पाँच आना लिया जाता है। ग्राहक जितना ही अबोध होता है उतना ही दूकानदार को अधिक मुनाफा होता है।

आजकल अधिक मुनाफा लेना व्यापार-कुशलता का चिन्ह माना जाता है। जिस मनुष्य को सबसे अधिक मुनाफा होता है लोग उसकी ही नकल करने की कोशिश करते हैं। मुनाफा बढ़ाने के लिए कंपनियाँ अपने नौकरों से कह देती हैं कि यदि किसी निश्चित सीमा से अधिक लाभ हुआ तो इस अधिक लाभ का एक हिस्सा तुमको भी दिया जायगा। इससे मज़दूर और दिल लगा कर काम करते हैं। परन्तु याद रखना चाहिए कि अधिक मुनाफा करने से कुछ थोड़े से मनुष्यों के पास द्रव्य और रुपया इकट्ठा हो जाता है। इसके विपरीत हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सब की आवश्यकताओं को पूरा करें। मनुष्य का उद्देश्य सुख-शांति प्राप्त करना रहता है परन्तु केवल रुपया पैसा से ही आदमी को सुख-शांति नहीं मिल सकती। अगले किसी अध्याय में हम ज़मींदारी प्रथा, किसान का ज़मींदार से क्या सम्बन्ध रहता है इत्यादि के बारे में तुम्हें कुछ हाल बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—वितरण का अर्थ उदाहरणों सहित समझाइये।

२—लगान का सिद्धान्त समझाइये। अत्यधिक लगान किन दशाओं में लिया जा सकता है?

३—युक्तप्रान्त में लगान और मालगुजारी का क्या सम्बन्ध है?

४—ज़मीन कितने प्रकार की होती है? उनके गुणों का लगान से क्या सबंध है? जमीन की स्थिति का लगान से क्या सबन्ध है?

५—नई सड़कों के बनने, नई रेल की लाइन खुलने, मनुष्य की सख्या वृद्धि इत्यादि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—अनाज की मूल्य वृद्धि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

७—मजदूरी किस सिद्धान्त के अनुसार निश्चित होती है? भारत में मजदूरी कम होने के प्रधान कारण क्या हैं?

८—असली मजदूरी और नक़द मजदूरी के भेद उदाहरणों सहित समझाइये।

९—युक्तप्रान्त में मजदूरों को कम से कम कितनी मजदूरी मिलनी चाहिये ?

१०—सूद की दर किस प्रकार निर्धारित होती है ? गाँवों में सूद की दर अधिक होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

११—किस कर्ज के लिये सूद की दर अधिक होती है—उत्पादक कर्ज के लिये अथवा अनुत्पादक कर्ज के लिये।

१२—अपने गाँव के पाँच किसानों के आय-व्यय का कम से कम एक फसल का पूरा हिसाब रखिए और यह पता लगाइये कि प्रत्येक को कितना मुनाफा हुआ। यदि किसी किसान को कुछ भी मुनाफा न हुआ हो तो उसके न होने के कारणों का पता भी लगाइये।

१३—लागत खर्च में कौन कौन सी मदें सम्मिलित की जाती हैं ?

१४—किन उद्योग-धंधों में अधिक मुनाफा होता है और क्यों ?

१५—बहुत लोगों की यह धारणा हो गई है कि इस प्रान्त में अधिकांश किसानों को खेती से कुछ भी मुनाफा नहीं होता। यह कहाँ तक सत्य है ? यदि यह सत्य है तो किसान फिर खेती क्यों नहीं छोड़ देते ?

बारहवाँ अध्याय

बटाई-प्रथा

विषय प्रवेश

पिछले अध्याय में तुमको धन के वितरण के बारे में बताया गया था। लगान का जिक्र करते समय देश में चालू ज़मींदारी प्रथा, स्थायी बन्दोबस्त आदि का थोड़ा सा हाल लिखा गया था। लगान के इन विभिन्न बन्दोबस्तों

तथा जमींदार और किसान के सम्बन्ध के बारे में हम अगले अध्याय में खुल कर हाल लिखेंगे। सरकार ज़मीन जमींदार के सुपुर्द कर देती है। इसके बदले में जमींदार सरकार को मालगुज़ारी देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। सरकार को अधिकतर मालगुजारी से ही मतलब रहता है। ज़मींदार को इस बात की पूरी स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे उस प्रकार उन खेतों को काम में लावे। चाहे वह स्वयं मज़दूर लगा करके ज़मीन को जोते-बोवे और फसल पैदा करे चाहे वह लगान के ऊपर उस ज़मीन को किसान को उठा दे। ज़मीन को लगान पर देने से जमींदार को किसान से एक निश्चित दर से रुपया मिलता है। यह दर खेत के क्षेत्र के हिसाब से होती है। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया या सरकार द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि जमींदार किसी खेत से किसी निश्चित रकम से (जो भी ठीक हो जाय) अधिक लगान नहीं ले सकता। किसान जमींदार को यही लगान देकर रह जाता है। लगान पर दी गई ज़मीन के जोतने बोने का सारा खर्च किसान के ऊपर रहता है। ज़मींदार को उससे कोई मतलब नहीं रहता। किसान अपना हल-बैल लावे, अपनी ओर से मेहनत, धन तथा बीज आदि लगावे। चूँकि ज़मींदार को केवल लगान से मतलब रहता है, अतएव उसको इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किसान के खेत में कितना अनाज पैदा होता है।

बटाई-प्रथा क्या है?

ऊपर बताए प्रथा के अलावा हमारे देश में एक और रीति चालू है। ज़मींदार या मौरूसी किसान अक्सर अपनी ज़मीन किसान को इस शर्त पर जोतने-बोने के लिए दे देते हैं कि वे उनसे नकद लगान तो लेंगे नहीं परन्तु पैदा होने वाली उपज का एक हिस्सा ले लेंगे। इसको बटाई-प्रथा कहते हैं। अधिकतर ज़मींदार कुछ ज़मीन तो स्वयं जोतते-बोते हैं, कुछ बटाई पर किसानों को दे देते हैं। लेकिन आमतौर पर ज़मींदार ज़मीन को बटाई पर देना पसन्द नहीं करते। इसका कारण हम आगे चलकर बताएँगे। बटाई पर ज़मीन देने से पहले ज़मींदार और किसान आपस में तय कर लेते हैं कि हल-बैल, बीज आदि कौन देगा? यदि ये सब चीजें किसान लगाता है तो जहाँ तक होता है आधा-आधा हिस्सा तय होता है। अर्थात् यदि दो

सौ मन अनाज पैदा होगा तो सौ मन अनाज जमींदार ले लेगा। कहीं कहीं जमींदार किसान को बीज दे देता है। कभी हल-बैल भी मिल जाते हैं। ऐसी हालत में जमींदार पैदावार का दो तिहाई हिस्सा ले सकता है।

बटाई की दर

वैसे तो बटाई-प्रथा के अन्तर्गत किसान को मालगुजारी नहीं देना पड़ता। लेकिन कुछ जगहों में ऐसी भी शर्त्त रक्खी जाती है कि मालगुजारी कौन देगा। यदि किसान मालगुजारी भी देता है तो जमींदार का हिस्सा केवल चौथाई भी रह सकता है। मध्यप्रान्त में कहीं कहीं ऐसा पाया जाता है। लेकिन संयुक्त प्रान्त में जहाँ भी बटाई पर जमीन उठाई जाती है, वहाँ मालगुजारी जमींदार के ही जिम्मे रहती है। बटाई प्रथा में यू० पी० में अधिकतर आधा हिस्सा लिया जाता है। लेकिन जैसा कि पहले भी बताया गया है यह जरूरी नहीं है कि आधा हिस्सा ही लिया जाय। जमीन की हालत के ऊपर भी हिस्सा निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए जमींदार के पास पड़ी हुई बेकार जमीन को ले लीजिए। कुछ जमीन परती पड़ी रहती है। कुछ ऊसर होती है। किसी जमीन के साथ उससे लगा हुआ ताल-तलैया भी दे दिया जाता है। इसके अलावा जिस जमीन में खेती होती है उनके किनारे कुछ बेकार जमीन पड़ी रहती है। जमींदार अक्सर ऐसी जमीन बहुत कम बटाई पर किसानों को दे देते हैं। जब ऊसर या बेकार पड़ी जमीन किसान को दी जाती है तब लगान नहीं लिया जाता। वह जमीन उसे मुफ्त में जोतने बोने को मिल जाती है। किसान मेहनत-मजूरी लगा कर उस जमीन में खेती करता है और जो कुछ पैदा होता है उसे अपने काम में लाता है। लेकिन साल दो साल के बाद जमींदार अपना हक जाहिर करता है। जमीन तो अब उपजाऊ बन गई और दूसरे लोग उपज का कुछ हिस्सा देकर उस जमीन को लेने के लिये तैयार हो जाते हैं। अतएव जिस किसान ने उस जमीन में पहले पहल खेती की है वह जमींदार को उपज का एक हिस्सा देने पर मजबूर हो जाता है। हालांकि यह बात जरूर है कि आरम्भ में यह हिस्सा बहुत छोटा रहता है। किसान जमींदार को चौथाई या तिहाई हिस्सा देने लगता है।

यों तो मामूली जमीन और बेकार जमीन ही अधिकतर बटाई पर दी जाती है। परन्तु कभी-कभी उपजाऊ भूमि भी बटाई पर उठायी जाती है। आमतौर पर अच्छी व उपजाऊ जमीन लगान तय हो जाने पर बटाई के ऊपर उठाई जाती है। ऐसी हालत में बटाई का हिस्सा आधे से कभी कम नहीं होता। किसान भी कभी कभी इस प्रकार से अपने खेत दूसरे को जोतने के लिए दे देते हैं। मान लीजिये किसी किसान के पास सत्तर अस्सी बीघा खेत है। लेकिन घर में बीमारी फैल जाने से या घर के किसी कामकाजी आदमी की अचानक मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण से रामू किसान सारी जमीन को अपने काम में नहीं ला सकता। ऐसी हालत में कुछ जमीन उसके पास बेकार हो जाती है। अतएव वह बीस तीस बीघा खेत किसी दूसरे किसान शंकर को इस शर्त पर दे देता है कि शंकर उतने खेत में जो पैदा करेगा उसका आधा हिस्सा रामू ले लेगा। मान लीजिये रामू ने सोहनसिंह से स्वयं भी वह जमीन बटाई पर ले रक्खी है। और रामू व सोहनसिंह के बीच यह तय हुआ है कि रामू अपने खेत में होने वाली उपज का आधा हिस्सा सोहनसिंह को देगा। ऐसी हालत में रामू कभी भी शंकर को आधे हिस्से पर खेत नहीं देगा। उसकी नियत यही रहेगी कि वह शंकर से आधे से अधिक हिस्से पर मामला तय करे। परन्तु जैसा कि हम पहिले बता आए हैं मामले तय होने में मांग और पूर्ति का हाथ रहेगा। यदि शंकर को खेती करने की गरज है तो वह रामू को शायद दो तिहाई तक दे देवे। परन्तु इसके विपरीत यदि फसल के बीच किसी कारण रामू अपना खेत किसी दूसरे को देना चाहता है तो शायद रामू को आधा हिस्सा मिलना भी मुश्किल हो जाय।

बटाई-प्रथा के गुण-दोष

जैसे और बातों में गुण दोष होता है वैसे ही बटाई-प्रथा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। यदि किसान की दृष्टि से देखा जाय तो बटाई-प्रथा लगान-प्रथा से कहीं बेहतर है। लगान पर ली हुई जमीन में उपज हो या न हो किसान को लगान तो देना ही पड़ता है। किसान यदि बहुत रोया गाया तो कुछ माफी मिल जाती है। परन्तु बटाई पर

हुई ज़मीन में तो किसान और जमींदार दोनों ही आपस में पहले से तय किये हिस्से में उपज बाँटते हैं। यदि अनावृष्टि या अन्य किसी कारण किसी साल फसल मारी जाती है तो किसान जमींदार को बाकी फसल का ही [illegible] देता है। इसी तरह यदि फसल बहुत अच्छी होती है तो किसान के साथ जमींदार को भी अधिक मात्रा में फसल मिल जाती है। परन्तु उसके अलावा कुछ ऐसे फायदे भी हैं जिन्हें किसान उठा सकता है। जैसे यदि किसान के पास हल, बांज न हो तो वे जमींदार से मिल सकते हैं। इस प्रथा में जमींदार को असल नुकसान ही नुकसान दिखलाई पड़ता है। फसल खराब होने पर उसे किसान से ज्यादा दाम तो मिलता नहीं। अतएव उस समय उसे अपनी गाँठ से मालगुजारी देनी पड़ती है।

इसके अलावा बटाई प्रथा के अन्तर्गत जमींदार को रुपये तो मिलते नहीं। उसे अनाज मिलता है। यहाँ पर भी किसान को फायदा ही रहता है। मान लो खेत में सौ मन अनाज पैदा हुआ। मान लो किसान अपने खाने-पीने के लिये दस मन अनाज रख कर नब्बे मन बेच देता है और फिर जमींदार को लगान के रुपये दे देता है। परन्तु यदि किसान ने खेत को आधे हिस्से की बटाई पर लिया होता तो किसान को पचास मन अनाज मिलता। इस पचास में से उसे अब केवल चालीस मन अनाज बेचने की तकलीफ उठानी पड़ेगी और जमींदार को पचास मन अनाज बेचना पड़ेगा। ऐसी दशा में एक बात और होती है। यदि कहीं फसल के बाद अनाज का बजार भाव गिर जाय अर्थात् अनाज सस्ता बिकने लग जाय तो जमींदार को और घाटा होता है। क्योंकि चढ़े हुए भाव से बेचने पर उसे जो रुपये मिलते हैं उतने रुपये अब नहीं मिल सकते। इसके अलावा किसान कुछ नाजायज फायदे उठा सकता है। जैसे कुछ बेईमान किसान रात में या जमींदार की गैर हाजिरी में अनाज काट लाते हैं या कटा अनाज खलिहान से अपने घर में उठा लेते हैं। इसके अलावा यह तो मामूली बात है कि बटवारा होते समय यदि जमींदार या उसका आदमी नहीं पहुँचता तो किसान अपने घर अधिक माल उठवा देता है।

बटाई-प्रथा विधवाओं, नाबालिग व उन व्यक्तियों की दृष्टि से भी

अच्छी है जो विशेष कारणवश स्वयं खेती नहीं कर सकते और जो अधिकतर मजदूर रख कर खेती नहीं करा सकते।

परन्तु बटाई-प्रथा के तीन मुख्य दोष हैं। प्रथम, बटाई वाले किसानों को अधिकतर खेत में कोई हक नहीं प्राप्त होता है। यह जरूरी है कि जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त में लगभग प्रत्येक खेतिहर को कम से कम लगातार पाँच साल तक खेती करने का हक मिल गया है वैसे हक दूसरी जगह भी दिए जायँ। सन् १९४० के बंगाल कमीशन ने बंगाल प्रान्त के बटाई पर खेती करने वाले बरगादार किसानों के लिए ऐसी ही सिफारिश की थी।

द्वितीय, बटाई-प्रथा में किसान अपनी मेहनत द्वारा उपज में जो वृद्धि करता है उसका केवल एक भाग उसे मिलता है। क़िसान को उपज बढ़ाने के लिए उत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी वृद्धि में जमींदार का हिस्सा न हो।

तृतीय, कहीं कहीं लगान पर खेती करने वाले किसानों की अपेक्षा बटाई पर खेती करने वाले किसानों की हालत अच्छी नहीं है। उदाहरण के लिए बंगाल में बटाई की दर आधी उपज है। यदि यह घटा कर एक तिहाई भी कर दी जाए तब भी उन्हें इस प्रकार जितना लगान पड़ेगा वह खेतों के मालिक की देन का साढ़े पाँच गुना होगा। अतः यह आवश्यक है कि बटाई की दर घटा कर उपज का चौथाई या पाँचवाँ हिस्सा कर दिया जाए।

मजदूरी सम्बन्धी बटाई

अब तक हमने जिस बटाई का हाल बताया है उसके अलावा गाँव में एक और बटाई होती है। यह बड़ा जरूरी है कि इस दूसरी बटाई को भी स्पष्ट कर दिया जाय। यह दूसरी बटाई भी खलिहान में ही होती है परन्तु इसके हिस्सेदार नाई, ब्राह्मण, चमार, धोबी, बढ़ई, लोहार आदि गाँव के काम करने वाले होते हैं। भारतीय गाँवों में यह रिवाज है कि ये लोग साल भर किसानों को जिस वस्तु की जरूरत होती है देते रहते हैं। तेल की जरूरत पड़ने पर तेली को तेल देना पड़ता है। मतई का जूता फट जाने पर हामिद उसके वास्ते दूसरा जूता बना देता है। धोबी सब घर वालों के कपड़े धोता है। वह हर एक बड़े आदमी या औरत के पीछे चार

)

पसेरी अनाज लेता है। उसे छोटे बच्चों का कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार लोहार, बढ़ई आदि कारीगर भी गाँव भर की सेवा करते रहते हैं और फसल तैयार हो जाने पर हर एक की खलिहान से अपने अपने हिस्से का अनाज ले आते हैं। इन लोगों के साथ हमें खेती में काम करने वाले मजदूरों को नहीं भूल जाना चाहिये। इन्हें अधिकांश मजदूरी काम करने के साथ ही साथ रोजाना मिलती जाती है क्योंकि इनको तो रोज ही खाने के लिए अन्न चाहिये। परन्तु फिर भी फसल के समय कुछ मजदूर फसल तैयार हो जाने पर अनाज मिलने की शर्त पर लगाए जाते हैं। कुछ मजदूर पैसों पर काम करते हैं। परन्तु उन्हें भी फसल में से कुछ मिल जाता है। फसल कट जाने पर किसान ऐसा खुश रहता है कि उस समय उसके पास जो पहुँच जाय उसे ही कुछ न कुछ मिल जाता है।

अस्तु, अब समझ में आ गया होगा कि इस बटाई और पहले बताई हुई बटाई में क्या फर्क है? पहली बटाई तो लगान का एक रूप मात्र है। फर्क यही है कि लगान में आमतौर पर कमी नहीं की जाती और फसल में होने वाली घट बढ का किसान ही जिम्मेदार होता है, परन्तु बटाई में किसान के साथ जमींदार भी कुछ अंश में उसके सुख-दुख का साथी बनता है। दूसरी किस्म की बटाई में किसान उन सब कारीगरों और काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी चुकाता है जो बिना कुछ लिये साल भर तक किसान की सेवा करते हैं तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पहली भाँति की बटाई का अन्न लगान है, तो दूसरी में दी हुई उपज मज़दूरी और कीमत स्वरूप है।

बटाई और रीति-रिवाज

ऊपर बताए बटाई-प्रथाओं की दर में दस्तूर और रीति-रिवाज का बहुत कुछ असर पड़ता है। यदि यह दस्तूर चला आ रहा है कि सोहनसिंह कुएँ के पास वाले खेत को उठाने में किसान से दो-तिहाई हिस्सा लेता है तो चाहे इस साल रामू उस खेत को ले चाहे पारसाल श्याम उस खेत को ले, सोहनसिंह का उस खेत में दो-तिहाई का हिस्सा रहेगा। इसी प्रकार यदि किसी खेत के साथ सोहनसिंह बीज भी देता है तो उसे दस्तूर के

मुताबिक उस खेत को बोने वाले को बीज देना ही पड़ेगा। इसी प्रकार धोबी, चमार, मेहतर आदि के हिस्सों के बारे में भी दस्तूर और रीति-रिवाज का बोलबाला रहता है। वंश-परम्परा से धोबी को छोटे बच्चों और विधवाओं के पीछे कुछ भी अन्न नहीं मिलता। इसी प्रकार आदमी पीछे गाँव के धोबी को जो चार पसेरी अनाज मिलता है उस दर में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। कहने का मतलब यह कि रीति-रिवाज के इस प्रभाव के कारण गाँवों के आदमियों के हिस्सों की दर बहुत पीढ़ियों तक स्थायी बनी रहती है। इससे महँगी और सस्ती के समय गाँव वालों की आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। महँगी के समय में गरीब किसानों की हालत गिर जाती है। परन्तु लोहार, चमार आदि के जीवन में कुछ दिनों तक कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता।

अस्तु, जैसा कि हम आरम्भ में कह चुके हैं अगले अध्याय में हम सरकार और किसानों के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायेंगे। सरकार किस प्रकार किसानों से लगान की दर निश्चित करती है? क्या सरकार हमेशा जमींदार के जरिये किसान से मालगुजारी वसूल करती है या कहीं पर किसानों से सीधे वसूल करती है? जमींदार सरकार को लगान का कौन सा भाग देते हैं? जमींदार और किसानों के बीच आजकल कैसा सम्बन्ध है? इन प्रश्नों के उत्तरों के अलावा खेती सम्बन्धी कागजातों के बारे में भी कुछ बातें बताई जावेंगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—बटाई प्रथा आपके गाँव में कहाँ तक प्रचलित है? आप पटवारी द्वारा यह पता लगाइये कि गत वर्ष कितने खेत बटाई पर किसानों को दिए गये थे।

२—आपके गाँव में बटाई की दर साधारणतः क्या है? इससे अधिक दर किन दशाओं में ली जाती है? रीति रिवाज का इस दर पर क्या प्रभाव पड़ा है?

३—बटाई पर जोते जाने वाले खेतों की फसल की तुलना उन खेतों की फसल से कीजिये जिनमें खेतों के मालिक ने स्वयं खेती की है। किन खेतों में फसल अधिक अच्छी होने की आशा की जाय और क्यों?

४—अपने गाँव में जाकर यह पता लगाइये कि फसल तैयार हो जाने पर किसानों को हल पीछे नाई, धोबी, बढ़ई, पुरोहित, चमार, कुम्हार इत्यादि को कितना अनाज प्रति वर्ष देना पड़ता है।

५—बटाई प्रथा के गुण-दोष समझाइये और यह बतलाइये कि उसके ोष किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ?

६—'बटाई प्रथा में बेइमानी की बहुत गुंजाइश है' यह कथन कहाँ क सत्य है ?

७—'बटाई प्रथा किसानों के लिये लाभदायक परन्तु देश के लिये ानिकारक है' इस कथन की आलोचना कीजिये।

८—इस प्रान्त के गाँवों में रीति-रिवाज का लगान, मजदूरी और सूद ी दर पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ?

तेरहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

लगान के सम्बन्ध में लिखते समय देश में प्रचलित बन्दोबस्तों का जिक्र ाया था। अब हम इन बन्दोबस्तों, जमींदार तथा किसान का आपस का म्बन्ध व खेती के कागजात के बारे में विस्तारपूर्वक विचार करते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement)

सन् १८०० के लगभग बगाल के गवर्नर लार्ड कार्नवालिस ने सरकार ी ओर से भारत के कुछ भागों में मालगुजारी की रकम हमेशा के लिए निश्चित कर दी। यह रकम किसानों से वसूल किए जाने वाले लगान की नब्बे फी सैकड़ा थी। इस बन्दोबस्त ने सरकार को बँधी हुई रकम मिलने लगी और फिर हर साल झंझट से छुट्टी हो गई। इसके अलावा सोचा गया कि हमेशा के लिए बन्दोबस्त हो जाने पर जमींदार किसान की पढ़ाई-लिखाई, तन्दुरुस्ती, सफाई आदि का इन्तजाम करेंगे। लेकिन स्थायी बन्दो-बस्त हो जाने की वजह से खेती में उन्नति होने पर सरकार की आमदनी नहीं बढ़ सकती थी। सन् १८०० से ज़मीन की पैदावार बहुत बढ़ गई है

तथा जमींनदार लगान के रूप में किसानों से उस समय की बनिस्बत अब कई गुना रुपया वसूल कर रहे हैं। लेकिन सरकार को एक पाई ज्यादा नहीं मिल सकती, यद्यपि आजकल देश की उन्नति तथा भलाई करने के लिए रुपए की बड़ी जरूरत है। दूसरे कुछ जमींदार दयालु और परोपकारी अवश्य हैं, लेकिन जो आशा की गई थी कि ऊपर बताए बन्दोबस्त के बाद वे लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उन्नति करेंगे वह बिलकुल पूरी नहीं हुई। अस्तु, स्थायी बन्दोबस्त बंगाल, बिहार, आसाम, व यू० पी० के बनारस डिवीज़न में चालू है।

बंगाल का फ्लाऊड कमीशन (Floud Commission)

१९४० में बंगाल सरकार ने श्री फ्लाऊड महोदय की अध्यक्षता में वहाँ के जमीन के बन्दोबस्त के सम्बन्ध मे एक जाँच कमीशन बिठाया था। उस कमीशन की राय यह है कि बंगाल में स्थायी बन्दोबस्त से भूमि के प्रबन्ध और खेती में कोई भी सुधार नहीं हुआ। जमींदारों ने, जैसी आशा की जाती थी कि वे अपनी जमींदारियों की उन्नति की ओर ध्यान देंगे ऐसा कुछ नहीं किया और उस प्रथा ने किसानों की बहुत हानि हुई। वे भी भूमि तथा खेती की उन्नति नहीं कर पाते साथ ही प्रान्तीय सरकार को एक बहुत बड़ी हानि यह हुई कि उसकी मालगुजारी (Land Revenue) से होने वाली आमदनी सदैव के लिए निश्चित हो गई। वह कभी भी बढ़ाई नहीं जा सकती। कमीशन का अनुमान था कि अगर आज के हिसाब से बंगाल में मालगुजारी लगाई जावे तो बंगाल सरकार को कई करोड़ रुपये का लाभ हो। अतएव कमीशन की राय थी कि बंगाल में जमींदारी प्रथा नष्ट कर दी जावे और स्थायी बन्दोबस्त तोड़ दिया जावे। सरकार जमींदारों को मौका देकर उनसे जमींदारी ले ले।

अस्थायी बन्दोबस्त (Temporary Settlement)

भारत के अन्य जगहों में अस्थाई बन्दोबस्त है अर्थात् वहाँ पचीस या तीस साल के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। इसके बाद फिर से जमीन की देख भाल की जाती है तथा उपज की जाँच करके मालगुजारी

ठीक की जाती है। ज्यादातर यह देखा गया है कि हर नए बन्दोबस्त के साथ मालगुजारी का भार बढ़ता ही रहता है। ये अस्थाई बन्दोबस्त कई तरह के हैं। बम्बई, मद्रास, सिंध आदि प्रान्तों में रैय्यतवारी रिवाज चालू है। इसमें सरकार सीधे किसान से लगान वसूल करती है। किसान और सरकार के बीच में कोई जमींदार नहीं होता। बम्बई व मद्रास में तीस साल में बन्दोबस्त होता है। रैय्यतवारी के अलावा महालवारी प्रथा होती है। यह मध्यप्रान्त के कुछ भाग में प्रचलित है। रैय्यतवारी और महालवारी प्रथा में केवल यही फर्क है कि महालवारी के अन्तर्गत गाँव का मालगुजार मालगुजारी चुकाने का जिम्मेदार रहता है। संयुक्त प्रान्त, पंजाब और मध्यप्रान्त के कुछ भागों में जमींदारी प्रथा चालू है। इसमें जमींदार या ताल्लुकेदार अपने हिस्से की मालगुजारी देने के जिम्मेदार रहते हैं। जमीन के लगान की रकम सरकार की ओर से तय कर दी जाती है। जमींदार उस लगान की दर से किसानों को खेती करने के लिए जमीन देते हैं। इस तरह जमीन से जो लगान आ सकता है, उसका निश्चित हिस्सा सरकार ले लेती है। मान लो जमींदार सौ रुपये लगान रूप में वसूल कर सकता है। पहले सरकार इसमें से सत्तर अस्सी रुपए मालगुजारी के रूप में ले लेती थी। लेकिन अब तो घटते घटते यह रकम चालीस पचास फी सैकड़ा के करीब रह गई है।

सरकारी मालगुजारी नगद रुपयो में ली जाती है, अनाज वगैरह में नहीं। जिस साल पानी कम बरसता है या ओला और पाला पड़ता अथवा टीड़ी आदि लग जाती हैं, उस साल फसल खराब हो जाती है। मालगुजारी का एक हिस्सा माफ कर दिया जाता है। लोगों को शिकायत है कि छूट नुकसान के हिसाब से कम होती है। मालगुजारी के साथ लगान में भी कमी करनी पड़ती है। लगान मालगुजारी से भिन्न होता है। लगान तो किसान देता है और मालगुजारी जमींदार देता है। लगान जमींदार को मिलता है पर मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा की जाती है। जहाँ जमींदार नहीं हैं, जैसे उन प्रान्तों में जहाँ रैय्यतवारी प्रथा चालू है, वहाँ किसानों का सरकार से सीधा संबंध रहता है। सरकार ही किसानों से मालगुजारी वसूल करती है। सरकार लगान की दर व मालगुजारी दोनों को निश्चित करती

है। संयुक्त प्रान्त में मालगुजारी उस लगान के आधार पर निश्चय होती है
जो किसान पिछले बन्दोबस्त के समय ज़मींदार को देते थे। मध्य प्रान्त में
सरकारी अफसर ज़मीन के गुणों और स्थिति की जाँच करते हैं और उसी
हिसाब से लगान निश्चित किया जाता है। अगर किसी ज़मीन की मिट्टी
अच्छी है तथा वह बाज़ार से बहुत पास है, तो उसका लगान ज्यादा रक्खा
जाता है। लेकिन लगान (ज़मींदार के न रहने से यह मालगुजारी भी कहा
जा सकता है) की दर निश्चित करने की जो रीति बम्बई में चालू है वह
सबसे अच्छी कही जाती है। वहाँ पर यह जानने की कोशिश की जाती है
कि पिछले बन्दोबस्त के समय जो उपज हुई थी उसकी क़ीमत क्या थी और
उस उपज को पैदा करने के लिए क्या ख़र्च बैठा था। उपज की क़ीमत से
यह ख़र्च निकाल कर जो बचता है उसका लगभग आधा भाग आगामी
बन्दोबस्त तक के लिए मालगुजारी निश्चित किया जाता है। यों तो लगान
निश्चित करने का यह तरीका हमारे प्रान्त के तरीके से कहीं बेहतर है।
लेकिन किसानों को यह शिकायत रहती है कि उपज की क़ीमत बढ़ा कर
और लागत ख़र्च घटा कर हिसाब लगाया जाता है। कहा जाता है कि इससे
किसानों को पूरी मज़दूरी नहीं मिल पाती। किसानों के कई महीने भूखे रहने
का एक कारण यह भी है।

जमींदार और किसान

सरकार की ओर से लगान की जो रकम ठीक की जाती है उसे ज़मींदार
किस प्रकार वसूल करते हैं। उसी दर से वसूल करते हैं अथवा कम बेशी।
इस सम्बन्ध में यह जानना ज़रूरी है कि किसान दो तरह के होते हैं। एक
मौरूसी किसान या काश्तकार कहलाते हैं दूसरे गैर-मौरूसी। मौरूसी किसान
तो वे होते हैं जिन्हें यह हक़ मिल जाता है कि वे जब तक लगान देते जायँ
और खेती किए जाएँ, जमींदार उनसे खेत छीन कर दूसरों को नहीं दे
सकता। गैर-मौरूसी किसान वे होते हैं जो थोड़े दिनों के लिए खेत लगान पर
लेते हैं और जिन्हें मौरूसी हक़ प्राप्त नहीं होते। चाहे स्थायी बन्दोबस्त हो
चाहे अस्थायी, मौरूसी किसानों की हालत अच्छी कही जाती है। लेकिन
गैर मौरूसी किसानों की हालत देश के प्रत्येक कोने में शोचनीय है। ज़मींदार

लोग हमेशा यही सोचते हैं कि क़ानून के अन्दर रहते हुए इन किसानों से जितना अधिक लगान वसूल किया जाय उतना ही अच्छा। अतएव बिना किसी सिद्धान्त या उसूल के ही किसान पर ज़्यादा लगान लगाया जाता है।

. में सन् १६१६ के क़ानून लगान के अनुसार अधिकतर किसानों को । ..ो हक़ मिल गये हैं और लगान अनाज की क़ीमत के पाँचवें हिस्से से नहीं होगा। किसानों को खेतों में पेड़ लगाने और मकान बनाने का भी हक़ मिल गया है। इनके कारण लगान नहीं बढ़ाया जा सकता।

फिर यह लगान वसूल कैसे किया जाता है? बेचारा किसान अगर अपने आप समय पर लगान का रुपया ज़मींदार को दे आवे तब तो ठीक, वरना बड़े ज़मींदार को तो लगान की फ़िक्र रहती नहीं; उन्हें आराम-तलबी करने और विलासिता का जीवन बिताने से छुट्टी कहाँ रहती है! बहुत से रईस, ज़मींदार तो गाँव में रहना पसन्द नहीं करते। वे गाँवों को छोड़ कर शहरों में आ बसते हैं। क्या तुम जानते हो कि क्यों वे गाँवों में रहना पसन्द नहीं करते? पहले तो हमारे हिन्दोस्तान के गाँवों का रहन-सहन बहुत नीचे दर्जे का है, वहाँ स्वास्थ्य और दवाई दारू का कोई इन्तज़ाम नहीं रहता है। अगर कहीं कोई अस्पताल होता भी है तो गाँव से कई कोस दूर पर। फिर गाँव में मनोरंजन और खेलकूद का कोई इन्तज़ाम नहीं रहता। लेकिन हमारे ज़मींदार के गाँव छोड़ने का कारण अस्पताल या खेलकूद की सामग्री का अभाव नहीं है। असली कारण तो गाँवों में भोग-विलास की सामग्री, ऐशो-आराम और नाच रंग का ठीक-ठीक न होना है। गाँवों में थियेटर, बायस्कोप या जुए खेलने के लिए कारनिवल कहाँ मिल सकते हैं! ज़मींदारों की ग़ैरहाज़िरी में उनके कारिन्दे और नौकर ही लगान वसूल करने का काम करते हैं। कहावत है कि बिल्ली के चले जाने पर चूहों का राज्य स्थापित हो जाता है। ज़मींदारों के चले जाने पर ये कारिन्दे खूब उधम मचाते और मनमाना काम करते हैं। बेचारे ग़रीब किसानों पर बुरी तरह से अत्याचार किया जाता है। वक़्त पर ही नहीं बल्कि कहा जा सकता है कि आए दिन लगान वसूल किया जाता है। बेचारे किसानों को दूध-दही, फल-फूल आदि चीज़ें कारिन्दों पर चढ़ाने पड़ते हैं, जिसमें कारिन्दा-देवता नाराज न हो जाय। पहले किसानों को ज़मींदार या कारिन्दा से लगान की रसीद नहीं मिलती थी, परन्तु

अब तो संयुक्त प्रांत में कानून द्वारा यह तय कर दिया गया कि प्रत्येक लगान की जमा की रसीद दी जाए और उसकी एक कापी ज़मींदार अवश्य रक्खे। इस कारण पहले की भाँति लगान बकाया दिखाकर किसान बेदखल नहीं किए जा सकते। वैसे भी अब बाकी लगान को चुकता करने के लिए मौरूसी किसानों को दो साल तथा ग़ैर-मौरूसी किसानों को छः मास का समय मिलता है।

बेगार और नज़राना

लेकिन जब ज़मींदार गाँव में रहता है तब भी कौन-सा अच्छा इन्तज़ाम होता है। उस समय भी कई गाँवों में किसानों को मार-पीट कर कारिन्दे लगान व अपना कमीशन वसूल करते हैं। अब कुछ वर्षों से किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों में कुछ कमी हुई है। तो भी कहीं-कहीं किसानों से रसद और बेगार ली जाती है। हर एक किसान की पारी बँधी रहती है। कहीं-कहीं ऐसा देखा गया है कि जब कोई ख़ास काम पड़ जाता है तब पारी हो या न हो किसान बेगार के वास्ते पकड़ लिए जाते हैं। उस समय वे खाना खा रहे हों, चाहे जिस हालत में हों, ज़मींदार के आदमी उसे घसीट कर ले जाते और बेगार लेते हैं। जब कोई त्योहार आता है तो नज़राना और भेंट ली जाती है। अगर कोई किसान ज़मींदार साहब को चीज़ें भेंट देने में चूक जाय तो उसकी बुरी तरह से ख़बर ली जाती है। नज़र के अलावा देश के बहुत से हिस्सों में त्योहारों पर तरह-तरह के टैक्स वसूल किए जाते हैं। यह तो सब को पता ही है कि भारत में त्योहारों की संख्या बहुत अधिक है। आज दशहरा है तो कुछ दिन बाद दिवाली और होली इत्यादि। भला बताइये तो, जिनके पास स्वयं पेट भरने के लिए काफ़ी सामग्री नहीं है वह कैसे आए दिन ज़मींदार साहब की मन पसन्द भेंट तैयार कर सकता है! क्या आप सोचते हैं कि यह भेंट ज़मींदार के घर रहती है? यह तो उसी समय ज़मींदार महाराज के नौकरों और खुशामदियों के पेट में पहुँच जाती है। हाँ, यदि किसी भेंट की सामग्री क़ीमती हुई या उसमें कोई मूल्यवान माल हुआ तो वह अवश्य ज़मींदार के घर में रह जाता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि किसान बेचारे चाहे कारिन्दों के अत्याचार की शिकायत लेकर आवें अथवा और किसी कारणवश, उनकी कोई फरयाद

लोग हमेशा यही सोचते हैं कि क़ानून के अन्दर रहते हुए इन किसानों से जितना अधिक लगान वसूल किया जाय उतना ही अच्छा। अतएव बिना किसी सिद्धान्त या उसूल के ही किसान पर ज़्यादा लगान लगाया जाता है। संयुक्तप्रांत में सन् १६३६ के क़ानून लगान के अनुसार अधिकतर किसानों को मौरूसी हक़ मिल गये हैं और लगान अनाज की क़ीमत के पाँचवें हिस्से से अधिक नहीं होगा। किसानों को खेतों में पेड़ लगाने और मकान बनाने का भी हक मिल गया है। इनके कारण लगान नहीं बढ़ाया जा सकता।

फिर यह लगान वसूल कैसे किया जाता है? बेचारा किसान अगर अपने आप समय पर लगान का रुपया ज़मींदार को दे आवे तब तो ठीक, वरना बड़े ज़मींदार को तो लगान की फ़िक्र रहती नहीं; उन्हें आराम-तलबी करने और विलासिता का जीवन बिताने से छुट्टी कहाँ रहती है? बहुत से रईस ज़मींदार तो गाँव में रहना पसन्द नहीं करते। वे गाँवों को छोड़ कर शहरों में आ बसते हैं। क्या तुम जानते हो कि क्यों वे गाँवों में रहना पसन्द नहीं करते? पहले तो हमारे हिन्दोस्तान के गाँवों का रहन-सहन बहुत नीचे दर्जे का है, वहाँ स्वास्थ्य और दवाई दारू का कोई इन्तज़ाम नहीं रहता है। अगर कहीं कोई अस्पताल होता भी है तो गाँव से कई कोस दूर पर। फिर गाँव में मनोरंजन और खेलकूद का कोई इन्तज़ाम नहीं रहता। लेकिन हमारे ज़मींदार के गाँव छोड़ने का कारण अस्पताल या खेलकूद की सामग्री का अभाव नहीं है। असली कारण तो गाँवों में भोग-विलास की सामग्री, ऐशो-आराम और नाच रंग का ठीक-ठीक न होना है। गाँवों में थियेटर, बायस्कोप या जुए खेलने के लिए कारनिवल कहाँ मिल सकते हैं? ज़मींदारों की ग़ैरहाज़िरी में उनके कारिन्दे और नौकर ही लगान वसूल करने का काम करते हैं। कहावत है कि बिल्ली के चले जाने पर चूहों का राज्य स्थापित हो जाता है। ज़मींदारों के चले जाने पर ये कारिन्दे खूब उधम मचाते और मनमाना काम करते हैं। बेचारे ग़रीब किसानों पर बुरी तरह से अत्याचार किया जाता है। वक्त पर ही नहीं बल्कि कहा जा सकता है कि आए दिन लगान वसूल किया जाता है। बेचारे किसानों को दूध-दही, फल-फूल आदि चीज़ें कारिन्दों पर चढ़ाने पड़ते हैं, जिससे कारिन्दा-देवता नाराज न हो जाय। पहले किसानों को ज़मींदार या कारिन्दा से लगान की रसीद नहीं मिलती थी, परन्तु

ार किसान भूखों मरने लगेंगे तो जमींदारों को लगान कहाँ से मिलेगा ?
ार यदि लगान नहीं मिलेगा तो उनकी आय नहीं के बराबर हो जाएगी
ौर वे भी भूखों मरने लगेंगे। चूँकि जमींदार इन बातों के ऊपर ध्यान नहीं
ते ; अतएव संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त आदि की सरकारों ने यह
ाय कर लिया है कि जमींदारी-प्रथा को ही तोड़ देनी चाहिये। लेकिन ऐसा
करने में बहुत से झगड़े हैं। प्रत्येक जमींदारी के सम्बन्ध में अलग-अलग
स्थिति और समय के अनुसार विचार करना पड़ेगा। फिर सवाल उठेगा कि
जमींदार को उसके हक छीनने के बदले कुछ दिया जाय या नहीं। यदि दिया
जाय तो कितना दिया जाय इत्यादि। विभिन्न प्रान्तों में इस सम्बन्ध में विचार
करने के लिए कमेटियाँ नियुक्त हुई हैं।

पटवारी के कागजात

अस्तु, अब यह बताना बड़ी जरूरी है कि किसान और जमींदार के बीच जो बात ठहरती है तथा लगान वगैरह के बारे में जो फेर-फार होते रहते हैं उनका हिसाब कौन रखता है ? तुम सबने पटवारी का नाम जरूर सुना होगा। बस यही पटवारी खेतों से सम्बन्ध रखने वाले सब कागज़ात रखते हैं। इन कागज़ों को लैंड-रेकर्ड्स या जमीन के कागजात कहते हैं। इनके बगैर क्या काश्तकार क्या जमींदार यहाँ तक कि सरकार का भी काम नहीं चल सकता। सब के लाभ के लिये यह निहायत जरूरी है कि उन कागजों में जो कुछ दर्ज हो वह ठीक हो। अगर उसमें जरा-सी भी गलती हो गई तो फिर कुछ न कुछ गड़बड़ी जरूर होगी। इसलिये यह आवश्यक है कि कागजों में सारी बातें अच्छी व पूरी तरह भरी जायँ। इसके पहले कि इन कागजों के बाबत इसी तरह की और बातें बताई जायँ यह ठीक मालूम पड़ता है कि हम तुम्हें पटवारी के सभी कागजातों के बारे में थोड़ा हाल बता दें।

पटवारी के पास जो कागज़ात रहते हैं, ये सब छपे हुए फार्मों पर लिखे हुए होते हैं। पटवारी उन्हें एक सरकारी अफ़सर से जिसको रजिस्ट्रार-कानूनगो कहते हैं प्राप्त करते हैं। रजिस्ट्रार-कानूनगो को सरकार की तरफ से ये कागज़ात छपे छपाये मिलते हैं। वेही उन्हें रखते हैं और जिस पटवारी को जरूरत पड़ती है उसे दे देते हैं। उन कागज़ों के नाम ये हैं—

नहीं सुनी जाती। एक बात और—यह तो आपको मालूम ही है कि गैर मौरूसी काश्तकार कुछ दिनों के लिए ही लगान पर जोतने के लिए खेत लेते हैं। जब अवधि ख़तम होने के क़रीब आती है तो उन बेचारों को बेदख़ली से बचने के लिए नजराना भी देना पड़ता है। बिहार, उड़ीसा व संयुक्तप्रान्त में बेगार और नजराना लेने की क़ानून द्वारा मनाही कर दी गई है तब भी अभी जमींदार कुछ न कुछ वसूल कर ही लेते हैं। संयुक्तप्रान्त में तो ज़मींदारों ने नए क़ानून की दफा १७१ का फ़ायदा उठाकर किसानों को खूब बेदखल किया और उन्हें इसका डर दिखाकर मुफ़्त में रुपया वसूल किया। अब तो सरकार कानून की इस गड़बड़ी को सुधार रही है।

ज़मींदार के कर्त्तव्य

कुछ ज़मींदार अपने इन कामों के बुरे परिणाम नहीं समझते। आप ही सोचिए, जहाँ पर किसान को बेदखली का डर लगा रहता है वह क्या कभी काफी रकम लगा करके अच्छी तरह खेती कर सकता है? कभी नहीं। यह धमकी मौरूसी और गैरमौरूसी किसानों के बीच ज़मीन आसमान का फर्क डाल देती है। मौरूसी किसान निश्चिन्त होकर अच्छी तरह खेती कर सकते हैं; लेकिन गैरमौरूसी किसान को यह विश्वास तो रहता नहीं कि खेत उसके पास रहेंगे। अतएव वह खेत में काफी रुपया कभी नहीं लगाना चाहता; परन्तु यदि सबको मौरूसी हक दे दिये जायँ तो देश की उपज भी काफी बढ़ जाय और किसानों की भी हालत दिन दिन सुधरने लगे। अतएव यह बड़ा आवश्यक है कि गैरमौरूसी किसानों के मन में यह बात अच्छी तरह बैठा दी जाय कि उनके खेत नहीं छीने जाएँगे और जहाँ तक होगा इस बारे में उसके साथ भी मौरूसी किसान की तरह ही वर्ताव किया जायगा। दर असल ज़मींदारों के कारण ही गाँवों और किसानों की हालत खराब है। यदि वे चाहें तो ग्राम जीवन को सुधारने में बहुत कुछ हाथ बटा सकते हैं। ज़मींदारों का यह कर्त्तव्य है कि वे परोपकारी बनें और ऐसे काम करें जिससे गाँव की भलाई और उन्नति हो। यह जानता है कि किसान क़र्ज़दार रहते हैं। क्यों? क्योंकि ब्याह शादी और मादक वस्तुओं में पैसे उड़ाते हैं। क्योंकि उनके पास रोजमर्रा अपने पेट भरने के लिए भी अन्न नहीं होता।

अगर किसान भूखों मरने लगेंगे तो जमींदारों को लगान कहाँ से मिलेगा ? और यदि लगान नहीं मिलेगा तो उनकी आय नहीं के बराबर हो जाएगी और वे भी भूखों मरने लगेंगे। चूँकि जमींदार इन बातों के ऊपर ध्यान नहीं देते; अतएव संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त आदि की सरकारों ने यह तय कर लिया है कि जमींदारी-प्रथा को ही तोड़ देनी चाहिये। लेकिन ऐसा करने में बहुत से झगड़े हैं। प्रत्येक जमींदारी के सम्बन्ध में अलग-अलग स्थिति और समय के अनुसार विचार करना पड़ेगा। फिर सवाल उठेगा कि जमींदार को उसके हक छीनने के बदले कुछ दिया जाय या नहीं। यदि दिया जाय तो कितना दिया जाय इत्यादि। विभिन्न प्रान्तों में इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए कमेटियाँ नियुक्त हुई हैं।

पटवारी के कागज़ात

अस्तु, अब यह बताना बड़ी जरूरी है कि किसान और ज़मींदार के बीच जो बात ठहरती है तथा लगान वगैरह के बारे में जो फेर-फार होते रहते हैं उनका हिसाब कौन रखता है ? तुम सबने पटवारी का नाम जरूर सुना होगा। बस यही पटवारी खेतों से सम्बन्ध रखने वाले सब कागज़ात रखते हैं। इन कागज़ों को लैंड-रेकर्ड्स या जमीन के कागजात कहते हैं। इनके बगैर क्या काश्तकार क्या जमींदार यहाँ तक कि सरकार का भी काम नहीं चल सकता। सब के लाभ के लिये यह निहायत जरूरी है कि उन कागजों में जो कुछ दर्ज हो वह ठीक हो। अगर उसमें जरा-सी भी गलती हो गई तो फिर कुछ न कुछ गड़बड़ी जरूर होगी। इसलिये यह आवश्यक है कि कागजों में सारी बातें अच्छी व पूरी तरह भरी जायँ। इसके पहले कि इन कागजों के बाबत इसी तरह की और बातें बताई जायँ यह ठीक मालूम पड़ता है कि हम तुम्हें पटवारी के सभी कागजातों के बारे में थोड़ा हाल बता दें।

पटवारी के पास जो कागज़ात रहते हैं, वे सब छपे हुए फार्मों पर लिखे हुए होते हैं। पटवारी उन्हें एक सरकारी अफ़सर से जिसको रजिस्ट्रार-कानूनगो कहते हैं प्राप्त करते हैं। रजिस्ट्रार-कानूनगो को सरकार की तरफ से ये कागज़ात छपे छपाये मिलते हैं। वेही उन्हें रखते हैं और जिस पटवारी को जरूरत पड़ती है उसे दे देते हैं। उन काग[illegible] ये हैं—

शजरा मिलान, खसरा, स्याहा, खतौनी जमाबन्दी, बहीखाता जिन्सवार और खेवट।

शजरा मिलान

शजरा मिलान गाँव के खेतों और मकानों का नक़्शा होता है। यह मोमजामे के कपड़े या मज़बूत कागज़ पर बनाया जाता है। इसमें हर तरह की आराजी का नक़्शा दिया जाता है। जिस खेत का नक़्शा रहता है उसी में उसका नम्बर भी दिया रहता है। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि आराजी या रकबा की हालत बदलती है, क्योंकि किसान खेत बेचते, ख़रीदते और दख्ल बेदख़ल होते रहते हैं। अतएव निश्चित समय के बाद इस नक़्शे में भी फेरफार होता रहता है। इसके लिये पटवारी हर एक खेत की जाँच करता है। साल भर के अन्दर उसमें जो जो रद्दोबदल होते हैं उनका ठीक ठीक हाल वह लिख लेता है। इस काम के लिये खेत को नापना पड़ता है। यदि नाप में जरा सी भी गलती हो गई तो बड़ी गड़बड़ी पड़ जाती है। इसलिए यह ज़रूरी होता है कि जिसका कुछ हक ज़मीन में हो वह पटवारी के साथ साथ जाकर यह देखे कि सब लिखा पढ़ी ठीक ठीक हो रही है। शजरा मिलान में तालाब, बाग और कुआँ वगैरह भी दिखाए जाते हैं। यह निहायत ज़रूरी होता है कि काश्तकार और ज़मींदार पटवारी को मदद करके ठीक ठीक बातें पटवारी को लिखा दें। अस्तु, शजरा मिलान में गाँव की जितनी ज़मीन होती है उसका इसमें खेतवार हिसाब रहता है। इस नक़्शे को देख कर कोई भी किसान अपना खेत जान सकता है।

खसरा

शजरा मिलान में तो खेतों का नक़्शा ही रहता है लेकिन खसरे में ज़मीन का पूरा हाल रहता है। नक़्शे में जितने खेत रहते हैं उनमें उनके नम्बर दिए रहते हैं। वही नम्बर सिलसिलेवार खसरे में भी दर्ज रहते हैं। उन्हीं नम्बरों के साथ उन खेतों का रकबा, लगान ज़मीन किस तरह की है, ज़मींदार का नाम, किसान का नाम और फसल की क़िस्म आदि सब दर्ज रहते हैं। खसरे का ठीक ठीक लिखा जाना बहुत ज़रूरी है। खेतों की गलत नापजोख का असर शजरा मिलान में तो नहीं के बराबर रहता है

लेकिन खसरे में अगर कुछ भी गलत लिख जाता है तो बाद में लड़ाई झगड़े चल जाते हैं और किसान वगैरह मुसीबत में पड़ जाते हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि ज़मींदार और काश्तकार दोनों पटवारी के साथ रह कर अपने खेत की सब बातें खसरे में लिखवा दें। जो जो फेर-फार हुए हों वे ज़रूर ही पटवारी के कागज़ों में दर्ज हो जाने चाहिये।

स्याहा

स्याहा वह कागज़ होता है जिसमें पटवारी ज़मींदार के कागज़ात देख कर लगान की वसूलयाबी की खाना पूरी करता है।

बहीखाता जिन्सवार

बहीखाता जिन्सवार में लगान का हिसाब लिखा जाता है। इसके साथ ही लगान का तरीका भी दिया रहता है। चाहे वह बटाई से लिया जाय चाहे और किसी तरीके से।

खतौनी

खतौनी जमाबन्दी खसरे के मुताबिक बनाई जाती है। इसमें कब्जे के मुताबिक किसानों के नाम दिए जाते हैं। किसानों और जमींदारों के सब खेत एक जगह दर्ज रहते हैं। उसी में, साथ ही, लगान और बकाया लगान भी लिखा रहता है। खतौनी में भी सब जरूरी तबदीलियाँ दर्ज रहती हैं।

खेवट

ऊपर पटवारी के कागजातों में खेवट का नाम भी आया है। यह मुहालवार तैयार किया जाता है। हर एक मुहाल में सभी दखलकारों का एक रजिस्टर होता है। उसमें रकबे के सब मालिकों का हर एक हक दर्ज रहता है और यह भी लिखा रहता है कि वह हक कितना और किस किस्म का है। खेवट में जो तबदीली होती है वह रजिस्ट्रार कानूनगो की आज्ञा लेकर होती है। उसके हुक्म के बिना कोई फेर-फार नहीं हो सकता। जो भी घटाबढ़ी होती है उस पर उसके दस्तखत होते हैं जिसके कि उसके लिए वही जिम्मेदार रहे।

पटवारी के अन्य कार्य

ऊपर बताए हुए कागजातों को तो पटवारी पूरा ही करता है। उसके जब कोई किसान या जमींदार मर जाता है, जब कोई जमीन बेची ी है, गाँवों की जब सरहद बदली जाती है तब इन सब का हाल पटवारी लिख कर देना पड़ता है। इसके अलावा जिस साल वर्षा कम होने के या बाढ के कारण उपज मारी जाती है तब भी पटवारी को रिपोर्ट ^ पड़ती है।

पटवारी गाँव के बहुत काम का होता है। लेकिन वह किसानों पर होने वाले अत्याचार नहीं रोक सकता। यह अत्याचार तो तभी रुक सकते हैं जब जमींदारों की आंखें खुलें या जब किसान मिल कर कुछ काम करें। अब तो गाँव में लोग मिल कर समिति बना लेते हैं। इसे सहकारी समिति कहते हैं। सहकारी समितियाँ किसानों की हालत बहुत कुछ सुधार सकती हैं। हम इनका विचार सहकारिता के अन्तर्गत करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसानों से पूछ कर यह ठीक ठीक पता लगाइये कि उनको गत वर्ष में अपने जमींदार को किस प्रकार की कितनी बेगार देनी पड़ी?

२—यदि आप किसी गाँव के जमींदार बना दिये जायँ तो उस गाँव के किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये क्या प्रयत्न करेंगे?

३—गैर मौरूसी काश्तकार की तुलना मे मौरूसी काश्तकार की खेती अच्छी होने के प्रधान कारण क्या हैं?

४—'किसान गरीब होने से अन्त में जमींदार भी गरीब हो जाता है।' इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिये।

५—'जमींदार का सच्चा स्वार्थ किसानों की दशा सुधारने में है।' इस कथन की आलोचना कीजिये।

६—जिन प्रान्तों मे जमींदार नहीं हैं क्या उनमें किसानों की दशा अच्छी है? यदि नहीं तो उसके प्रधान कारण क्या हैं?

७—स्थाई बंदोबस्त के गुण दोष लिखिये।

८—युक्त प्रान्त और बम्बई प्रान्त की मालगुजारी निश्चित करने की प्रणालियों की तुलना कीजिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से कौन-सी प्रणाली उत्तम है?

९—युक्त प्रान्त में नए कानून द्वारा किसानों को कौन-सी नई सुविधाएँ हुई हैं? सक्षेप में लिखिए।

१०—गाँव में पटवारी का क्या महत्त्व है? उसके द्वारा किसानों का क्या लाभ हो सकता है?

११—पटवारी के मुख्य कागजातों का वर्णन कीजिये। ये कागजात ठीक किस प्रकार रखाये जा सकते हैं?

१२—अपने गाँव के पटवारी से 'खसरा' लेकर उसका एक पृष्ठ नकल कर लाइये और यह जाँच कीजिये कि उसमें लिखी हुई बातें कहाँ तक ठीक हैं।

१३—शजरा मिलान क्या है? उसका महत्त्व समझाइये।

चौदहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन (Village Problems)

इस पुस्तक का विषय ग्राम्य अर्थशास्त्र (Rural Economics) है। पिछले अध्यायों में अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों पर विचार किया जा चुका है। अगले अध्यायों में हम ग्रामों की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस अध्याय में इन समस्याओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, लगभग चालीस करोड़ जनसंख्या वाले इस महादेश में लगभग ७८ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। जिस देश में लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या खेती करके गुज़ारा करती हो वहाँ गाँवों की बहुतायत होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि हिन्दोस्तान गाँवों का देश है। ब्रिटिश-भारत तथा देशी राज्यों को ... ।

सारे देश में लगभग साढ़े छः लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८६ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि हिन्दोस्तान को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि वास्तविक भारतवर्ष की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को हिन्दोस्तान का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिए।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि हिन्दोस्तान में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है। गाँव कोई नई संस्था नहीं है, वह हज़ारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है। परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता, गंदगी, लड़ाई-झगड़े, ऋण और अशिक्षा का गाँवों में एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ो वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो यही बात नही है। प्रान्तीय सरकार अपनी आय अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करती रही, और ज़मींदार भी लगान वसूल करके अधिकतर नगरों में रह कर व्यय करने लगे। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। ज़मींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों में शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे वे गाँव में नहीं रहे। क्रमशः गाँवों में बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ है और ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural uplift) देश में उठ खड़ा हुआ है। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि यदि हम चाहते

अधिकांश जनसंख्या आज जैसा नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गाँवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गाँवों के सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दोस्तान के गाँवों में कौन कौन सी ऐसी समस्यायें हैं जिनके हल किये बिना गाँवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों की समस्यायें (Village problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गाँवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव में रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। सच तो यह है कि गाँव मनुष्य जनसंख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाई जाती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक जाती है ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दें। लेकिन गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर धीरे धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिए ग्रामीण जनसंख्या पर ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसंख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह ज़रूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री पुरुष गाँवों में रहें।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियाँ छोड़ कर शहरों में जाकर बस गए हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न करके शहरों में व्यय करते हैं। इस

सारे देश में लगभग साढ़े छः लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८६ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि हिन्दोस्तान को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि वास्तविक भारतवर्ष की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को हिन्दोस्तान का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिए।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि हिन्दोस्तान में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है। गाँव कोई नई संस्था नहीं है, वह हजारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है। परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता गंदगी, लड़ाई-झगड़े, ऋण और अशिक्षा का गाँवों में एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ों वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो यही बात नहीं है। प्रान्तीय सरकार अपनी आय अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करती रही, और ज़मींदार भी लगान वसूल करके अधिकतर नगरों में रह कर व्यय करने लगे। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। ज़मींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों में शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे वे गाँव में नहीं रहे। क्रमशः गाँवों में बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ है और ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural uplift) देश में उठ खड़ा हुआ है। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि यदि हम चाहते

अधिकांश जनसंख्या आज जैसा नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गांवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गांवों के सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दोस्तान के गांवों में कौन कौन सी ऐसी समस्यायें हैं जिनके हल किये बिना गांवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों की समस्यायें (Village problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गांवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गांव में रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गांव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। सच तो यह है कि गांव मनुष्य जनसंख्या की नसरी है जहां से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाई जाती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक जाती है ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दें। लेकिन गांवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहां जाकर धीरे धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिए ग्रामीण जनसंख्या पर ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसंख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह ज़रूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री पुरुष गांवों में रहें।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियाँ छोड़ कर शहरों में जाकर बस गए हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न करके शहरों में व्यय करते हैं।

सारे देश में लगभग साढ़े छः लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८६ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि हिन्दोस्तान को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि वास्तविक भारतवर्ष की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को हिन्दोस्तान का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिए।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि हिन्दोस्तान में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है। गाँव कोई नई संस्था नहीं है, वह हजारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है। परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता, गंदगी, लड़ाई-झगड़े, ऋण और अशिक्षा का गाँवों में एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ों वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो यही बात नहीं है। प्रान्तीय सरकार अपनी आय अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करती रही, और ज़मींदार भी लगान वसूल करके अधिकतर नगरों में रह कर व्यय करने लगे। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। ज़मींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों में शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे वे गाँव में नहीं रहे। क्रमशः गाँवों में बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ है और ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural uplift) देश में उठ खड़ा हुआ है। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि यदि हम चाहते

अधिकांश जनसंख्या आज जैसा नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गाँवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गाँवों को सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दोस्तान के गाँवों में कौन कौन सी ऐसी समस्यायें हैं जिनके हल किये बिना गाँवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों की समस्यायें (Village problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गाँवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव में रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। सच तो यह है कि गाँव मनुष्य जनसंख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाई जाती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक जाती है ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दें। लेकिन गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर धीरे धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिए ग्रामीण जनसंख्या पर ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसंख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह ज़रूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री पुरुष गाँवों में रहें।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियाँ छोड़ कर शहरों में जाकर बस गए हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न करके शहरों में व्यय करते हैं। इस

सारे देश में लगभग साढ़े छः लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८९ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि हिन्दोस्तान को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि वास्तविक भारतवर्ष की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को हिन्दोस्तान का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिए।

ऊपर दिये हुये विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि हिन्दोस्तान में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है। गाँव कोई नई संस्था नहीं है, वह हजारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है। परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता गंदगी, लड़ाई-झगड़े, ऋण और अशिक्षा का गाँवों में एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ों वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो यही बात नहीं है। प्रान्तीय सरकार अपनी आय अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करती रही, और ज़मींदार भी लगान वसूल करके अधिकतर नगरों में रह कर व्यय करने लगे। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। ज़मींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों में शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे वे गाँव में नहीं रहे। क्रमशः गाँवों में बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ है और ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural uplift) देश में उठ खड़ा हुआ है। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि यदि हम चाहते

अधिकांश जनसंख्या आज जैसा नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गाँवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गाँवों को सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दोस्तान के गाँवों में कौन कौन सी ऐसी समस्यायें हैं जिनके हल किये बिना गाँवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों की समस्यायें (Village problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गाँवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव में रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। सच तो यह है कि गाँव मनुष्य जनसंख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाई जाती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक जाती है ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दें। लेकिन गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर धीरे धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिए ग्रामीण जनसंख्या पर ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसंख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह ज़रूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री पुरुष गाँवों में रहें।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियाँ छोड़ कर शहरों में जाकर बस गए हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय शहरों में व्यय करते हैं।

७—खेती-बारी की उन्नति।
८—गाँव में लड़ाई झगड़े और मुकदमेबाज़ी की समस्या।
९—ग्रामीण ऋण की समस्या।
१०—गाँवों में धंधों की कमी और आय के साधनों का होना।
११—गाँव में गमनागमन के साधनों का अभाव।

अब हम प्रत्येक समस्या को लेकर उसकी विस्तृत आलोचना अगले अध्यायों में करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारतवर्ष में गाँवों का महत्त्व बतलाइये और लिखिए कि गाँव वर्तमान समय में इतने महत्त्वपूर्ण क्यों हो रहे हैं।

२—हिन्दोस्तान के गाँवों का वर्तमान गिरी हुई दशा के मुख्य कारण क्या हैं? विस्तार पूर्वक लिखिये।

३—"ग्राम-सुधार" कार्य से आप क्या समझते हैं? आजकल यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण क्यों बन गया है?

४—गाँवों की मुख्य समस्यायें क्या हैं? संक्षेप में लिखिये।

५—यदि गाँवों में पुरुषार्थी, बुद्धिमान और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति न रहें तो क्या हानि होगी?

पन्द्रहवाँ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

वास्तविक बात तो यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी बन गये हैं कि उनको, चाहें कितना कहा जावे, यह विश्वास ही नहीं होता कि उनकी दशा में सुधार हो सकता है। यही कारण है कि जब उनसे किसी नवीन सुधार को स्वीकार करने के लिये कहा जाता है तो वे इच्छापूर्वक उसे कभी स्वीकार नहीं करते। यदि ग्रामीण चेचक का टीका लगवाता है तो इस कारण नहीं कि उसका विश्वास है कि वह लाभदायक है,

सरकारी कर्मचारियों के भय से अथवा सरकार को प्रसन्न करने के लिए वह ऐसा करता है। सरकार किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए कानून बनाती है, परन्तु वह कानूनों का बहुत कम उपयोग करता है। आज कल ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural up'ift) का ज़ोर है। किसी किसी गाँव में यह दिखलाई पड़ता है कि मानो किसानों ने सफाई, घरों में हवा और रोशनी तथा अन्य आवश्यक सुधारों को अपना लिया है; किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि यह सब सरकारी अफसरों के भय से अथवा उनको प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यदि सरकारी कर्मचारी अथवा ज़िलाधीश उस गाँव की ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं तो थोड़े ही दिनों में गाँव पुरानी दशा को पहुँच जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्राम-वासियों के हृदय में अपनी तथा अपने गाँव की दशा सुधारने की तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होती। जो कुछ भी वे करते हैं बाहरी दबाव के कारण करते हैं।

प्रश्न यह है कि ग्रामवासी इतना अधिक निराशावादी क्यों है? क्यों वह अपने सुख, स्वास्थ्य, तथा समृद्धि के प्रति इतना उदासीन है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें ग्रामवासियों की वास्तविक स्थिति को समझना होगा। वे शताब्दियों से दुर्भिक्ष और रोगों के शिकार होते चले आ रहे हैं। प्रकृति ऐसी चंचल और अस्थिर है कि खेती का धंधा बिल्कुल अनिश्चित बन गया है। किसान चाहे जितनी मेहनत करे चाहे जितनी सावधानी से खेत को जोते बोवे, परन्तु वर्षा के कम होने से, अथवा अत्यधिक वर्षा होने से, टिड्डियों तथा अन्य फसलों के रोगों से, ओलों और तुषार से, तथा अन्य प्राकृतिक परिवर्तनों से उसकी खेती नष्ट हो सकती है। किसान इस प्राकृतिक आक्रमण से अपनी फसल की रक्षा करने में असमर्थ रहता है। यही नहीं शताब्दियों से वह और उसके पशु भयंकर रोगों के शिकार होते आ रहे हैं। जहाँ पशुओं की बीमारी फैली कि लाखों की संख्या में पशु मरने लगते हैं और यही दशा मनुष्यों की होती है।

यही नहीं, किसान भयंकर कर्ज़े के बोझ से इतना दबा रहता है कि वह अपने खेत में जो कुछ पैदा करता है उसका बहुत बड़ा हिस्सा महाजन के पास चला जाता है। बेचारे गरीब किसान के पास तो सिर्फ़ ९ या १० महीने

के खाने का अनाज भरा रह जाता है। इन परिस्थितियों के कारण ग्रामवासी
नितान्त निराशावादी तथा भाग्यवादी बन गया।

यही कारण है कि ग्रामवासियों के जीवन का सिद्धान्त यह बन गया है
'वर्तमान को देखो भविष्य की चिन्ता न करो'। क्योंकि भविष्य में क्या होगा
यह कोई नहीं जानता। एक कारण और भी है जो किसान को अपने धंधे की
उन्नति करने से रोकता है। वह है उसका ऋणी होना। भारतीय किसान इस
बुरी तरह ऋण के बोझ से दबा हुआ है कि यदि वह वैज्ञानिक ढंग से खेती
करके अपनी भूमि की पैदावार बढ़ाता है तो उसे कुछ लाभ नहीं होता।
जितनी अधिक पैदावार होती है वह महाजन के पास जाती है। किसान को
तो वर्ष में केवल आठ महीने का भोजन मिलता है। ऐसी दशा में वह खेती
के आवश्यक सुधारों को क्यों अपनावे?

ग्रामवासियों को भाग्यवादी से पुरुषार्थवादी, और निराशावादी से
आशावादी कैसे बनाया जावे? इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जब तक
ग्रामवासी यह विश्वास नहीं करने लगते कि उनकी गिरी हुए दशा में
सुधार होना सम्भव है और अपनी दशा को सुधारने के लिए उनमें उत्कट
लालसा उत्पन्न नहीं होती, तब तक गाँवों का सुधार होना असम्भव है।
गाँवों का सुधार स्वयं ग्राम वासियों के द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा
हो ही नहीं सकता। यदि सरकार अथवा और कोई संस्था किसी गाँव में
नालियाँ, सड़कें, तथा अन्य आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध करदे तो थोड़े दिनों
में उनका निशान भी नहीं रहेगा। नालियों और सड़कों की देख भाल,
सफाई और मरम्मत कौन करेगा? गाँव वाले तो उन्हें चाहते नहीं थे, वे
तो उन्हें दान स्वरूप मिली हैं। जिस वस्तु के लिए हम परिश्रम करते हैं
अथवा धन व्यय करते हैं, उसका ठीक उपयोग भी करते हैं, और
उसकी देख भाल भी करते हैं। अतएव सरकार तथा ग्राम सुधार
कार्य करने वाली अन्य संस्थाओं का कार्य केवल इतना ही होना चाहिए कि
वे अनुसंधान करें, ग्राम समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता
है, इसका अध्ययन करें, और उसके अनुसार योजना बना कर गाँव वालों
को बतावें।

यह तो हुआ काम करने का ढग, परन्तु किसानों के भाग्यवादी दृष्टिकोण को कैसे बदला जावे ? इसके लिए लगातार प्रचार तथा शिक्षा की आवश्यकता होगी। शिक्षा तथा प्रचार के द्वारा ही उनका दृष्टिकोण बदला जा सकता है। जब ग्रामवासियों का दृष्टिकोण बदल जावेगा तभी उनमें अपनी वर्तमान दयनीय दशा के विरुद्ध असतोष तथा घृणा उत्पन्न होगी। जिस दिन ग्राम वासियों में अपनी गिरी हुई दशा के विरुद्ध असतोष उत्पन्न हो जावेगा और वे भाग्यवादी नहीं रहेंगे, उसी दिन से ग्रामों की दशा स्वय सुधरने लगेगी।

आज तो भारतीय किसान घोर भाग्यवादी बन गया है। यदि खेत की फसल नष्ट हो जाती है, बैल मर जाता है, कर्जे में जमीन जायदाद बिक जाती है या बीमारी में उसके परिवार का कोई व्यक्ति मर जाता है तो वह 'भाग्य का दोष' कह कर चुप हो जाता है। उस विपत्ति को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। बाप-दादों से चला आने वाला पैतृक कर्जा, जमींदार, पुलीस, महाजन, अादलतों और तहसीलों के कर्मचारियों का अत्याचार, और शोषण, निर्धनता, बीमारी, अशिक्षा, और गरीबी ने उसे इतना निराशावादी बना दिया है कि वह यह स्वप्न मे भी नहीं सोचता कि उसकी दयनीय स्थिति में सुधार हो सकता है। जब ग्राम सुधार कार्यकर्ता उससे कहता है कि यदि वह कार्यकर्ता की बातों पर ध्यान दे तो उसकी दशा सुधर सकती है तो ग्रामीण सुन तो लेता है किन्तु विश्वास नहीं करता। और जब तक ग्रामीण का यह निराशावादी दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कोई स्थायी सुधार नहीं हो सकता।

अस्तु ज़रूरत इस बात की है कि उसके दिल में अपनी इस दयनीय अवस्था के विरुद्ध घृणा और घोर असंतोष उत्पन्न किया जावे। वह सोचने लगे कि मैं इस बुरी दशा में नहीं रहूँगा तब फिर उसे बतलाया जावे कि वह अपनी दशा किस प्रकार सुधार सकता है। तभी ग्रामीण नई बातों को स्वीकार करेगा।

अतएव जब तक किसान के हृदय में अपनी दयनीय दशा के विरुद्ध तीव्र असतोष उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक न तो उसका निराशावादी

दृष्टिकोण ही दूर होगा और न वह अपनी दशा को सुधारने की चेष्टा ही करेगा।

आज तो वह "मृत्यु का सतोष" लिए हुए जी रहा है। जो लोग भी गाँवों की दशा को सुधारना चाहते हैं उन्हें इसके विरुद्ध ग्रामीण में "असंतोष" की भावना भरना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसान को जब उसके स्वास्थ्य और खेती की उन्नति के लिए कोई भलाई की बात बतलाई जाती है तो वह उसको अपनी इच्छा से कभी नहीं मानता। इसका कारण क्या है?

२—किसान इतना अधिक निराशावादी क्यों बन गया? इसके कारण बतलाइये।

३—गाँव वालों की दशा को सुधारने में उनका निराशावादी और भाग्यवादी होना क्यों बाधक है?

४—गाँव वालों की दशा में सुधार करने के लिए उनमें अपनी वर्तमान गिरी हुई दशा के प्रति असंतोष उत्पन्न करने, और उन्हें पुरुषार्थवादी बनाने की जरूरत क्यों है?

५—खेती की सफलता भाग्य पर निर्भर है। इस कथन की आलोचना कीजिये।

सोलहवाँ अध्याय

गाँवों की सफाई (Sanitation of Village)

साधारणतः हम लोगों की यह धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों में मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होती है। क्योंकि मनुष्यों को खुली हुई हवा और सूर्य का प्रकाश खूब मिलता है। किन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। प्लेग, हैज़ा, हुकवार्म,

काला आजार, चेचक तथा क्षय रोग गाँवों में घर बनाये हुए हैं। इन भयंकर रोगों के अलावा वर्षा के बाद गाँवों में सर्वत्र जूड़ी बुखार का भयंकर प्रकोप होता है। बंगाल और आसाम में तो मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। धान की फसल खड़ी रहती है किन्तु काटने वाले नहीं मिलते। इसका कारण है गाँवों की गंदगी।

गाँवों में सर्वत्र गंदगी का साम्राज्य होता है। गाँवों के समीप जाइये; दुर्गन्ध, मक्खियों, धूल और कूड़े की बहुतायत पाइयेगा। गाँव के समीप ही छोटे छोटे ताल और पोखरे होते हैं जिनमें गंदा पानी सड़ा करता है। अनेक रोगों के कीटाणु यहीं जन्म लेते हैं। घरों में नालियाँ या नाबदान नहीं होते जिसके कारण घरों का पानी गलियों में बहता रहता है। गाँव की गलियाँ कच्ची होती हैं वे कभी साफ नहीं होतीं, उन पर धूल और कूड़ा जमा रहता है। बरसात में ये गलियाँ दलदल बन जाती हैं। किसानों की स्त्रियाँ घरों को साफ रखती हैं किन्तु गली में कोई सफाई नहीं करता। अधिकतर गाँवों के घरों में शौचस्थान नहीं होते, स्त्री-पुरुष बाहर खेतों और मैदानों में शौच को जाते हैं। गाँव की आबादी के चारों ओर मैदान, खेत जंगल तथा तालाब ही गाँव वालों के शौचस्थान होते हैं। इससे गाँव में गंदगी फैलती है तथा वायु अशुद्ध होती है। गाँव के अन्दर ही खाद के ढेर लगे रहते हैं जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। घरों में काफी हवा और रोशनी आने का कोई प्रबन्ध नहीं होता और जिन कोठों में मनुष्य रहते हैं उनमें ही पशुओं को रक्खा जाता है। इस कारण घर भी गन्दे रहते हैं। इन सब कारणों से गाँव में बहुत गंदगी रहती है और उसी के कारण पशु और मनुष्यों की बीमारियाँ फैलती हैं। अब हम प्रत्येक गंदगी के कारण पर विचार करते हैं।

ताल व पोखरे (Village pond)

ग्रामवासी लोग अपने मकान कच्ची मिट्टी के बनाते हैं और प्रति वर्ष बरसात बीत जाने पर उन्हें अपने मकानों की मरम्मत करनी पड़ती है। अतएव उन्हें मिट्टी की बहुत आवश्यकता होती है। दूर न जाकर गाँव के लोग आबादी के पास ही भूमि को खोदकर मिट्टी निकालते हैं जिससे उन्हें

मिट्टी ढोना न पड़े। धीरे धीरे वह स्थान तालाब या पोखरा का रूप धारण कर लेता है। गाँव जितना ही पुराना होता जाता है उतने ही अधिक ताल और पोखरे बनते जाते हैं, क्योंकि गाँव वालों को मिट्टी की हर साल आवश्यकता पड़ती है।

इस ताल व पोखरे में बरसात का पानी भर जाता है। वर्षा के दिनों में गाँव की गंदगी को साथ लेकर पानी इस ताल या पोखरे में आता है और वहीं सड़ता रहता है। गाँव वाले मैदान में, अथवा ताल के किनारे शौच जाते हैं, और अधिकतर ताल के पानी से ही बदन की सफाई करते हैं। इस कारण ताल का पानी और भी गंदा और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। सड़े हुए और गंदे पानी में मलेरिया के मच्छड़ तथा अन्य रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, और उनसे गाँवों में रोग फैलते हैं। इन्हीं तालों और पोखरों का पानी गाय और बैल पीते हैं। भला इतने गंदे पानी को पीकर पशु बीमारी से कैसे बच सकते हैं? पशुओं की बीमारी फैलने का यह गंदा पानी एक मुख्य कारण है। गाँव का स्त्रियाँ इन्हीं तालों में अपने कपड़े धोती हैं और कई कोई स्त्री-पुरुष तो इनमें नहाते भी हैं। ताल के पास रहने वाले लोग उसी में कूड़ा भी डाल देते हैं। वह सड़ता रहता है। इन सब कारणों से यह ताल और पोखरे निरंतर गाँव को दुर्गन्ध और गंदी वायु देते रहते हैं। यह तो प्रत्येक समझदार मनुष्य जानता है कि इन गंदे ताल व पोखरों का प्रभाव गाँव वालों के स्वास्थ्य के लिए कैसा घातक सिद्ध होता है।

गाँव के ताल तथा पोखरे एक बहुत बड़ी समस्या है। गाँव के चारों ओर ये ताल बन जाते हैं, इसका फल यह होता है कि गाँव के बालकों को खेलने के लिए, तथा खाद के गड्ढे बनाने के लिए और गाँव को बढ़ाने के लिए जमीन ही नहीं रहती। आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के समीपवर्ती ताल तथा पोखरे भर दिये जावें, और गाँव से यथेष्ट दूरी पर तालाब खोदा जावे। गाँव के समीपवर्ती तालों के भरने के लिए नये तालों की मिट्टी काम में लाई जा सकती है। तालाबों का उपयोग करने का एक ढंग यह भी है कि उसके चारों ओर एक मेड़ बनादी जावे जिससे गाँव का पानी उसमें न जावे। जब ताल बिलकुल सूख जावे तब

लैवल (चौरस) कर दिया जावे और वह बालकों के लिए खेल का मैदान बना दिया जावे। यदि गाँव में चकबंदी (Consolidation of land holdings) करदी जावे तो गाँव के आस पास की भूमि खाद के गड्ढों, शौच स्थानों तथा खेल के मैदानों के लिए बचाई जा सकती है; ताल कुछ दूरी पर खोदा जा सकता है। एक बात और ध्यान में रखने की है, गाँव का पानी ताल में न जाने दिया जावे। गाँव की ओर एक मेड़ बना दी जावे, केवल जंगल का पानी ही ताल में जावे। गाँव से बहा हुआ पानी बहुत गंदा हो जाता है। गाँव का पानी खेतों की ओर बह जावे तो अच्छा है। मकानों की मरम्मत करने के लिए गाँव वाले दूर से मिट्टी लावें, गाँव के पास से न खोदें।

खाद के गड्ढे (Manure Pits)

अभी तक गाँव वाले जो कुछ भी खाद बनाते हैं, वह ढेर लगाकर बनाते हैं, इससे खाद भी अच्छी तैयार नहीं होती और गाँव में गंदगी बढ़ती है। इन्हीं खाद के ढेरों के कारण गाँव में मक्खियाँ बढ़ जाती हैं और हवा से कूड़ा उड़ उड़ कर पानी, भोजन, तथा आँखों में पड़ता है। गाँव को साफ रखने के लिए यह आवश्यक है कि खाद को गड्ढों (Manure pits) में रक्खा जावे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे खोदे, और जब तक एक में खाद तैयार होवे दूसरे में गोबर तथा कूड़ा कचरा डाला जावे। गड्ढे के भर जाने पर उसे मिट्टी से ढक दिया जावे गड्ढा पाँच या ६ फुट गहरा होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे एक तो गाँव में कूड़े के ढेर नहीं रहेंगे, और दूसरे अभी जो बहुत सी खाद व्यर्थ फिक जाती है वह उपयोग में आजावेगी। अच्छी खाद से अच्छी फसल तैयार हो सकेगी। किन्तु एक कठिनाई यह है कि गाँव के पास गड्ढे खोदने को जगह नहीं मिलती, और बहुत दूर खोदने पर घर का गोबर कूड़ा तथा करकट उसमें सारा का सारा डाला नहीं जा सकता।

शौचस्थान (Latrines)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँव के घरों में शौचस्थान नहीं इस कारण गाँव के चारों ओर गंदगी रहती है। गाँव वासी अधिकतर

नगे पैर रहते है, अत. मल उनके पैरो में लगता है। उससे एक प्रकार का (Hook-worm) हुकवर्म रोग उत्पन्न होता है। जब मलसूख जाता है तो वह हवा के साथ उड़कर गाँव के कुओ के पानी, भोजन, तथा पशुओं के चारे को दूषित करता है और मनुष्य की आँखों में पड़ता है। गाँव वालों का यह विचार भ्रमपूर्ण है कि खेतों में शौच जाने से भूमि की उत्पादक शक्ति बढती है। जब तक खाद सड़ कर तैयार न हो जावे वह भूमि की उत्पादक शक्ति नही बढा सकती। जिस प्रकार कच्चा भोजन नहीं पचता उसी प्रकार कच्ची खाद से कोई लाभ नहीं होता, वरन उसमे दीमक उत्पन्न होती है। खाद को गड्हों में सड़ा कर ही खेतों में डालना चाहिए। प्रयत्न तो यह करना चाहिए की प्रत्येक घर में एक शौचस्थान हो और कुछ सार्वजनिक शौचगृह हो जिनका उपयोग अजनबी तथा गाँव में बाहर से आने वाले व्यक्ति कर सके। परन्तु अभी यह सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में तीन प्रकार के शौचस्थान गाँवों के लिए उपयोगी बतलाये गये हैं। एक तो खाद के गड्हे को ही शौचस्थान की भाँति काम में लाया जावे। किन्तु किसान मल की खाद को स्वय छूना नहीं चाहता, इस कारण इन गड्हो का उपयोग नहीं किया जा सकता। दूसरे प्रकार का शौचस्थान बोर लैट्रिन (Bore Latrine) (भूमि में सूराख करके शौचस्थान बनाना) है। किन्तु स्वास्थ्य-विभाग का कहना है कि इससे पानी दूषित हो सकता है। तीसरे प्रकार का शौचस्थान साधारण गड्हे के रूप में बनाया जाता है, किन्तु उसमें एक प्रकार की हरी मक्खी उत्पन्न हो जाती है। इन गड्हों के चारो तरफ अरहर की एक बाढ खड़ी करके दो तख़्ते उस पर रखने से एक अच्छा खासा शौचस्थान तैयार हो सकता है। यदि शौचस्थान तैयार करने में कुछ कठिनाइयाँ हों तो इस बात का खूब प्रचार करना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति मैदान में शौच जाते समय अपने साथ खुर्पी अवश्य ले जावे और एक फुट का छोटा सा गड्हा करके उसमें शौच करके मल को मिट्टी से दबा दे। इससे गाँवों में हुकवर्म रोग नहीं होगा और गाँव गदगी से बच जावेगा।

नाबदान तथा नालियों की समस्या (Drainage)

गाँव की यह समस्या भी महत्वपूर्ण है। घरों में रसोई घर, बर्तन माँजने, तथा नहाने-धोने में जो पानी काम में लाया जाता है वह घरों में अथवा

गलियों में गंदगी फैलाता है। जहाँ देखिये वहाँ घरों के बाहर गलियों में काली काली कीचड़ दिखलाई देती है। इसका फल यह होता कि उससे मच्छर उत्पन्न होते हैं और गंदगी बढ़ती है। कुओं के पास भी पानी बहुत गिरता है, किन्तु उसके निकास का कोई प्रबन्ध नहीं होता। फल यह होता है कि कुयें के पास दलदल तथा कीचड़ हो जाती है और वहाँ से पानी बहकर गलियों में जाता है।

होना तो यह चाहिए कि कुओं के पास ही औरतों के नहाने तथा कपड़े धोने के लिए एक पर्दे की जगह बना दी जावे। पुरुषों के लिए खुली जगह भी उपयुक्त हो सकती है। इससे लाभ यह होगा कि घरों में बहुत कम पानी जावेगा और वहाँ गन्दगी कम होगी। अतएव वहाँ नाली बनाने की आवश्यकता ही न होगी। कुयें की मन (जगत) को ऊँचा बनाया जाना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि वह पटा हो जिससे पत्ती और कूड़ा कुयें में न जा सके। कुयें के चारों ओर ढलवाँ सीमेंट की नाली बनवा दी जावे जिससे कि जो पानी गिरे वह कुयें के पास ही न भरे। कुयें के पास ही पानी गिरने से कुये का पानी दूषित हो जाता है। कुयें की नाली और स्नान तथा कपड़े धोने के स्थानों की नालियाँ एक बड़ी नाली में मिला दी जावें। यह नाली भी कंकरीट की बनाई जावे या कुयें का पानी नाली द्वारा गाँव के बाहर ले जाया जावे या दूसरा उपाय यह हो सकता है कि कुयें के पास ही एक बगीचा लगाई जावे और उसके पेड़ों और पौधों की सिंचाई के लिये कुये के पानी का उपयोग कर लिया जावे। इन वाटिकाओं में फल और फूल के पेड़ लगाये जावें। इनसे यह लाभ होगा कि गाँव का सौंदर्य बढ़ेगा और गन्दगी भी नहीं होगी। जिन घरों में बहुत जल काम में लाया जाता हो वहाँ भी गृह-वाटिका में, अथवा तरकारी की क्यारी में उस पानी का उपयोग किया जा सकता है। संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में इस समस्या को हल करने के लिए सोकेज पिट (Soakage pit) बनवाये गये हैं, किन्तु जब तक सोकेज पिट गहरे और बहुत बड़े तथा अच्छी तरह बनाये न जावें उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। और कुछ प्रबन्ध न होने से वे ही अच्छे हैं। वाटिकाओं द्वारा इस समस्या को अधिक सफतापूर्वक हल किया जा है।

घरों में हवा और रोशनी का प्रबन्ध

गाँव की स्त्रियाँ अपने घरों को गोबर तथा मिट्टी से लोप-पोत कर साफ रखती हैं और इस दृष्टि से गाँव के मकानों में बहुत सफाई रहती है। जहाँ गाँव बहुत गंदा होता है वहाँ घरों में यथेष्ट सफाई मिलती है। यह स्त्रियों की मेहनत का फल है। घरों में जो भी वस्तु होगी वह साफ सुथरी होगी। पीतल तथा काँसे के बर्तन तो इतने साफ रहते हैं कि उनकी चमक बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। किन्तु ग्रामीण अपने कोठों और कोठरियों में हवा तथा रोशनी का काफी प्रबन्ध नहीं करता। उसके मकान में खिड़की अथवा रोशनदान होते ही नहीं। ग्रामीण खिड़की अथवा रोशनदान चोरों के भय से नहीं लगाते। परन्तु हवा और रोशनी जीवन और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, अतएव रोशनदान अवश्य निकालने चाहिये। यदि छत के समीप ऊँचे पर रोशनदान लगाया जावे और उसमें लोहे की छड़ें हों तो चोरों का भी इतना भय नहीं रहेगा। यदि मकान एक दूसरे से भिड़े हों तो छत में रोशनदान तथा हवादान लगाना चाहिये। भविष्य में एक दूसरे मकान से सटा कर मकान न बनाने के लिये गाँव वालों को कहना चाहिये।

बहुत से ग्रामीण घरों में स्त्रियाँ सोने के कोठे में ही एक किनारे भोजन बनाती हैं, जिससे धुआँ घुटता है और सोने का कमरा गंदा हो जाता है। अतएव उन्हें यह बतलाया जाना चाहिये कि रसोई आँगन के एक किनारे पर सोने के कोठे से दूर होना चाहिये और रसोई घर में धुआँ निकलने का मार्ग होना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे। धुयें से रसोई घर काला नहीं होगा, और घर की स्त्रियों की आँखें खराब होने से बच जावेंगी।

बहुत से किसान मकान में रहने के स्थान पर ही पशुओं को बाँध देते हैं। इससे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और गंदगी बढ़ती है। मकान के साथ एक छोटी सी पशुशाला होनी चाहिये जहाँ बैल बाँधे जावें यदि पृथक् पशुशाला का प्रबन्ध न हो सके तो भी मकान में पशुओं को रहने के स्थान से दूर बाँधना चाहिए।

गाँव की सड़कें (Village Roads)

गाँव की सड़कें कच्ची होती हैं। दोनों ओर के खेतों के मालिक धीरे धीरे सड़क को खोद कर खेतों में मिलाने का प्रयत्न करते हैं, इससे सड़क पतली और टेढ़ी हो जाती है। यही नहीं किसान अपने खेत की मेंड़ को बनाने के लिये सड़क में से मिट्टी खोद लेते हैं, जिससे सड़क में गड्ढे बन जाते हैं। नहर तथा कुयें का पानी जब सड़क के पार ले जाया जाता है तो वह सड़क पर ही बहता रहता है। अधिकतर ये कच्ची सड़कें आस पास के खेतों से नीची होती हैं। इस कारण बरसात में इनमें पानी भर जाता है। सच तो यह है कि बरसात के दिनो में बैलगाड़ी का इन सड़कों पर चल सकना असम्भव हो जाता है। सड़क खेतो से ऊँची होनी चाहिये जिससे वर्षा का पानी खेतो में चला जावे। गाँव की पचायत गाँव वालो को सड़क में से मिट्टी खोदने के लिये मना ही करदे, और प्रति वर्ष वर्षा के उपरान्त गाँव वाले मिल कर स्वयं सड़क की मरम्मत करलें तो गाँव वालों को अपनी पैदावार मण्डियो में ले जाने, तथा आने जाने में बहुत सुविधा हो जावे। सरकार और जिला बोर्ड यह नियम बनादे कि जो गाँव सड़क बनाने के लिये मज़दूरी मुफ्त देगा, उसको कंकड अथवा अन्य सामान पक्की सड़क बनाने के लिये मुफ्त दिया जावेगा। इस प्रकार बहुत थोड़े व्यय से और गाँव वालों के परिश्रम से गाँवों में पक्की सड़कें बन सकती है। हाँ, वहाँ वालो को उन सड़कों की प्रति वर्ष मरम्मत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। किन्तु यह कार्य तभी हो सकेगा जबकि गाँव वालों में अपने गाँव की दशा सुधारने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो जावेगी।

गाँव में कुशल दाइयों की समस्या

गाँवों में जो दाइयाँ हैं वे न तो गर्भवती स्त्रियो की ठीक से देखभाल ही करना जानती हैं और न बच्चा जनाने का काम ही वे ठीक तरह से कर सकती हैं। गंदी तो वे इतनी होती हैं कि उनके छूने से ही माँ और बच्चे को रोग हो जाते हैं। सच तो यह है कि गाँवों में बहुत बड़ी संख्या में जो गर्भवती मातायें और बच्चे मरते हैं उसका कारण एक मात्र कुशल और साफ दाइयों का न होना है।

जब तक हर एक गाँव में या दो चार गाँवों के बीच एक शिक्षित कुशल
और ट्रेंड दाई नहीं होगी तब तक यह बच्चों और माताओं की मृत्यु रोकी
नहीं जा सकती। ये दाइयाँ माताओं और बच्चों के जीवन से खिलवाड़
करती हैं। अतएव सरकार डिस्ट्रिक बोर्ड तथा अन्य सभी संस्थाओं का यह
कर्तव्य है कि यह किसी प्रकार रोका जावे।

प्रान्तीय सरकारों को प्रत्येक ज़िले में दाइयों के ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करने
चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को तथा अन्य संस्थाओं को गाँवों की दाइयों
को वजीफा देकर वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहिए।

जब काफी शिक्षित दाइयाँ तैयार हो जावें तब सरकार को एक कानून
बना देना चाहिए कि बिना लायसैंस लिए हुए कोई भी दाई का काम नहीं
कर सकती और लाइसैंस केवल उन्हीं को दिया जावे कि जो ट्रेंड हैं और
इस कार्य में कुशल हैं।

जब तक ऐसा नहीं किया जावेगा तब तक बच्चों और माताओं के जीवन
की रक्षा नहीं की जा सकती।

केवल बच्चा जनाने के लिए कुशल दाइयों का प्रबन्ध कर देने से ही
काम नहीं चलेगा। गाँव की स्त्रियों को बच्चों के ठीक प्रकार से लालन-पालन
करने की शिक्षा भी देना आवश्यक है। माताओं की भूल से बच्चों का
स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इस लिए इन दाइयों का यह कर्त्तव्य भी होगा
कि वे बच्चों के लालन-पालन की शिक्षा स्वयं प्राप्त करें और माताओं
को दें।

प्रति वर्ष गाँव में बच्चों के स्वास्थ्य का प्रदर्शन (Baby Show) किया
जावे और स्वस्थ बच्चों की माँ को पारितोषिक दिया जावे। इसके साथ ही
बच्चों का लालन-पालन कैसे करना चाहिए इसकी जानकारी कराई जावे।
यह प्रदर्शन कई दिन तक होना चाहिए।

गाँव में सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा की योजना

भारतवर्ष में रोके जा सकने वाले रोगों के कारण जो भयंकर हानि हो
रही है वह सहकारी स्वास्थ्य समितियाँ स्थापित करके रोकी जा सकती है

हर एक गाँव में एक स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। जहाँ तक हो सके हर एक गाँव वाले को उसके लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जाय।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रति वर्ष सभा वार्षिक प्रोग्राम निश्चित करे और दो मंत्री तथा पंच निर्वाचित कर दे। एक मन्त्री गाँव की सफाई की देख भाल करे और दूसरा मन्त्री गाँव में चिकित्सा और दवा का प्रबध करे।

गाँव के पास के सब गड्ढों को पाट दिया जाय, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक कर दिया जाय। वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ पानी रुक जाय वहाँ मिट्टी का तेल छुड़वाया जाय। इससे मलेरिया बुखार गाँव में नहीं फैल सकता। क्योंकि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुए पानी में ही, उत्पन्न होता है।

पास के चार पाँच गाँवों की स्वास्थ्य रक्षक समितियाँ मिलकर एक बड़ी समिति बनाले। हर एक ग्राम-समिति के प्रतिनिधि बड़ी समिति के सदस्य रहेंगे। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा योग्य नर्स को नौकर रक्खे। इनको निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिए। नर्स का काम यह होगा कि वह बड़ी समिति से सम्बधित गाँवों मे बच्चा जनाने का काम करे। बड़ी समिति का चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गाँवों में जाकर वहाँ जो भी बीमार हों उन्हें दवा दे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा। वरना रोगों से बचने का उपाय बताना भी उसका कर्त्तव्य होगा। मास में एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गर्भवती स्त्रियों का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिए इसकी शिक्षा दे।

प्रत्येक सदस्य समिति को मासिक चन्दा देगा। जो सदस्य कि चन्दा देने में असमर्थ हो उनसे समिति चन्दा न लेकर शारीरिक परिश्रम करवाले। इस प्रकार सब ग्रामवासी यदि चाहें तो स्वास्थ्य-रक्षक समिति के सदस्य बन सकते हैं। समिति अपने सदस्यों के लिए औषधियाँ भी रक्खे।

यह बड़ी समितियाँ मिलकर जिला स्वास्थ्य रक्षक समिति का संगठन करें। ज़िला समिति का कार्य केवल ग्राम समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, ज़िले के स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों से लिखापढ़ी करके जब कभी उस ज़िले के किसी भाग में बीमारी फैल जावे उसको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा।

प्रान्तीय सरकार, जिला बोर्ड इन समितियों को आर्थिक सहायता देकर इस कार्य को आगे बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार यदि संगठन हो तो ग्रामीण अपने प्रयत्न के द्वारा ही गाँव में सफ़ाई और स्वास्थ्य रक्षा की समस्या को हल कर सकते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव इतने गंदे क्यों होते हैं? कारण बतलाइये।

२—गाँव के समीप ताल और पोखरों का गाँव वालों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है? विस्तार पूर्वक लिखिए।

३—गाँव के तालों और पोखरों से गाँव वालों के स्वास्थ्य पर जो बहुत बुरा असर पड़ता है उससे बचने का रास्ता क्या है?

४—किसान आजकल जो गाँव के किनारे ढेर लगाकर खाद बनाते हैं उसको तुम कैसा समझते हो? उसके हानि लाभ लिखिये।

५—खाद को तैयार करने का अच्छा और स्वास्थ्य बढ़ाने वाला ढँग कौन सा है?

६—गाँवों में रहने वाले खुले मैदानों, खेतों और तालाबों के किनारे शौच जाते हैं इससे क्या हानियाँ होती हैं?

७—गाँवों के लिए किस प्रकार के शौचस्थान उपयुक्त होंगे? इन शौच-स्थानों से गाँव के रहने वालों को क्या लाभ होगा? संक्षेप में लिखिये।

८—कुओं की मन (जगत) न होने से क्या हानि होती है? कुओं के पास वाटिका अथवा सोकेज पिट बनाने से क्या लाभ होगा?

९—घरों के फिजूल पानी के बहाने से जो गंदगी उत्पन्न होती है उसको दूर करने का क्या उपाय है?

१०—घरों में रोशनदान और धुआँ निकालने का मार्ग क्यों ज़रूरी है? उससे क्या लाभ होगा?

१—गाँवों में कच्ची सड़कों की जो दशा है उसको लिखिये और बतलाइये न सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

सत्रहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव है फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या, वहाँ तो निरक्षरता का अखड साम्राज्य है। बड़े बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधायें हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालाये देखने को मि ेगी। इसका फल यह हुआ है कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त ब्रिटिश भारत में दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालाये हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त ब्रिटिश भारत के ग्रामो में एक लाख से अधिक पाठ-शालायें नहीं हैं। अब प्रान्तीय सरकारें ग्राम शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालाये स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँवों मे है वहाँ की शिक्षा बिलकुल शहरातू है। जो शिक्षा क्रम शहरों में है वही गाँवों मे चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक हो गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य-पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति, अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव वालों को कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है जिसको अपनाया जावे। इस शहरातू शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा, और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि शिक्षित गाँव का लड़का और उसका नुक. करने के कारण समस्त गाँव के लड़के सभ्यता, वेशभूषा, तथा

रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श मानते और उनकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें और उनकी उन्नति करें, वरन्, उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं, और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक स्कूलों की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्यक्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, तथा विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिए। जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे, और उसके कारण उनकी सहानुभूति गाँवों के प्रति बढ़ जावेगी।

साधारण लिखाई पढ़ाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त ग्राम्य पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिए। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिए जिस पर अच्छे ढग से खेती पाठशाला के लड़के स्वयं करें, और उन नई बातों का अनुभव प्राप्त करें जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला का सफाई के लिए एक आदर्श होना चाहिए। प्रतिदिन विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिए, साफ कैसे रहना चाहिए इस सम्बन्ध में उन्हें सब बातें जाननी चाहिए। पाठशाला में वे सब बातें बर्तनी चाहिए जो कि गाँव

११—गाँवों में कच्ची सड़कों की जो दशा है उसको लिखिये और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

सत्रहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव है फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या, वहाँ तो निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। बड़े बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधायें हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मिलेंगी। इसका फल यह हुआ है कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त ब्रिटिश भारत में दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालाये हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त ब्रिटिश भारत के ग्रामों में एक लाख से अधिक पाठ-शालायें नहीं हैं। अब प्रान्तीय सरकारें ग्राम शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालाये स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँवों में है वहाँ की शिक्षा बिलकुल शहरातू है। जो शिक्षा क्रम शहरों में है वही गाँवों में चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक ही गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति, अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है जिसको अपनाया जावे। इस शहरातू शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा, और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि शिक्षित गाँव का लड़का और उसका अनुकरण करने के कारण समस्त गाँव के लड़के सभ्यता, वेशभूषा, तथा

रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श मानते और उनकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें और उनकी उन्नति करे, वरन्, उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नक़ल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं, और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक स्कूलों की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्यक्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, तथा विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिए। जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे, और उसके कारण उनकी सहानुभूति गाँवों के प्रति बढ़ जावेगी।

साधारण लिखाई पढ़ाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त ग्राम्य पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिए। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिए जिस पर अच्छे ढंग से खेती पाठशाला के लड़के स्वयं करें, और उन नई बातों का अनुभव प्राप्त करे जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला का सफाई के लिए एक आदर्श होना चाहिए। प्रतिदिन विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिए, साफ कैसे रहना चाहिए इस सम्बन्ध में उन्हें सब बातें जाननी चाहिए। पाठशाला में वे सब बातें बर्तनी चाहिए जो कि गाँ-

११—गाँवों में कच्ची सड़कों की जो दशा है उसको लिखिये और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

सत्रहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव है फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या, वहाँ तो निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। बड़े बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधायें हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मिलेंगी। इसका फल यह हुआ है कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त ब्रिटिश भारत में दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालायें हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त ब्रिटिश भारत के ग्रामों में एक लाख से अधिक पाठशालायें नहीं हैं। अब प्रान्तीय सरकारें ग्राम शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालाये स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँवों में है वहाँ की शिक्षा बिलकुल शहराती है। जो शिक्षा कम शहरों में है वही गाँवों मे चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक हो गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति, अर्थात् सब कुछ वहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है जिसको अपनाया जावे। इस शहरातू शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमश: घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा, और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि शिक्षित गाँव का लड़का और उसका अनुसरण करने के कारण समस्त गाँव के लड़के सभ्यता, वेशभूषा, तथा

मानते श्रौर उनकी नकल करते
रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श
हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें
श्रौर उनकी उन्नति करे, वरन्, उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत
करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस
कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में
ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं, श्रौर ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण
उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा
हो, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक
स्कूलों की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम
पाठशालाओं का पाठ्यक्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया
जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के
अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, तथा
विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिए।
जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे श्रौर
वे उनकी श्रोर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से
एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में
जानकारी प्राप्त करेंगे, श्रौर उसके कारण उनकी सहानुभूति गाँवों के प्रति
बढ जावेगी।

साधारण लिखाई पढ़ाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त ग्राम्य पाठ-
शालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध
में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक
बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिए। पाठशाला का एक छोटा सा
फार्म होना चाहिए जिस पर अच्छे ढंग से खेती पाठशाला के लड़के स्वयं
करें, श्रौर उन नई बातों का अनुभव प्राप्त करें जिनको कृषि विभाग खेती
के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला का सफाई के लिए
एक आदर्श होना चाहिए। प्रतिदिन विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता का
निरीक्षण होना चाहिए, साफ कैसे रहना चाहिए इस सम्बन्ध में उन्हें सब
बातें जाननी चाहिए। पाठशाला में वे सब बातें बर्तनी चाहिए जो कि

११—गाँवों में कच्ची सड़कों की जो दशा है उसको लिखिये और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

सत्रहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव है फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या, वहाँ तो निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। बड़े बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधायें हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मि ेंगी। इसका फल यह हुआ है कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त ब्रिटिश भारत में दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालायें हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त ब्रिटिश भारत के ग्रामों में एक लाख से अधिक पाठ-शालायें नहीं हैं। अब प्रान्तीय सरकारें ग्राम शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालाये स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँवों मे है वहाँ की शिक्षा बिलकुल शहरात् है। जो शिक्षा क्रम शहरों में है वही गाँवों मे चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक हो गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति, अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है जिसको अपनाया जावे। इस शहरात् शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा, और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि शिक्षित गाँव का लड़का और उसका अनुसरण करने के कारण समस्त गाँव के लड़के सभ्यता, वेशभूषा, तथा

रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श मानते और उनकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें और उनकी उन्नति करें, वरन्, उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं, और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक स्कूलों की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्यक्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, तथा विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिए। जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे, और उसके कारण उनकी सहानुभूति गाँवों के प्रति बढ़ जावेगी।

साधारण लिखाई पढ़ाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त ग्राम्य पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिए। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिए जिस पर अच्छे ढंग से खेती पाठशाला के लड़के स्वयं करें, और उन नई बातों का अनुभव प्राप्त करें जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला का सफाई के लिए एक आदर्श होना चाहिए। प्रतिदिन विद्यार्थियों को शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिए, साफ कैसे रहना चाहिए इस सम्बन्ध में उन्हें सब बातें जाननी चाहिए। पाठशाला में वे सब बातें बर्तनी चाहिए जो कि

सफाई के लिए आवश्यक समझी जावे। ग्राम पाठशालाओं में किसी ... की अवश्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

प्रत्येक पाठशाला में एक बालचर ट्रूप (Scout troop) होना चाहिए जिससे कि बालक अच्छी आदतें सीखें और उनमें सेवा की भावना जाग्रत हो। किन्तु बालचर ट्रूप केवल दिखावे के लिए न हो। पाठशाला के विद्यार्थियों को वे खेल कि जिनका गाँव में प्रचार करना अभीष्ट है नियम के साथ खिलाये जावें।

यदि महात्मा गाँधी की वर्धा योजना के अनुसार पाठशालाओं में उद्योग-धन्धों के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे तो ग्राम पाठशालाओं को भी उस योजना में सम्मिलित करना चाहिये। यदि वर्धा की योजना स्वीकृत न भी हो तो भी ग्राम्य पाठशाला मे ग्रामीण उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध तो होना चाहिए। ग्राम्य पाठशाला की पढ़ाई का उद्देश्य गाँव के लड़कों को केवल साक्षर बना देना ही नहीं होना चाहिए, वरन् उनका उद्देश्य उनको साक्षर बनाने के अतिरिक्त अच्छे ग्रामीण और सफल कृषक बनाना होना चाहिए।

किन्तु एक बात ध्यान में रखने की है। बिना लड़कियों को शिक्षित बनाए गाँवों में भी शिक्षा का विस्तार नहीं हो सकता और न गाँवों का सुधार ही हो सकता है। आज कल ग्राम सुधार की बहुत चर्चा है, परन्तु ग्राम-सुधार कार्य में लगे हुए लोग यह भूल जाते हैं कि जो परिवर्तन वे गाँव तथा गाँव वालों के घरों में लाना चाहते हैं वे बिना गाँव की स्त्रियों की इच्छा के लाए ही नहीं जा सकते। जब तक गाँव की स्त्रियाँ उन परिवर्तनों को नहीं अपनातीं तब तक उनकी उपयोगिता को समझते हुए भी गाँव के पुरुष उनको स्वीकार ही नहीं कर सकते। इस कारण गाँव की लड़कियों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

गाँवों में लड़कों की ही शिक्षा की ओर जब किसी ने ध्यान नहीं दिया तो लड़कियों की शिक्षा के विषय में पूँछना ही क्या ? उसकी तो नितान्त अवहेलना की गई है। अब समय आ गया है कि लड़कियों की शिक्षा का ... समझा जावे और उस पर विशेष ध्यान दिया जावे।

लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की हो इस पर जहाँ तक गाँवों का सम्बन्ध है दो मत नहीं हो सकते। लड़कियों को साक्षर बनाने के अतिरिक्त उन्हें कुशल गृहस्थी बनाने के लिए जिन बातों की आवश्यकता है वे सभी बातें उन्हें सिखलाई जानी चाहिये। खाना बनाना, भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों के गुण तथा उनकी मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होगा इसका ज्ञान, सिलाई, घर के अन्य सब कार्य, हिसाब रखना, साधारण बीमारियों तथा छूत के रोगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी। चूहों, मच्छरों तथा मक्खियों से क्या हानि पहुँचती है इसका ज्ञान, कुछ उपयोगी और सदैव काम में आने वाले औषधियों का उपयोग, बच्चों का लालन पालन तथा घरों को सुन्दर बनाना। ये कुछ ऐसे विषय हैं जिन्हें बड़ी लड़कियों को सिखाने की आवश्यकता है।

परन्तु भारतवर्ष में केवल लड़के और लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध करने से गाँवों का शीघ्र ही सुधार न हो सकेगा। यदि हम चाहते हैं कि गाँवों में नवीन जीवन का प्रादुर्भाव शीघ्र ही हो तो हमें प्रौढों (adults) को भी शिक्षित बनाने का प्रबन्ध करना होगा। आजकल गाँवों में यदि कोई लड़का कुछ पढता भी है तो प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त वह सब भूल जाता है और पहले की ही भाँति निरक्षर बन जाता है। माता और पिता अशिक्षित होते हैं इस कारण वे लड़के और लड़कियों के लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध नहीं करते कि वे पढा लिखा भूल न जावें। शिक्षित माता-पिता के पुत्र और पुत्रियाँ पढ़ना लिखना भूल ही नहीं सकतीं। प्रौढों की शिक्षा ग्राम सुधार कार्य को शीघ्र सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढो की शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालाओं की योजना करनी होगी। स्त्री और पुरुषों की शिक्षा का अलग अलग प्रबन्ध करना होगा। यह कार्य गैर सरकारी कार्य कर्ताओं को जिनमें सेवा भाव हो उनको सौंपना चाहिए। गाँव की पचायत से उन्हें इस कार्य में सहायता मिल सकेगी। सरकारी शिक्षा समितियाँ (Cooperative Education Societies) स्थापित करके यह कार्य और भी अच्छी तरह से चलाया जा सकता है जैसा कि पजाब में हुआ है। स्त्री और पुरुषों के लिए अलग अलग समितियाँ स्थापित होनी चाहिए। गाँव के सेवा भावों वाले और पढ़े लिखे स्त्री-पुरुषों को इस कार्य में

अपना थोड़ा सा समय देने पर राजी किया जावे। तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो भी रात्रि पाठशाला का नाम हो वह समिति चन्दे के रूप में इकट्ठा करे चदा पैदावार के रूप में भी जमा किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियों को सहायता दे तो उनके द्वारा केवल प्रौढ़ों (adults) की ही शिक्षा का प्रबन्ध नहीं वरन् गाँव के लड़के लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ साथ गाँव वालों में अखबार तथा अन्य पुस्तकों को पढने की आदत भी डालनी चाहिए उसके लिए समिति पुस्तकालय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गाँव का लड़का यदि मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है तब तो कोई बात ही नहीं अन्यथा यह भय रहता है कि वह कहीं पढ़ना-लिखना भूल न जावे। इस भय को दूर करने, गाँव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने, और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा प्रचार के साथ साथ ग्राम्य पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि गाँवों के लिए साप्ताहिक समाचार पत्र निकाले जावें और ग्राम्य पुस्तकालयों के लिए ग्राम्य उपयोगी सरल पुस्तकें लिखवाई जावे। कुछ पुस्तके तो स्थायी रूप से प्रत्येक गाँव में रहें और अन्य पुस्तकों के पच्चीस पच्चीस पुस्तकों के सेट बनवा दिए जावें जो एक गाँव से दूसरे गाँव में घूमते रहें।

रेडियो के द्वारा भी गाँव में संसार तथा देश की हलचलों के विषय में जानकारी कराई जा सकती है और मनोरंजन के साथ साथ उनका ज्ञान वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य में बहुत उपयोग हो सकता है। जहाँ जलविद्युत् है वहाँ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिए। रेडियो प्रोग्राम भी गाँव के लिए उपयोगी हो ऐसा प्रबंध करना चाहिए।

किन्तु जहाँ ग्राम शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है वहाँ यह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गाँव में शिक्षा-प्रचार के लिए देश की ऐसी ग्राम

शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवों से सहानुभूति रखते हों और
गाँवों में जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हों। लड़कियों की शिक्षा की
समस्या भी तभी हल हो सकती है जब कि ग्राम-शिक्षकों की पत्नियों को ग्राम-
अध्यापिका बनने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा
दी जावे। इस काय के लिए बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता
होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किए निस्तार भी नहीं है।

शिक्षा योजना की सफलता के लिए यह भी ज़रूरी है कि हर एक प्रान्त में
सरकार क़ानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करदे। प्रारम्भिक शिक्षा
अनिवार्य तो होनी ही चाहिए वह निःशुल्क (बिना फ़ीस) भी होनी चाहिए
तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिए अत्यन्त
लज्जा की बात है कि केवल १२ प्रतिशत जनसंख्या लिख पढ़ सकती है।
सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नहीं हो जाता तब
तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि संयुक्तप्रान्त में कांग्रेस सरकार उस प्रकार का नियम
बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे
उन्हें तभी उपाधि दी जावेगी कि वे अनिवार्य रूप से निश्चित समय तक
गाँवों में शिक्षक का कार्य करें। उससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने
में सुविधा होगी।

हमारे देश में कोई भी सुधार कार्य पूरी तरह से सफल नहीं होता इसका
मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। अतएव गाँवों की उन्नति के
ए भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेंट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे इस
सम्बन्ध में जाँच करने के लिए भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया
था जिसके मंत्री श्री सारजैंट महोदय थे जो कि भारत सरकार के शिक्षा
विषयक मामलों के सलाहकार हैं। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा
किस प्रकार फैले इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामों में शिक्षा

अपना थोड़ा सा समय देने पर राज़ी किया जावे। तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो भी रात्रि पाठशाला का नाम हो वह समिति चन्दे के रूप में इकट्ठा करे चदा पैदावार के रूप में भी जमा किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियों को सहायता दे तो उनके द्वारा केवल प्रौढ़ों (adults) की ही शिक्षा का प्रबन्ध नहीं वरन् गाँव के लड़के लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ साथ गाँव वालों में अखबार तथा अन्य पुस्तकों को पढने की आदत भी डालनी चाहिए उसके लिए समिति पुस्तकालय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गाँव का लड़का यदि मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है तब तो कोई बात ही नहीं अन्यथा यह भय रहता है कि वह कहीं पढना-लिखना भूल न जावे। इस भय को दूर करने, गाँव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने, और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा-प्रचार के साथ साथ ग्राम्य पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि गाँवों के लिए साप्ताहिक समाचार पत्र निकाले जावे और ग्राम्य पुस्तकालयों के लिए ग्राम्य उपयोगी सरल पुस्तकें लिखवाई जावे। कुछ पुस्तके तो स्थायी रूप से प्रत्येक गाँव में रहें और अन्य पुस्तकों के पच्चीस पच्चीस पुस्तकों के सेट बनवा दिए जावें जो एक गाँव से दूसरे गाव में घूमते रहें।

रेडियो के द्वारा भी गाँव में संसार तथा देश की हलचलों के विषय में जानकारी कराई जा सकती है और मनोरंजन के साथ साथ उनका ज्ञान वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य में बहुत उपयोग हो सकता है। जहाँ जलविद्युत् है वहाँ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिए। रेडियो प्रोग्राम भी गाँव के लिए उपयोगी हो ऐसा प्रबंध करना चाहिए।

किन्तु जहाँ ग्राम शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है वहाँ यह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गाँव में शिक्षा-प्रचार के लिए देश की ऐसी ग्राम

शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवों से सहानुभूति रखते हों और गाँवों में जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हों। लड़कियों की शिक्षा की समस्या भी तभी हल हो सकती है जब कि ग्राम-शिक्षकों की पत्नियों को ग्राम-अध्यापिका बनने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा दी जावे। इस काय के लिए बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किए निस्तार भी नहीं है।

शिक्षा योजना की सफलता के लिए यह भी ज़रूरी है कि हर एक प्रान्त में सरकार क़ानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करदे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होनी ही चाहिए वह निःशुल्क (बिना फ़ीस) भी होनी चाहिए तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है कि केवल १२ प्रतिशत जनसख्या लिख पढ़ सकती है। सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नहीं हो जाता तब तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि सयुक्तप्रान्त में कांग्रेस सरकार उस प्रकार का नियम बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे उन्हें तभी उपाधि दी जावेगी कि वे अनिवार्य रूप से निश्चित समय तक गाँवों में शिक्षका का कार्य करें। उससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने में सुविधा होगी।

हमारे देश में कोई भी सुधार कार्य पूरी तरह से सफल नहीं होता इसका मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। अतएव गाँवों की उन्नति के लिए भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेंट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे इस सम्बन्ध मे जाँच करने के लिए भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया था जिसके मन्त्री श्री सारजैंट महोदय थे जो कि भारत सरकार के शिक्षा विषयक मामलों के सलाहकार हैं। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा किस प्रकार फैले इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामों में शि

अपना थोड़ा सा समय देने पर राज़ी किया जावे। तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो भी रात्रि पाठशाला का नाम हो वह समिति चन्दे के रूप में इकट्ठा करे चदा पैदावार के रूप में भी जमा किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियों को सहायता दे तो उनके द्वारा केवल प्रौढ़ों (adults) की ही शिक्षा का प्रबन्ध नहीं वरन् गाँव के लड़के लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ साथ गाँव वालों में अख़बार तथा अन्य पुस्तकों को पढने की आदत भी डालनी चाहिए उसके लिए समिति पुस्तकालय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला मे शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गाँव का लड़का यदि मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है तब तो कोई बात ही नहीं अन्यथा यह भय रहता है कि वह कहीं पढना-लिखना भूल न जावे। इस भय को दूर करने, गाँव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने, और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा प्रचार के साथ साथ ग्राम्य पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि गाँवों के लिए साप्ताहिक समाचार पत्र निकाले जावे और ग्राम्य पुस्तकालयों के लिए ग्राम्य उपयोगी सरल पुस्तकें लिखवाई जावे। कुछ पुस्तके तो स्थायी रूप से प्रत्येक गाँव में रहें और अन्य पुस्तको के पच्चीस पच्चीस पुस्तकों के सेट बनवा दिए जावें जो एक गाँव से दूसरे गाव में घूमते रहें।

रेडियो के द्वारा भी गाँव में संसार तथा देश की हलचलों के विषय में जानकारी कराई जा सकती है और मनोरंजन के साथ साथ उनका ज्ञान वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य में बहुत उपयोग हो सकता है। जहाँ जलविद्युत् है वहाँ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिए। रेडियो प्रोग्राम भी गाँव के लिए उपयोगी हो ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

किन्तु जहाँ ग्राम शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है वहाँ यह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गाँव में शिक्षा-प्रचार के लिए देश की ऐसी ग्राम

शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवों से सहानुभूति रखते हों और गाँवों में जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हों। लड़कियों की शिक्षा की समस्या भी तभी हल हो सकती है जब कि ग्राम-शिक्षकों की पत्नियों को ग्राम-अध्यापिका बनने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा दी जावे। इस काय के लिए बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किए निस्तार भी नहीं है।

शिक्षा योजना की सफलता के लिए यह भी ज़रूरी है कि हर एक प्रान्त में सरकार क़ानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करदे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होनी ही चाहिए वह निःशुल्क (बिना फ़ीस) भी होनी चाहिए तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है कि केवल १२ प्रतिशत जनसंख्या लिख पढ सकती है। सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नहीं हो जाता तब तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि संयुक्तप्रान्त में कांग्रेस सरकार उस प्रकार का नियम बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे उन्हें तभी उपाधि दी जावेगी कि वे अनिवार्य रूप से निश्चित समय तक गाँवों में शिक्षक का कार्य करे। उससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने में सुविधा होगी।

हमारे देश में कोई भी सुधार कार्य पूरी तरह से सफल नहीं होता इसका मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। अतएव गाँवों की उन्नति के लिए भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेंट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया था जिसके मन्त्री श्री सारजैंट महोदय थे जो कि भारत सरकार के शिक्षा विषयक मामलों के सलाहकार हैं। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा किस प्रकार फैले इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामों में शिक्षा

…म्भिक) किस प्रकार हो इस सम्बन्ध में नीचे लिखी सिफारिशें की हैं।

(१) हमारी राय में भारतवर्ष में अनिवार्य और नि:शुल्क (बिना फीस) …म्भिक शिक्षा ६ से १४ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के लिए सर्वत्र शीघ्र …प्रचलित कर देना चाहिए। ऐसा करने के लिए लगभग १८ लाख अध्यापकों की ज़रूरत होगी और २०० करोड़ रुपया व्यय होगा। इसलिए यह योजना लगभग ४० वर्षों में पूरी होगी।

(२) शिक्षा किसी दस्तकारी के द्वारा दी जावे जिसे बेसिक शिक्षा पद्धति कहते हैं (Basic Education)।

(३) इस योजना को सफल बनाने के लिए अध्यापकों की आज जो गिरी हुई दशा है उसे दूर करना होगा। उन्हें उचित वेतन देना होगा और योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बनने के लिए उत्साहित करना होगा।

यदि यह योजना काम में लाई गई तो आशा है कि गाँवों में आज जो अशिक्षा का अंधकार है वह दूर हो सके और गाँव वाले शिक्षित हो सकें।

तालीमी संघ

इस योजना के सम्बन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिए कि दस्तकारी द्वारा शिक्षा देने की पद्धति जिसे बेसिक शिक्षा प्रणाली कहते हैं उसका निर्माण महात्मा गाँधी के नेतृत्व में तालीमी संघ ने किया था और वह वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध है। तालीमी संघ इस शिक्षा प्रणाली को सफल बनाने की भरसक चेष्टा करता है। तालीमी संघ ने जो बेसिक (Basic) शिक्षा पद्धति निकाली है उसका उद्देश्य तो यह है कि बालक किसी धन्धे के आधार पर और उसके द्वारा सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सकें जिससे उनका पूर्ण विकास हो सके। महात्मा गाँधी का तो यह मत है कि भारतवर्ष जैसे निर्धन देश में करोड़ों व्यक्तियों की शिक्षा का व्यय इतना अधिक होगा कि राष्ट्रीय सरकार भी उतना व्यय करने में असमर्थ होगी अस्तु शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसका खर्चा भी निकल सके। इसी लिए …न्होंने धन्धे के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि

विद्यार्थी जो वस्तुये पढ़ते समय तैयार करेंगे उनको बेंच कर बहुत कुछ शिक्षा का काम पूरा किया जा सकता है। अभी तक महात्मा गाँधी के इस मत को देश के शिक्षा शास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया है। वर्धा योजना में केवल ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

पढ़ना लिखना सीखना तो ज़रूरी है ही परन्तु हमको गाँवों में उस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करना है कि जो गाँव वालों की मनोवृत्ति को बदल सके। आज गाँवों में जिस प्रकार की सामाजिक और धार्मिक कुरीतियाँ फैली हैं वे दूर हो सकें। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि उनका सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण उदार बने, उनमें अपने पैरों पर खड़े होने की भावना पैदा हो, उनमें देश के प्रति प्रेम पैदा हो और वे श्रम के महत्व (Dignity of Labour) को समझ सके।

अशिक्षा के कारण जो आज बहुत से कुसंस्कार गाँव वालों में पाये जाते हैं उनमें आपस में जो द्वेष और लड़ाई झगड़ा देखने को मिलता है और आपस के सहयोग की भावना का आज जो नितान्त अभाव है हम उसका अन्त करना चाहते हैं। और गाँव वालों के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं। हमारी शिक्षा का ध्येय होगा गाँव वालों को एक अच्छा नागरिक (Citizen) बनाना और जीविकोपार्जन के लिए उन्हें पूर्ण तरह से योग्य और उपयुक्त बनाना। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि वे अपने शिक्षा काल में कोई न कोई ऐसा उपयोगी कार्य सीखें कि जिसके द्वारा वे अपने परिवार का पालन पोषण कर सकें इस प्रकार की शिक्षा वही हो सकती है जो एक लक्ष्य को सामने रख कर दी जावे।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव वाले जो यह कहते सुने जाते हैं कि "लड़कों को पढ़ाने से वे खेती के काम के नहीं रहते" इसका कारण क्या है?

२—शहरों जैसी शिक्षा गाँवों के लड़कों को देने का क्या परिणाम हुआ है?

३—गाँव की पाठशालाओं का पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए?

प्रारम्भिक) किस प्रकार हो इस सम्बन्ध में नीचे लिखी सिफारिशें की गई हैं।

(१) हमारी राय में भारतवर्ष में अनिवार्य और निःशुल्क (बिना फीस) प्रारम्भिक शिक्षा ६ से १४ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के लिए सर्वत्र शीघ्र ही प्रचलित कर देना चाहिए। ऐसा करने के लिए लगभग १८ लाख अध्यापकों की ज़रूरत होगी और २०० करोड़ रुपया व्यय होगा। इसलिए यह योजना लगभग ४० वर्षों में पूरा होगी।

(२) शिक्षा किसी दस्तकारी के द्वारा दी जावे जिसे बेसिक शिक्षा पद्धति कहते हैं (Basic Education)।

(३) इस योजना को सफल बनाने के लिए अध्यापकों की आज जो गिरी हुई दशा है उसे दूर करना होगा। उन्हें उचित वेतन देना होगा और योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बनने के लिए उत्साहित करना होगा।

यदि यह योजना काम में लाई गई तो आशा है कि गाँवों में आज जो अशिक्षा का अंधकार है वह दूर हो सके और गाँव वाले शिक्षित हो सके।

तालीमी संघ

इस योजना के सम्बन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिए कि दस्तकारी द्वारा शिक्षा देने की पद्धति जिसे बेसिक शिक्षा प्रणाली कहते हैं उसका निर्माण महात्मा गाँधी के नेतृत्व में तालीमी संघ ने किया था और वह वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध है। तालीमी संघ इस शिक्षा प्रणाली को सफल बनाने की भरसक चेष्टा करता है। तालीमी संघ ने जो बेसिक (Basic) शिक्षा पद्धति निकाली है उसका उद्देश्य तो यह है कि बालक किसी धन्धे के आधार पर और उसके द्वारा सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सके जिससे उसका पूर्ण विकास हो सके। महात्मा गाँधी का तो यह मत है कि भारतवर्ष जैसे निर्धन देश में करोड़ों व्यक्तियों की शिक्षा का व्यय इतना अधिक होगा कि राष्ट्रीय सरकार भी उतना व्यय करने में असमर्थ होगी अस्तु शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसका खर्चा भी निकल सके। इसी लिए उन्होंने धन्धे के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि

समाज ने भिन्न भिन्न प्रकार के मनोरंजन ढूँढ़ निकाले हैं जिनमे दैनिक कार्य की नीरसता नष्ट होती है और जीवन अधिक सुखमय और सरस बनता है। मनोरंजन की आवश्यकता वृद्ध, प्रौढ़ और बालकों सभी को होती है हाँ बालकों को खेलकूद की अधिक रुचि होती है और वह स्वाभाविक भी है।

आज भारतवर्ष के ग्रामो की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि गाँव वालों को मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। गाँव वालों का जीवन अत्यन्त नीरस बना हुआ है। यही कारण है कि जो युवक थोड़ी सी भी शिक्षा पा जाता है वह गाँव में रहना नहीं चाहता। गाँव में खेल तथा मनोरंजन के साधनों का इतना अधिक अभाव है कि यदि दो बैल या कुत्ते आपस में लड़ते हैं तो उस लड़ाई को देखने के लिए ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है। गाँव बहुत ही सुनसान और निर्जन स्थान होता है। यही कारण है कि किसान उदास मनोवृत्ति वाला होता है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता। क्योंकि उसको कोई नई बात देखने, सुनने, तथा उस पर विचार करने के लिए नहीं मिलती।

ग्रामीणों की बुद्धि का विकास तथा उनकी निराश मनोवृत्ति का नाश तभी हो सकता है जब कि वे कभी कभी खेल खेलें, तमाशे, प्रदर्शनियाँ तथा मेले देखें और उन्हें संसार में क्या हो रहा है इसके समाचार प्रतिदिन मिलते रहें। यही नहीं सायंकाल को जब वह काम से थक कर घर पर आवे तो उसके लिए थोड़े से मनोरंजन की भी आवश्यकता है जिससे कि उसका मस्तिष्क और शरीर ताज़ा हो जावे। प्रौढ़ों के अतिरिक्त गाँव के लड़कों के लिए तो खेल की और भी अधिक आवश्यकता है कि जिससे उनमे अनुशासन (Discipline), साहस, फुर्ती तथा सामूहिक भावना का उदय हो।

गाँवों का खेल (Village games)

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में खेल के लिए एक मैदान तैयार किया जावे और ऐसे खेलों का प्रचार किया जावे कि जो कम खर्चीले हों, जिनमें अधिक लोग भाग ले सकें, और जिनके द्वारा खेलने वालों में सामूहिक संगठन तथा अनुशासन का भाव उदय हो। इस दृष्टि से फुटबाल

४—बालचर किसे कहते हैं? बालचर ट्रुप की व्यवस्था गाँव में करने से क्या लाभ होगा?

५—गाँव की पाठशालाओं में खेती और गाँव के उद्योग-धंधों की शिक्षा क्यों देनी चाहिए?

६—गाँव की उन्नति के लिए लड़कियों को पढ़ाना क्यों ज़रूरी है?

७—गाँव की लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए?

८—गाँव वालों को शिक्षित बनाने के लिए ग्राम वाचनालय और पुस्तकालय क्यों ज़रूरी है? गाँवों में किस तरह के पुस्तकालय खोले जाने चाहिए।

९—गाँव की पाठशाला किस प्रकार गाँव का सुधार करने में सहायक हो सकती है?

१०—गाँव के लिए कैसे शिक्षक चाहिए?

अठारहवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन (Means of Recreation)

मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिए, उसकी कार्य-क्षमता को बढ़ाने के लिए, उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है। दिन भर काम करने के उपरान्त मनुष्य का शरीर तथा मस्तिष्क थक जाता है। उस समय थोड़ा सा मनोरंजन उसमें नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य सर्वदा कार्य करता रहे, विश्राम करने के अतिरिक्त उसके पास मनोरंजन का कोई साधन न हो तो उसका जीवन नीरस हो जावेगा और उसकी कार्य-क्षमता घट जावेगी। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य प्रतिदिन एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते ऊब जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति मस्तिष्क का ही कार्य करता और अधिकतर बैठा ही रहता है तो उसकी कभी कभी पैदल चलने की इच्छा होती है और खेल तथा संगीत से उसे सुख मिलता है। जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन हर एक को सुखद प्रतीत होता है। इसी कारण मनुष्य

समाज ने भिन्न भिन्न प्रकार के मनोरंजन ढूँढ़ निकाले हैं जिनसे दैनिक कार्य की नीरसता नष्ट होती है और जीवन अधिक सुखमय और सरस बनता है। मनोरंजन की आवश्यकता वृद्ध, प्रौढ़ और बालकों सभी को होती है हाँ बालकों को खेलकूद की अधिक रुचि होती है और वह स्वाभाविक भी है।

आज भारतवर्ष के ग्रामों की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि गाँव वालों को मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। गाँव वालों का जीवन अत्यन्त नीरस बना हुआ है। यही कारण है कि जो युवक थोड़ी सी भी शिक्षा पा जाता है वह गाँव में रहना नहीं चाहता। गाँव में खेल तथा मनोरंजन के साधनों का इतना अधिक अभाव है कि यदि दो बैल या कुत्ते आपस में लड़ते हैं तो उस लड़ाई को देखने के लिए ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है। गाँव बहुत ही सूनसान और निर्जन स्थान होता है। यही कारण है कि किसान उदास मनोवृत्ति वाला होता है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता। क्योंकि उसको कोई नई बात देखने, सुनने, तथा उस पर विचार करने के लिए नहीं मिलती।

ग्रामीणों की बुद्धि का विकास तथा उनकी निराश मनोवृत्ति का नाश तभी हो सकता है जब कि वे कभी कभी खेल खेलें, तमाशे, प्रदर्शनियाँ तथा मेले देखें और उन्हें संसार में क्या हो रहा है इसके समाचार प्रतिदिन मिलते रहें। यही नहीं सायंकाल को जब वह काम से थक कर घर पर आवे तो उसके लिए थोड़े से मनोरंजन की भी आवश्यकता है जिससे कि उसका मस्तिष्क और शरीर ताज़ा हो जावे। प्रौढ़ों के अतिरिक्त गाँव के लड़कों के लिए तो खेल की और भी अधिक आवश्यकता है कि जिससे उनमें अनुशासन (Discipline), साहस, फुर्ती तथा सामूहिक भावना का उदय हो।

गाँवों का खेल (Village games)

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में खेल के लिए एक मैदान तैयार किया जावे और ऐसे खेलों का प्रचार किया जावे कि जो कम हों, जिनमें अधिक लोग भाग ले सकें, और जिनके द्वारा खेलने वालों सामूहिक संगठन तथा अनुशासन का भाव उदय हो। इस दृष्टि से फुटबा

४—बालचर किसे कहते हैं ? बालचर ट्रूप की व्यवस्था गाँव की शाला में करने से क्या लाभ होगा ?

५—गाँव की पाठशालाओं में खेती और गाँव के उद्योग-धंधों में क्यों शिक्षा देनी चाहिए ?

६—गाँव की उन्नति के लिए लड़कियों को पढाना क्यों ज़रूरी है

७—गाँव की लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए ?

८—गाँव वालों को शिक्षित बनाने के लिए ग्राम वाचनालय और पुस्तकालय क्यों ज़रूरी है ? गाँवों में किस तरह के पुस्तकालय खो जाने चाहिए।

९—गाँव की पाठशाला किस प्रकार गाँव का सुधार करने में सहायक हो सकती है ?

१०—गाँव के लिए कैसे शिक्षक चाहिए ?

अठारहवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन (Means of Recreation)

मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिए, उसकी कार्य-क्षमता को बढ़ाने के लिए, उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है। दिन भर काम करने के उपरान्त मनुष्य का शरीर तथा मस्तिष्क थक जाता है। उस समय थोड़ा सा मनोरंजन उसमें नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य सर्वदा कार्य करता रहे, विश्राम करने के अतिरिक्त उसके पास मनोरंजन का कोई साधन न हो तो उसका जीवन नीरस हो जावेगा और उसकी कार्य क्षमता घट जावेगी। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य प्रतिदिन एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते ऊब जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति मस्तिष्क का ही कार्य करता और अधिकतर बैठा ही रहता है तो उसकी कभी कभी पैदल चलने की इच्छा होती है और खेल तथा संगीत से उसे सुख मिलता है। जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन हर एक को सुखद प्रतीत होता है। इसी कारण मनुष्य

भजनों का समह किया जावे कि जो ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं, अथवा जिनमें गाँवों की प्रचलित कुरीतियों का विवरण है, और जो सरल भाषा में लिखे गए हों तो बहुत अच्छा हो। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे भजन योग्य व्यक्तियों से लिखवाये जावें और उनको प्रकाशित कराकर उनका गाँवों में प्रचार कराया जावे। गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियों, बालचरों, स्त्रियों और प्रौढ़ों की भजन-मडलियाँ बनाई जावें जो उन्हीं भजनों को उत्सव, त्योहार तथा अन्य अधिवेशनों के समय पर गाया करें। भजनों के प्रचार से दो लाभ होंगे एक तो प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण बनेगा दूसरे मनोरजन भी होगा।

नाटक तथा प्रहसन (Village drama)

ग्राम-सुधार का कार्य करने वाले तथा गाँव की पाठशाला के अध्यापक की सहायता से प्रत्येक गाँवों में यदि एक मनोरंजन तथा खेलकूद का प्रबन्ध करने वाली सभा बन जावे जिसमें गाँव के प्रमुख लोग रहें तो इस दिशा में बहुत कुछ हो सकता है। योग्य लेखकों से प्रत्येक प्रान्तीय भाषा में गाँव की प्रति दिन की समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाले नाटक और प्रहसन लिखवाये जावें और गाँव के युवकों की सहायता से होली, दिवाली, रामलीला, ईद, बड़ा दिन इत्यादि त्योहारों तथा अन्य उत्सवों पर वर्ष में तीन चार बार चाँदनी रात्रि में स्कूल अथवा किसी चौपाल पर दिखलाए जावें, तो गाँवों में सुरुचिपूर्ण मनोरजन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है।

रेडियो (Radio)

रेडियो ससार को विज्ञान की अत्यन्त उपयोगी देन है। मनोरजन, और शिक्षा-प्रचार के लिए रेडियो से अच्छा और कोई दूसरा साधन नहीं है। यदि प्रत्येक गाँव में अथवा समीपवर्ती दो तीन गाँवों में एक रेडियो-सेट लगा दिया जावे और प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय ब्राड कास्टिंग स्टेशन स्थापित कर दिए जावें तो ग्रामीणों के लिए प्रत्येक दिन प्रोग्राम रक्खा जा सकता है। सायंकाल गाँव के लोग इकट्ठे होकर बीमारियों को दूर करने, पशुओं के पालन, गल्ले का भाव, खेती के नवीन तरीकों और गाँव की समस्याओं पर विशेषज्ञों द्वारा बताई हुई बातों से अपना मन बहला सकते हैं। और जानकारी प्राप्त-

और कबड्डी उपयोगी हैं। अन्य हिन्दुस्तानी खेल जो भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रचलित हों उनका भी गाँवों में प्रचार किया जावे।

हिन्दुस्तानी खेल

हमारे देश में भिन्न प्रान्तों में बहुत तरह के खेल प्रचलित हैं जैसे नमक-चोर, रामडंडा, इत्यादि। इन सब खेलों को इकट्ठा करके उनके नियम इत्यादि बनाकर पुस्तकें प्रकाशित कराई जावें और उन खेलों का गाँवों में प्रचार किया जावे। साथ ही नया खेल प्रचलित किया जावे जैसे वाली बाल, बासकैट बाल इत्यादि।

जरूरत इस बात की है कि एक "ग्रामीण खेल बोर्ड" स्थापित किया जावे जिस प्रकार से अखिल भारतीय फुटबाल, क्रिकेट तथा हाकी और टैनिस के लिए बोर्ड स्थापित हैं। "ग्रामीण खेल बोर्ड" हिन्दुस्तानी खेलों का प्रचार गाँवों में करने और उनके देखभाल इत्यादि का काम करे। खेल ऐसे हों जो अधिक खर्चीले न हों जिसे अधिक व्यक्ति खेल सकें और जिनसे, सगठन सामूहिक भावना, शारीरिक विकास, स्फूर्ति, साहस, तथा अनुशासन (Discipline) का उदय हो।

गाँव का स्काउट ट्रूप (Scout Troop)

गाँव में बालचर आन्दोलन का अवश्य प्रवेश होना चाहिए। इससे गाँवों को बहुत लाभ होगा। एक तो गाँव के युवकों में सगठन उत्पन्न होगा, मिलजुल कर कार्य करने की आदत पड़ेगी और गाँव मे जो बहुत सी बुराइयाँ हैं उनके दूर करने में इन शिक्षित ट्रेंड बालचरों से बहुत सहायता मिल सकती है। गाँव में भ्रातृभाव भी इस आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हो सकता है। गाँव की सफ़ाई, सड़कों को ठीक रखना, फसल के कीड़ों को नष्ट करना, तथा गाँव मे मनोरंजन के साधन उपलब्ध करने में बालचर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। गाँव को तो लाभ होगा ही, बालचरों को इसी आन्दोलन के द्वारा स्वय एक मनोरंजन का साधन प्राप्त हो जावेगा, और उनका शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र विषयक विकास होगा।

भजन तथा भजन-मंडलियाँ

गाँव के लोग भजन बहुत पसद करते हैं। यदि प्रत्येक प्रान्त मे ऐसे

इस प्रकार जब गाँवों में सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधन उपलब्ध किए जावेंगे तथा खेल का प्रबन्ध किया जावेगा तभी ग्रामीण जनता का जीवन सरस बन सकेगा और ग्रामों में आकर्षण उत्पन्न हो सकेगा।

ग्राम-सेवादल (Village Service Troop)

खेलों के सिवाय लड़कों और युवकों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए, उनमें सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए ग्राम-सेवादल की बड़ी आवश्यकता है। हर एक गाँव में एक ग्राम-सेवादल बनाया जावे। ग्राम-सेवादल में गाँव के बड़े लड़के तथा युवक भर्ती किये जावें, उन्हें सेवा का महत्व समझाया जावे जिससे कि गाँव का हर एक युवक ग्राम-सेवा को अपने लिए गौरव समझे। ग्राम-सेवादल नीचे लिखे काम करे:—होली, दिवाली, दशहरा इत्यादि त्योहारों पर गाँव की सफाई करने में सहायता देना, टिड्डी तथा अन्य फसलों के शत्रुओं (कीड़ों) को मारने में गाँव वालों की सहायता करना, विशेष अवसरों पर नाटक, प्रहसन, तथा अन्य खेल-तमाशों का आयोजन करके गाँव वालों का मनोरंजन करना, गाँव के रास्तों को ठीक करना और गाँव में फलों के वृक्ष लगाना। गाँव में फलों के वृक्ष तो हर एक आदमी को लगाना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे, एक तो गाँव की सुन्दरता बढ़ेगी दूसरे फल खाने को मिलेंगे। गाँव के रास्ते ठीक करने और पास के गड्ढों को भरने में भी ग्राम-सेवादल गाँव वालों की सहायता कर सकता है।

घरों को अधिक आकर्षक बनाना

जिस प्रकार हमारे गाँवों में कोई आकर्षण नहीं है, उसी तरह गाँवों के रहने वालों के घरों में भी कोई आकर्षण नहीं रह गया है। जब कभी थका हुआ किसान खेतों पर से आता है तो घर में उसके लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं होता कि जिससे उसका मन बहले। खाली समय में वह चिलम लेकर किसी चौपाल पर गप्प उड़ाता है। एक दूसरे की बुराई करना, दूसरों के घरों की आलोचना करना, यही ग्रामीणों का काम रह गया है। इसका फल यह होता है कि एक दूसरे के प्रति ईर्षा, द्वेष और जलन के भाव उत्पन्न होते हैं। पटवारी मुखिया तथा अन्य व्यक्ति जिनका मुकदमेबाजी

कर सकते हैं। यदि रेडियो का ठीक ठीक उपयोग किया जावे तो अशिक्षित ग्रामीणों को संसार में क्या हो रहा है, उनके देश में क्या हो रहा है, गाँव की समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है इत्यादि विषयों का पूरा ज्ञान कराया जा सकता है। प्रान्तीय सरकार रेडियो सेट का व्यय दे और गाँव के लोग उसके रखने का व्यय सहन करें तो यह योजना सफल हो सकता है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड भी इसमें सहायता दे सकते हैं।

मैजिक लैन्टर्न तथा सिनेमा शो

(Magic Lantern and Cinema)

प्रत्येक सरकारी विभाग जिसका सम्बन्ध गाँवों से है अपने विभाग से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के चित्र बनवावे और लैन्टर्न के द्वारा उनका समय समय पर प्रदर्शन कराया जावे। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य विभाग, कृषि विभाग, उद्योग विभाग, सहकारिता विभाग, शिक्षा विभाग तथा पशु चिकित्सा विभाग अपने अपने विषय के चित्र तैयार करावें और उनका प्रदर्शन हो। मेलों और उत्सवों के अवसर पर इनका प्रदर्शन विशेष रूप से किया जावे।

ऐसी सिनेमा फिल्म तैयार करना इस समय कठिन दिखलाई देता है जो कि गांव वालों के लिए उपयोगी हो क्योंकि बोलती हुई फिल्म बहुत खर्चीली होती हैं। साथ ही ग्राम्य जीवन को भली प्रकार चित्रित कर सकने वाले लेखक और उसका प्रदर्शन कर सकने वाले एक्टर्स भी कम हैं। परन्तु प्रत्येक प्रान्त मे वहाँ की बोलचाल की भाषा में ग्राम्य उपयोगी फिल्म बनवाने का प्रान्तीय सरकार को अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। फिल्म के साथ साथ अच्छे हल, बैल, बीज, बीमारियों, इत्यादि के सम्बन्ध के चित्र भी रहें। घूमने वाला सिनेमा इन फिल्मों को प्रान्त के गाँवों में दिखावे और उसके साथ ही प्रचार कार्य भी करे तो गाँवों में मनोरजन का एक अत्यन्त उत्तम साधन उपलब्ध हो सकता है। परन्तु फिल्म तैयार करवाने में बड़ी सावधानी करनी होगी। नहीं तो उसका बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है। यह कार्य व्यावसायिक कपनियों पर न छोड़ कर सरकार को स्वय करना चाहिए।

४—रेडियो के द्वारा गाँवों में मनोरंजन और शिक्षा के कार्य में कहाँ तक सहायता मिल सकती है ?

५—मनोरंजन के साधनों का उपयोग ग्राम-सुधार सम्बन्धी प्रचार कार्य में किस प्रकार किया जा सकता है ?

उन्नीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्यरक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

सर्व साधारण का यह विचार है कि गाँव स्वास्थ्यप्रद स्थान होते हैं और वहाँ रोग इत्यादि का प्रकोप बहुत कम होता है। किन्तु यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। भारतीय ग्रामों में रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा रक्खा है। प्रति वर्ष लाखों की सख्या में ग्रामीण इन रोगों के शिकार होते हैं। वर्तमान काल में भारतवासियों की औसत आयु लगभग तेईस वर्ष है, जबकि अन्य देशों में चालीस वर्ष या इससे अधिक है। इसी प्रकार यहाँ फी हज़ार आदमियों में से कोई तीस आदमी प्रति वर्ष मर जाते हैं, जब कि ससार के कितने ही देशों में हज़ार पीछे केवल दस या ग्यारह ही मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ स्वास्थ्य सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है !

इस सम्बन्ध में आल इडिया-मैडिकल रिसर्च वरकर्स (All India Medical Research Workers) कानफ्रैंस ने जो प्रस्ताव पास किया है वह ध्यान देने योग्य है। उस प्रस्ताव का आशय निम्नलिखित है :—"इस सम्मेलन का विश्वास है कि रोके जा सकने वाले रोगों से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष पचास या साठ लाख मृत्यु होती है और भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति ऐसे रोगों से जिनका रोका जा सकता है वर्ष में दो सप्ताह से लेकर तीन सप्ताह तक काम करने से बेकार हो जाता है। यही नहीं सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य क्षमता इन रोगों से बीस फी सदी घट जाती है। सम्मेलन का अनुमान है कि यदि इन रोगों द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह अरबों रुपये प्रति वर्ष होगी"।

तथा लड़ाई-झगड़े से लाभ होना है, इसका लाभ उठाते हैं। यह तभी बंद हो सकता है जब घरों को आकर्षक बनाया जावे।

घरों को आकर्षक बनाने के लिए वाटिका आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। फूलों की क्यारियों में उत्पन्न होने वाले फूल और तरकारी उसके लिए एक आकर्षण की वस्तु होगी। फूलों से घरों को आकर्षक बनाया जा सकता है। लेकिन जहाँ उसके लिए हमें पुष्पवाटिका आन्दोलन को चलाना होगा वहाँ गृह स्वामिनी को भी घरों को अधिक सुन्दर बनाने की शिक्षा देनी होगी। अभी तक ग्राम-सुधार कार्यकर्त्ताओं ने गृह-स्वामिनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। जब तक गाँवों की स्त्रियाँ ग्रामीण जीवन को मधुर और घरों को अधिक आकर्षक बनाने का काम अपने हाथ में नहीं ले लेतीं तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी।

यह तो स्वास्थ्य और सफाई के परिच्छेद में ही लिखा जा चुका है कि गृह-वाटिका से दो लाभ होंगे एक तो उससे फूल और तरकारी मिलेगी, दूसरे घर के काम में लाया हुआ पानी जो नाली न होने के कारण सड़ता रहता है और गंदगी उत्पन्न करता है, उसका उपयोग हो सकेगा। घर के काम में आने वाले पानी की समस्या को तो पानी सोखने वाले गड्ढों के द्वारा भी हल किया जा सकता है। सड़ने वाले पानी की समस्या को यदि इन गड्ढों (सोकेज-पिट) से भी हल किया जावे तो भी गृह-वाटिका तो हर एक घर में होनी ही चाहिए। प्रकृति ने फूल जैसी सुन्दर चीज़ उत्पन्न की है, गाँवों में वह आसानी से उत्पन्न हो सकती है लेकिन हम उसके आनन्द से वंचित हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों के कुओं के पास इतना अधिक पानी गिरता है कि दलदल बन जाता है। इस गंदगी को भी दूर करने का सहज उपाय यह है कि वहाँ एक छोटी सी वाटिका लगा दी जावें। उससे गंदगी तो दूर होगी ही गाँव भी आकर्षक बन जावेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—हमें मनोरंजन और खेल-कूद की आवश्यकता क्यों होती है ?

२—मनोरंजन और खेल-कूद से मनुष्य के ऊपर कैसा प्रभाव पड़ता है

३—गाँवों के लिए कैसे खेल उपयुक्त होंगे ?

जाती हैं और आँखें खराब होने का ८० फी सदी कारण गाँव की गंदगी या असावधानी होती है।

गंदी और सड़ी हुई वस्तुओं के विषैले कण हवा से उड़ कर गाँव वालों की आँखों में पड़ते हैं। बच्चे गंदगी के ढेरों के पास खेलते हैं। गंदे गाँवों में मक्खियाँ बहुत होती हैं और बच्चों की आँखों पर बैठ कर उन्हें गंदा कर देती हैं। विशेष बीमार आँख या गंदी आँख पर मक्खियाँ और भी अधिक बैठती हैं। जब किसी बच्चे अथवा स्त्री और पुरुष की आँख रोगी होती है तो वे गंदे हाथों से उसे छूते या मलते हैं। इसका फल यह होता है कि आँख स्थायी रूप से खराब होती है। आँख की बीमारी घर में तथा क्रमशः गाँव में फैलती है। यदि ध्यान से देखा जावे तो प्रत्येक गाँव में ऐसे लोग यथेष्ट संख्या में मिलेंगे जिनकी आँखें स्थायी रूप से खराब हो गई हैं।

इसका केवल एक ही उपाय है सफाई। गाँव की सफाई, चेहरे और आँखों की सफाई, कपड़ों की सफाई और शरीर की सफाई ही इस रोग को दूर कर सकती है। जितनी बार भी हो सके दिन में उतनी बार आँख साफ की जानी चाहिये तभी वे रोगमुक्त हो सकती हैं।

शुद्ध और पौष्टिक भोजन

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए शुद्ध और पौष्टिक भोजन भी अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु अधिकाश गाँव वालों को पौष्टिक भोजन तो दूर रहा, भर पेट भोजन नहीं मिलता। जब तक कि किसान को पूरे पेट भोजन नहीं मिलता तब तक उसके स्वास्थ्य की उन्नति की आशा करना स्वप्न तुल्य है। किसान के पास भर पेट अन्न तभी बच सकेगा कि जब लगान कुछ कम किया जावे, उसके ऋण के बोझ को हलका किया जावे, और किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती करके भूमि से अधिक पैदावार उत्पन्न करे। पौष्टिक भोजन की प्राप्ति के लिए किसानों को अपने घरों और खेतों पर अधिक फल और तरकारी उत्पन्न करना, गाय और भैंस पालना चाहिये। शहद की मक्खियों को पालतू बनाकर उनसे नियमित रूप से शहद तैयार करवाना और जिन्हें धार्मिक अड़चन न हो उनको मुर्गी पालना चाहिए। किन्तु केवल इतना करने से ही पौष्टिक भोजन की समस्या हल नहीं हो जावेगी। किसानों की स्त्रियों को पाकशास्त्र का ज्ञान होना चाहिए।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है (१) सफाई, हवा और रोशनी (२) शुद्ध और पौष्टिक भोजन (३) परिश्रम अथवा व्यायाम, (४) विश्राम, (५) रोगों से बचने के उपायों की जानकारी (६) चिकित्सा का उचित प्रबन्ध। अब हमें यह देखना है कि भारतीय ग्रामों में ऊपर लिखे स्वास्थ्य-रक्षा के साधन कहाँ तक उपलब्ध हैं।

सफाई, हवा और रोशनी

सफाई स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। यही नहीं सफाई मनुष्य को आत्मसम्मान, संयम, अनुशासन और मिलजुल कर रहना सिखाती है। सफाई से शारीरिक तो उन्नति होती ही है। मानसिक विकास भी होता है। अतएव ग्राम सुधार में सफाई का सर्वोच्च स्थान है। केवल शारीरिक सफाई ही यथेष्ट नहीं समझी जानी चाहिये। कपड़ों, घर, पीने का पानी, गली, गाँव और खेतों सभी की सफाई आवश्यक है। गाँवों में सफाई, रोशनी और हवा का अभाव है। यह हम 'गाँव की सफाई'' नामक परिच्छेद में लिख चुके हैं। परन्तु गाँव वालों को अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने के लिए उन्हें इसकी शिक्षा देनी होगी। नियमित रूप से शुद्ध कुएँ अथवा नदी के जल में प्रतिदिन स्नान करने, कभी कभी अपने पहिनने के कपड़ों को साफ करने, दाँतों को प्रतिदिन साफ करने, और आँखों को शुद्ध जल से धोने का महत्व उन्हें समझाना होगा, और ऊपर लिखी स्वास्थ्यप्रदान करने वाली आदतें डलवानी होगी। अभी साधारण किसान इस ओर से बहुत ही उदासीन है और इनका महत्व ही नहीं समझता।

इस शारीरिक सफाई की ओर ध्यान न देने के कारण गाँवों में बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं। फोड़ेफुन्सी, आँख और दाँत के रोगों का तो सीधा कारण शारीरिक सफाई न करना है। इनमें आँखों का रोग तो गाँवों में सर्व-प्रचलित है। गाँव के बच्चों की आँखें देखिये, वे अधिकतर मैली मिलेंगी। आँखों के इन रोगों के कारण बच्चों की आँखें खराब हो जाती हैं। भारतवर्ष में प्रति हज़ार अंधों और खराब आँखों वाले स्त्री पुरुषों की संख्या बहुत अधिक है। अधिकांश में बचपन में ही आँखें खराब हो

अपने रहने का स्थान न बनालें। जब प्लेग का प्रकोप हो तो हर एक को प्लेग का टीका लगवाना और गाँव को छोड़ देना आवश्यक है। हैज़ा (Cholera) पानी के खराब हो जाने से तथा खराब पानी पीने से होता है। अतएव पीने के पानी को शुद्ध रखना, कुओं की समय समय पर सफाई करवाना, और उसमें लाल दवा डालना, भोजन को शुद्ध रखना, तथा सफाई रखना ही उसको रोकने के मुख्य उपाय हैं।

हुकवर्म (Hook-worm) रोग गाँव वालों के मैदान में शौच जाने से उत्पन्न होता है। अतएव शौचस्थान का प्रबन्ध उसका मुख्य उपाय है। यदि शौचस्थान का प्रबन्ध न हो सके तो गाँव वालों में पुरानी पद्धति अर्थात् मल को एक फुट गड्ढे में दाब देने का प्रचार करना चाहिए। गिनी वर्म (Guinea-worm) नामक रोग दूषित जल के पीने से होता है, अतएव शुद्ध जल पीने से इसका भय दूर हो सकता है।

गाँवों में मलेरिया (Malaria) का बहुत प्रकोप होता है और प्रति वर्ष वर्षा के उपरान्त गाँव वाले ज्वर से एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक पीड़ित रहते हैं। मलेरिया यद्यपि घातक रोग नहीं है परन्तु वह मनुष्य की कार्यक्षमता को नष्ट कर देता है। बंगाल के कुछ भागों में तो मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के प्रायः सब लोग मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो जाते हैं और खेती काटने के लिए आदमी नहीं मिलते। संयुक्त-प्रान्त में भी मलेरिया के कारण खेती को बहुत हानि पहुँचती है। मलेरिया की समस्या तनिक कठिन है। मलेरिया एक प्रकार के मच्छरों द्वारा उत्पन्न होता है, अतएव गाँव के आध मील चारों ओर जितने गड्ढे, खड्ड तथा नाले इत्यादि हों उन्हें गाँव की पंचायत पटवा दे। जो पाटे नहीं जा सकते उनमें वर्षा के उपरान्त समय समय पर मिट्टी का तेल छुड़वा दिया जावे। यदि कोई तालाब तथा पोखरा ऐसा हो कि जिनका पानी पशुओं के पीने के काम आता हो और उसमें मिट्टी का तेल छुड़वाना उचित न समझा जावे, तो उसके चारों ओर बहुत सफाई रक्खी जावे। तालाब के किनारे किनारे घास पौधे कूड़ा-कर्कट जो भी हो उसको साफ कर दिया जावे। भविष्य में गाँव वालों को तालाब के समीप शौच जाने तथा उसमें कूड़ा डालने की मनाही करदी जावे। इतना करने पर मच्छरों का उत्पन्न होना बन्द हो

तभी हो सकता है जब कि गाँव की लड़कियों को शिक्षा दी जावे। किसान की स्त्री अपने घर, रसोई और बरतनों को बहुत साफ रखती हैं, यदि वे यह और जान जावें कि मक्खियाँ, चूहे तथा अन्य कीड़े-मकोड़े मनुष्य को क्या हानि पहुँचाते हैं और जल किस प्रकार दूषित होता है और उसके पीने से कैसे कैसे भयकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं, तो गाँव बहुत से रोगों से बच जावे।

परिश्रम अथवा व्यायाम

गाँव वाले को व्यायाम करने की विशेष आवश्यकता नहीं है, खेतों में ही उन्हें यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है। हाँ अवकाश के समय खेलने से स्वास्थ्य भी बनता है और मनोरंजन भी होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए विश्राम और मनोरजन की भी आवश्यकता है। यदि किसान अपनी दिनचर्या को ठीक बनाले तो उसे विश्राम भी मिल सकता है।

रोग और उनसे बचने के उपायों की जानकारी

क्षय, प्लेग, हैज़ा, चेचक, तथा मोतीझरा (Typhoid) मलेरिया, काला आजार तथा हुकवर्म गाँवों के भयंकर रोग हैं। जिनके कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या मे मृत्यु होती है। इन रोगों का मुख्य कारण गाँव का गंदा होना और गाँव वालों की लापरवाही है।

गाँव को सब प्रकार से जैसा कि सफाई के अध्याय में लिखा है, सफाई रखना चाहिए। इतना करने पर इन रोगों का डर बहुत कम हो जावेगा। प्रति छः साल बाद चेचक का टीका लगवाने से (यदि चेचक का प्रकोप हो तो उस समय भी टीका लगाने से) और हवा रोशनी तथा सफाई का प्रबन्ध रखने से चेचक का भय जाता रहेगा। प्लेग (Plague) वस्तुतः चूहों का रोग है, अतएव उससे बचने का मुख्य उपाय चूहों को दूर करना है। चूहे रोशनी से घृणा करते हैं अतएव घरों में रोशनी का पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। साथ ही उनके बिलों को बन्द करके, बिल्ली, चूहेदानी, तथा ज़हर का उपयोग करके उनको नष्ट किया जा सकता है। सन्दूक तथा अनाज की चीज़ों को तनिक ऊँचे पर रखना चाहिए जिससे कि चूहे उसके नीचे

अपने रहने का स्थान न बनालें। जब प्लेग का प्रकोप हो तो हर एक को प्लेग का टीका लगवाना और गाँव को छोड़ देना आवश्यक है। हैज़ा (Cholera) पानी के खराब हो जाने से तथा खराब पानी पीने से होता है। अतएव पीने के पानी को शुद्ध रखना, कुओं की समय समय पर सफाई करवाना, और उसमें लाल दवा डालना, भोजन को शुद्ध रखना, तथा सफाई रखना ही उसको रोकने के मुख्य उपाय हैं।

हुकवर्म (Hook-worm) रोग गाँव वालों के मैदान में शौच जाने से उत्पन्न होता है। अतएव शौचस्थान का प्रबन्ध उसका मुख्य उपाय है। यदि शौचस्थान का प्रबन्ध न हो सके तो गाँव वालों में पुरानी पद्धति अर्थात् मल को एक फुट गड्ढे में दाब देने का प्रचार करना चाहिए। गिनी वर्म (Guinea-worm) नामक रोग दूषित जल के पीने से होता है, अतएव शुद्ध जल पीने से इसका भय दूर हो सकता है।

गाँवों में मलेरिया (Malaria) का बहुत प्रकोप होता है और प्रति वर्ष वर्षा के उपरान्त गाँव वाले ज्वर से एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक पीड़ित रहते हैं। मलेरिया यद्यपि घातक रोग नहीं है परन्तु वह मनुष्य की कार्यक्षमता को नष्ट कर देता है। बंगाल के कुछ भागों में तो मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के प्रायः सब लोग मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो जाते हैं और खेती काटने के लिए आदमी नहीं मिलते। संयुक्त-प्रान्त में भी मलेरिया के कारण खेती को बहुत हानि पहुँचती है। मलेरिया की समस्या तनिक कठिन है। मलेरिया एक प्रकार के मच्छरों द्वारा उत्पन्न होता है, अतएव गाँव के आध मील चारों ओर जितने गड्ढे, खड्ड तथा नाले इत्यादि हों उन्हें गाँव की पंचायत पटवा दे। जो पाटे नहीं जा सकते उनमें वर्षा के उपरान्त समय समय पर मिट्टी का तेल छुड़वा दिया जावे। यदि कोई तालाब तथा पोखरा ऐसा हो कि जिनका पानी पशुओं के पीने के काम आता हो और उसमें मिट्टी का तेल छुड़वाना उचित न समझा जावे, तो उसके चारों ओर बहुत सफाई रक्खी जावे। तालाब के किनारे किनारे घास पौधे कूड़ा-कर्कट जो भी हो उसको साफ कर दिया जावे। भविष्य में गाँव वालों को तालाब के समीप शौच जाने तथा उसमें कूड़ा डालने की मनाही करदी जावे। इतना करने पर मच्छरों का उत्पन्न होना बन्द हो

जे और मलेरिया का प्रकोप बहुत कम हो जावेगा। कुनीन और ऐसी युर्वेदिक दवाइयों का जो कि मलेरिया को रोक सकें गाँवों मे खूब प्रचार रना चाहिए। ये दवाइयाँ सरकार लागत मूल्य पर किसानों को बेचे और । बहुत निर्धन हैं उन्हें मुफ्त दे।

इन बीमारियों के अतिरिक्त गाँवों में गंदी अशिक्षित दाइयों और बच्चा उत्पन्न होने के समय व्यवहार में लाई जाने वाली गंदी और हानिकर रस्मों के कारण असंख्य बच्चों तथा माताओं का जीवन नष्ट हो जाता है। अधिकतर कोई नीच जाति की गंदी वृद्धा स्त्री, जिसको ठीक ठीक दिखलाई भी नहीं पड़ता और जिसके वस्त्रों तथा नाखूनों में गंदगी का विष भरा हुआ है, वह बच्चा उत्पन्न कराने का काम करती है। फिर माता को सबसे गंदी, अंधेरी, कोठरी जिसमें हवा की गुंजाइश ही नहीं हो सकती जच्चाखाने के लिए दी जाती है। यही नहीं घर के सबसे अधिक गंदे कपड़े और खाट उसको मिलती है। ऐसी दशा में यदि प्रसव-काल में बहुत सी मातायें अथवा नवजात बच्चे मर जाते हैं अथवा उनके शरीर में कोई स्थायी खराबी आ जाती है तो आश्चर्य की बात ही क्या है ?

इस समस्या को हल करने का यही एक उपाय है कि गाँव की ऐसी दाइयों को जो कि ठीक समझी जावें दाई का काम सिखाया जावे और केवल ट्रेंड दाइयों को ही प्रसव कराने के लिए लायसेंस दिया जावे। दाइयों के अतिरिक्त यदि गाँवों की अन्य स्त्रियाँ ट्रेनिंग लेना चाहें तो उन्हें भी शिक्षा दी जावे। इनके साथ साथ प्रचलित गंदी रस्मों के विरुद्ध प्रचार किया जावे और गाँव वालों को समझाया जावे कि उनसे उनकी कितनी हानि होती है। ट्रेंड दाइयों को पंचायत जिला-बोर्ड की सहायता से नौकर भी रख सकती है। ये ट्रेंड दाइयाँ ग्रामीण माताओं को बच्चों के लालन-पालन के सम्बन्ध में भी उचित परामर्श देंगी।

क्षयरोग या तपेदिक (Tuberculosis)

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से भारत में क्षय रोग तेज़ी से फैल रहा है अब यह रोग गाँव में भी पहुँच गया है। यह अत्यन्त भयंकर छूत का

रोग है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत में केवल इस रोग से ही प्रति वर्ष १५ लाख मनुष्य मर जाते हैं।

सूखी खाँसी आना सायंकाल ज्वर सा हो जाना, काम करने में जल्दी थक जाना, नींद न आना, किसी भी काम में जी न लगना, पेट भारी रहना इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। धीरे धीरे जब रोग बढ़ने लगता है तब खाँसी बढ़ती है, शक्ति घटने के साथ शरीर का वजन भी घटने लगता है। सायंकाल ज्वर आ जाता है, कफ के साथ खून भी गिरने लगता है। अन्त में आदमी बिलकुल निकम्मा होकर मर जाता है।

यह बीमारी परम्परागत होती है। यदि बाप को हुई है तो लड़के को भी हो सकती है। इसके कीड़े बहुत छोटे होते हैं। एक इंच में २५०० कीड़े स्थान पा सकते हैं। यह बीमारी एक के बाद दूसरे को लगती भी बहुत जल्दी है। यहाँ तक कि इस मर्ज़ के रोगी के थूक में भी हज़ारों कीड़े फैल जाते हैं। कुटुम्बियों के साथ यह बीमारी बहुत प्रेम रखती है। जिस घर में यह एक बार पहुँच जाती है फिर उस घर से उसका निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। यदि यह बीमारी किसी स्त्री को हो गई तो उसके पति और बच्चों का इससे बचना बहुत कठिन होता है।

यह बीमारी उन लोगों को अधिकतर हो जाती है जो गंदे घरों में रहते हैं जहाँ धूप और हवा नहीं पहुँचती। अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने, अत्यन्त चिन्ता ग्रस्त रहने से भी यह शरीर में पैठ जाती है, और चुपचाप अपना काम करती रहती है। दुर्व्यसन अर्थात् नशा इत्यादि करने, घर की कलह, कर्ज़दारी के कारण चिन्तित रहने से भी यह बीमारी हो जाती है।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग बहुत पाया जाता है। स्त्रियों को हवा और रोशनी पूरी तरह से नहीं मिलती। उनको पौष्टिक भोजन भी कम खाने को मिलता है। पर्दे की प्रथा तथा छोटी उमर पर विवाह भी इस रोग के मुख्य कारण हैं।

इस रोग से बचने के नीचे लिखे उपाय हैं :—

(१) भूख से अधिक कभी न खाओ,

(२) भोजन नियत समय पर करो। यदि भूख न लगी हो तो भोजन न करो। जितना पचा सको उतना खाओ।

(३) अपनी पाचन शक्ति को ठीक रक्खो।

(४) चबा चबा कर खाओ।

(५) बीच बीच मे उपवास करके पाचन शक्ति को तेज करो।

(६) कुछ पौष्टिक पदार्थ अवश्य लो जैसे मक्खन, घी, फल इत्यादि।

(७) थूक में क्षय के कीटाणु होते हैं इस लिए घर में, फर्श पर दीवार पर कभी न थूको, कागज़ रुमाल या कपड़े पर थूक कर उसे जला डालना अच्छा है।

(८) यदि पीकदान में थूको तो उसे गरम जल से साफ रक्खो।

(९) क्षयरोगी को अलग रक्खो, उसके कपड़े बर्तन इत्यदि को खौलते पानी में गरम करो और उसे किसी भी काम में न लाओ।

(१०) क्षयरोगी को खुली हवा में रहना चाहिए।

(११) क्षयरोगी को खूब आराम करना चाहिए।

(१२) प्रति दिन नहाना चाहिए।

(१३) क्षयरोगी को खूब हवादार और खुले मकान में जहाँ धूप आ सके रहना चाहिए।

(१४) क्षयरोगी के साथ किसी को रहना या खाना न खाना चाहिए।

सरकार ने एंटी ट्यूबरक्लोसिस लीग (Anti Tuberculosis League) की स्थापना की है जो इन बातों का प्रचार करती है। किन्तु होना यह चाहिए कि इस रोग को रोकने का पूरा प्रयत्न किया जावे और उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिए। इस रोग से देश को भयकर हानि पहुँच रही है।

चिकित्सा का प्रबन्ध

खेद है कि भारतीय ग्रामों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है। ग्रामीण तो राम भरोसे पड़े रहते हैं। ज़िला बोर्ड, जिला केन्द्र, तहसीलों, और बड़े बड़े क़स्बों मे अस्पताल चलाता है किन्तु गाँवों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गाँव वाले तहसील तथा ज़िलों के शफाख़ानों से बहुत कम लाभ उठा पाते हैं। क्योंकि एक तो वे दूर होते हैं, दूसरे वहाँ उनकी कोई सुनाई

नहीं होती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किया जावे। किन्तु प्रत्येक गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करना अत्यन्त कठिन है। अतएव ज़िला-बोर्ड पाँच पाँच या उससे अधिक गाँवों के समूह के बीच एक चिकित्सक रक्खे। प्रान्तीय सरकार इसके लिए ज़िला बोर्ड को सहायता दे। यदि वैद्य और हकीमों को गाँव में नियुक्त किया जावे तो अधिक अच्छा हो, क्योंकि एक तो वे कम वेतन पर गाँवों में रहना स्वीकार करेंगे, दूसरे देशी दवाइयों का मूल्य बहुत कम होता है इस कारण ग्राम-वासी उन दवाइयों को खरीद सकेंगे। इन ग्रामीण चिकित्सकों को प्राइवेट प्रैक्टिस करने की आशा न होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक-समिति बनाई जावे। प्रत्येक गाँव वाले को उसका सदस्य बनाया जावे। सदस्यों से कुछ फीस ली जावे (दो आना प्रति मास)। चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और एक दिन में प्रातःकाल ७ से १० तक एक गाँव में, और सायंकाल को दूसरे गाँव में निश्चित स्थान पर गाँव के मरीज़ों को देखे। इस प्रकार चिकित्सक एक सप्ताह में दो बार प्रत्येक गाँव में चिकित्सा के लिए जावेगा और महीने में एक बार वह स्वास्थ्य रक्षा के सिद्धान्तों का प्रत्येक गाँव में प्रचार करेगा। दवाइयों का मूल्य प्रत्येक गाँव की स्वास्थ्य-समिति घर पीछे लगाई हुई फीस से देगी। दवाइयों का मूल्य गाँव वाले ही दें और चिकित्सक का वेतन सरकार तथा ज़िला-बोर्ड दे तो प्रत्येक गाँव में चिकित्सा का प्रबन्ध हो सकता है।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने गाँवों में लगभग दो हज़ार चिकित्सालय खोलने का प्रबंध किया था। यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। अन्य प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी अब गाँवों की ओर आकर्षित हुआ है और आशा है कि भविष्य में ग्रामों में चिकित्सा का कुछ कुछ प्रबन्ध अवश्य होगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान में साधारणतः मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और मृत्यु-संख्या भी यहाँ अन्य देशों से अधिक है इसका क्या कारण है?

२—स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिन चीज़ों की आवश्यकता है उनका उल्लेख कीजिये?

३—सफाई का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? यह भी बतलाइये गाँव में सफ़ाई कैसी होती है ?

४—शारीरिक सफाई का मनुष्य के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? ।व के रहने वाले शारीरिक सफाई का कितना ध्यान रखते हैं ?

५—साधारण गाँव के रहने वालों का दैनिक भोजन क्या होता है ? क्या वह भोजन उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए काफी है ?

६—उन रोगों का उल्लेख कीजिये जिनसे गाँवों में लोग अधिक संख्या में मरते हैं।

७—चेचक, हैज़ा, प्लेग और मलेरिया क्यों और कैसे होते हैं ? इन रोगों से बचने के क्या उपाय हैं ?

८—गदी और अशिक्षित दाइयों से बच्चे पैदा करवाने से क्या हानि होती है ?

९—गाँवों में यदि कोई बीमार हो जाता है तो वह अपनी दवा किससे करवाता है ? गाँव मे चिकित्सा का क्या प्रबन्ध है ?

१०—गाँव मे कम खर्च से चिकित्सा का उचित प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है ?

११—क्षय रोग से बचने के लिए क्या करना चाहिए ?

बीसवाँ अध्याय

पशुपालन (Cattle)

गाँव में गाय और बैल का महत्व

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि भारतीय किसान खेती के कार्य के लिए बैल पर निर्भर है। यदि किसान के बैल अच्छे हैं, कमज़ोर नहीं हैं तभी वह अच्छी फसल पैदा कर सकता है। कमजोर बैलों से अच्छी फसल पैदा हो ही नहीं सकती। भूमि की जुताई से लेकर फसल को बाज़ार में बेचने जाने तक जितनी भी खेती में क्रियाएँ हैं उन सब में बैल की सहायता की पड़ती है। गाय किसान को तथा उसके बच्चों को शुद्ध दूध देती

है। अतएव अच्छी गाय और बैलों का किसान के पास होना किसान की आर्थिक स्थिति तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष में खेती बिलकुल गौ-वंश पर निर्भर है इसी कारण हिन्दुओं में गाय की इतनी प्रतिष्ठा है। किसान की सबसे मूल्यवान पूँजी उसके बैलों की जोड़ी होती है, बिना बैलों के वह कुछ कर ही नहीं सकता।

भारतवर्ष में संसार के एक तिहाई गाय-बैल निवास करते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाले धन का मूल्य लगभग बारह अरब रुपया है जो कि खेती की पैदावार के मूल्य का लगभग आधा होता है। अस्तु खेती के उपरान्त देश में यही धंधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी से गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

गौ-वंश की अत्यन्त हीन दशा

हिन्दोस्तान के लिए खेती सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय धंधा है जिस पर देश की तीन चौथाई जनसंख्या निर्भर है। उस धंधे का आधार गौ-वंश हीन दशा में हो यह आश्चर्य की बात है। किन्तु बात सची है, गौ वंश की दशा आज अत्यन्त शोचनीय है, यदि जमुना पार के मथुरा इत्यादि जिले, पंजाब के हिसार, हरियाना और मान्टगोमरी के प्रदेशों, और सिन्ध तथा काठियावाड़ की गायों को छोड़ दिया जावे तो अन्य प्रान्तों की गायों की नस्ल इतनी गिर गई है कि वह दूध देने वाला जानवर ही नहीं रह गया। उसके स्थान को भैंस ने ले लिया है। साधारणतः ये गायें सेर या डेढ़ सेर दूध देती हैं। जब कि योरोप तथा अन्य देशों में यदि कोई गाय पन्द्रह या सोलह सेर से कम दूध देती है तो वह पालने योग्य नहीं समझी जाती, माँस बनाने के कारखाने को बेच दी जाती है।

यही दशा बैलों की भी है। खेती पर काम करते हुए बैलों को देखिए अधिकतर निर्बल, नाटे, और दुबले पतले बैल दिखलाई देंगे। भला इन निर्बल बैलों से अच्छी खेती कैसे सम्भव हो सकती है? किसान को अच्छा हल, या गन्ना पेरने का कोल्हू दीजिये तो वह उसकी उपयोगिता को समझते हुए भी उसे इस कारण नहीं लेता क्योंकि उसके निर्बल बैल उसे चला न सकेंगे। बैलों की नस्ल बिगड़ गई है फिर भी हिन्दोस्तान के कुछ भागों में

.. के बैल पाए जाते हैं। जिनकी नस्ल अभी नहीं बिगड़ी है उनमें
ला' और 'हरियाना' पंजाब के, 'थार पारकर' और 'सिंधी' सिंध के,
ज गुजरात का' 'गिर' काठियावाड़ का 'औन्गल' मदरास का,
.' संयुक्त प्रान्त का, 'गोलो' मध्य प्रान्त का और 'मालवी' मध्य भारत
. हैं।

गौ-वंश की हीन दशा के कारण

गौ-वश की इस शोचनीय दशा के तीन मुख्य कारण हैं। (१) अच्छे
।रे का अकाल (२) पशु रोगों और बीमारियों से बहुसंख्यक गाय और
बैलों का नाश (३) गाय-बैलो की नस्ल को अच्छा बनाने के लिए उचित
प्रबन्ध का न होना।

आवश्यकता से अधिक बैल

चारे के सम्बन्ध में लिखने से पूर्व एक बात समझ लेने की है। एक निर्बल और अशक्त बैल जो कि एक अच्छे बैल की तुलना में एक तिहाई काम कर सकता है अच्छे बैल से कुछ ही कम खाता है। अतएव यदि अच्छे गाय या बैल रक्खे जावें तो सब काम कम गाय-बैलों से चल जावेगा और कम चारे की आवश्यकता होगी। परन्तु यदि खराब गाय-बैल रक्खे जावेंगे तो सख्या में अधिक रखने पड़ेंगे, और चारा अधिक खिलाना पड़ेगा। अच्छे बैल के रखने का खर्चा एक रद्दी बैल के रखने से कुछ ही अधिक पड़ता है। परन्तु काम को देखते हुए अच्छा बैल सस्ता बैठता है। सन् १६२६ के भारतीय शाही कृषि कमीशन की सम्मति में भारत में प्रति एकड़ और दूसरे देशों से कहीं अधिक बैल हैं। उसका मत है कि यदि ये बैल अच्छे होते तो इतने अधिक बैलों को न रखना पड़ता। भारतवर्ष में एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। किसी भी प्रदेश में गाय और बैलों की सख्या खेती के योग्य बैलों पर निर्भर रहती है। बैलों को पालने के लिए जितनी खराब दशा किसी प्रदेश की होगी उतने ही अधिक गाय और बैल उस प्रदेश में इस आशा से पाले जावेंगे कि इनमें से खेती योग्य यथेष्ट बैल मिल जावेंगे। इसका फल यह होता है कि चारे की उस प्रदेश से और भी
हो जाती है; गायें कम बच्चे देने लगती हैं। और उनके बछड़े छोटे

होने लगते हैं, जिनसे किसान का काम नहीं चलता। किसान उपयोगी और
अच्छे बैलों को प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक बछड़ों को उत्पन्न
करवाता और पालता है। जैसे जैसे संख्या बढ़ती जाती है बैलों की साइज
छोटी होती जाती है, वैसे ही वैसे चारे की कमी बढ़ती जाती है।

इनमें से अधिकांश और निर्बल बैल खेती के लिए उपयुक्त ही नहीं
होते। गौ वंश की नस्ल इस समय इतनी खराब हो गई है कि देश के सामने
यह एक बड़ी समस्या के रूप में खड़ी हो गई है। अब हम उन तीनों
कारणों की विस्तृत आलोचना करेंगे जिनके कारण गो-वंश की दशा इतनी
शोचनीय हो गई है, और यह भी बतलावेंगे कि गाय और बैलों की नस्ल को
अच्छा कैसे बनाया जा सकता है।

चारे की कमी (Fodder)

भारतवर्ष में जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे वैसे खेती के लिए
अधिक भूमि की आवश्यकता होती गई। कारण यह था कि खेती के
अतिरिक्त और कोई धंधा ही नहीं था जिसमें बढ़ी हुई जनसंख्या लग
सकती। इसका फल यह हुआ कि चरागाहों को खेतों में परिणत कर दिया
गया। गोचर-भूमि के कम हो जाने से चारे की कमी हो गई। चरागाह तो
कम हो गए किन्तु किसान ने गाय और बैलों के पालने का ढंग वही पुराना
रक्खा। भारतीय किसान का अपने पशु को पालने का ढंग यह है कि गाय
जब दूध देती है तब तो उसको घर पर सानी (भूसा-करबी, तथा घास
इत्यादि) यथेष्ट दी जाती है परन्तु जब वह सूख जाती है तब उसको बहुत
कम खाने को मिलता है। केवल वह मैदानों पर चर कर अपना पेट भरती
है। किन्तु चरागाह की कमी के कारण तथा मार्च, अप्रेल, मई और जून में
घास के जल जाने के कारण गाय प्रायः भूखी रहती है। क्रमशः वह दुर्बल
होती जाती है। बैलों को जब कि वे काम करते हैं उन दिनों उन्हें किसान
घर पर अधिक सानी देता है, किन्तु जिन दिनों खेतों पर काम कम होता है
उन्हें भी मैदानों पर चरने को छोड़ दिया जाता है।

अस्तु चारे की समस्या को हल करने के दो ही ढंग हैं, या तो चरागाहों
को बढ़ाया जावे अथवा इसी भूमि पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न किया

कृषि-कमीशन की राय में तथा अन्य कृषि-शास्त्रियों की राय में अब भूमि बढ़ाई नहीं जा सकती। अतएव इसी भूमि पर तथा खेतों पर त अधिक चारा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक । उत्पन्न करने के लिए निम्न-लिखित उपाय करने होंगे। गाँव के चारों ८ मैदान और खेतों में जो भी गड्ढे तथा ऊबड़ खाबड़ भूमि हो उसको कर दिया जावे जिससे कि वर्षा का पानी गिरते ही तुरन्त न बह जावे परन्तु धीरे धीरे बहे और भूमि उसको सोखे। इससे केवल अधिक घास ही नहीं उत्पन्न होगी वरन खेती भी अच्छी होगी। चरागाह में गाय और बैलों के चरने पर गाँव की पंचायत का नियन्त्रण होना चाहिए। यदि चरागाह का एक हिस्सा एक वर्ष पशुओं के चरने के लिए रक्खा जावे तो दूसरे हिस्से पर घास खूब बढ़ने दी जावे और उसको काट कर साइलो (Silo) में भर कर (Silage)* बना ली जावे या काट काट कर खिलाई जावे। चरागाह पर पशुओं को चराने से घास नष्ट हो जाती है, बढ़ती ही नहीं है। अतएव घास काट कर खिलाने से चरागाहों से अधिक चारा मिल सकता है। घास का ठीक उपयोग करने के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा तथा अन्य प्रकार की कड़वी की भी साइलेज बनाने से चारा स्वास्थ्यवर्धक तथा अच्छा बना रहता है। सुखा देने से बहुत सा चारा नष्ट हो जाता है और उसके गुण जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ सिंचाई के लिए पानी आसानी से उपलब्ध हो वहाँ किसानों को चारे की फसलें उत्पन्न करने को उत्साहित करना चाहिए। यदि क्लोवर (Clover) नाम की एक प्रकार की घास तथा अन्य चारे की फसल जो बहुत जल्दी तैयार हो सकती है और जिन्हें किसान बिना अपनी मुख्य फसलों का त्याग किए काट सकता है, उत्पन्न की जावें तो किसान के पास यथेष्ट चारा हो सकता है। कृषि-विभाग को चाहिए कि वह अन्य चारे की फसलों की खोज करे जो कि शीघ्र तैयार हो सकें।

*साइलो (Silo)—घास अथवा चारे को अच्छी दशा में सुरक्षित रखने वाला गड्ढा।

साइलेज (Silage)—साइलो में रक्खी हुई घास अथवा अन्य चारा ज कहलाती है। साइलेज बनाने से चारे के सारे पौष्टिक अंश सुरक्षित ।

भारतवर्ष में जंगलों में बहुत अधिक घास बेकार सूख जाती है। यदि वह घास काट कर चारे के रूप में परिणित की जा सके और रेलें घास को बहुत सस्ते किराये पर देश में एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा सकें तो जो यह अनन्त राशि में चारा नष्ट होता है और पशु भूखे मरते हैं यह अवस्था दूर हो सकती है।

प्रत्येक गाँव में जो ऊसर अथवा बंजर भूमि है उसका उपयोग भी जंगल उत्पन्न करने में करना चाहिये। जंगल विभाग शीघ्र उत्पन्न होने वाले वृक्षों का जंगल उस भूमि पर गाँव वालों की सहायता से लगवावे और उस जंगल में गाँव के लोग चारा और ईंधन अपनी आवश्यकतानुसार ले लिया करें। उस जंगल की देखभाल गाँव की पंचायत करे।

साइलेज (Silage) बनाने का उपाय

सूखे चारे को सुरक्षित रखने का सबसे उत्तम साधन साइलेज बनाना है। किसान एक गड्ढा जो ऊपर आठ फुट चौड़ा हो और तले पर सात फुट चौड़ा हो, और जिसकी गहराई आठ से दस फुट तक हो, खोदे। ज्वार, बाजरा, मक्का तथा अन्य प्रकार की कड़बी के टुकड़े करके, घास, पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य पौधों, सबों को काटने के उपरान्त तुरन्त ही ठूस ठूस कर और जहाँ तक हो सके दाब दाब कर भर दे। ऊपर से पत्थर, ईंटे, तथा भारी चीज़ें रख दे। बहुत अच्छा और स्वास्थ्यवर्धक चारा तैयार हो जावेगा।

पशुओं के रोग (Cattle diseases)

भारतवर्ष में प्रति वर्ष लाखों की संख्या में पशु रिन्डरपेस्ट (Rinder-pest) जानवरों के प्लेग, सैप्टीसीमिया (Septiceamia) तथा मुँह और पैर की बीमारियों से मरते हैं। इनमें रिंडरपैस्ट अत्यन्त भयंकर रोग है जिससे प्रति वर्ष असंख्य गाय-बैल तथा अन्य पशु मर जाते हैं। यह छूत का रोग है। जब फैलता है तो अग्नि की तरह फैलता है और बेचारा किसान अपने बैलों से हाथ धो बैठता है। पशु-चिकित्सा-विभाग सिरम (Serum) का टीका लगाकर पशुओं की रक्षा करता है। किन्तु पशु-चिकित्सालय अधिकतर ज़िलों और तहसीलों में ही होते हैं। किसान अपने बीमार बैल को भला

कैसे ले जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पशु-चिकित्सकों की संख्या बढाई जावे और वे गश्त करते रहें। सरकार का तो यह कर्तव्य है ही कि वह अधिक से अधिक पशु-चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान करे किन्तु किसानों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे जब मेले तथा पैंठों से बैल मोल लावें तो उसे एक सप्ताह तक अलग बाँध कर खिलावें, जानवरों में न मिलने दें। जब कभी कोई पशु बीमार हो जावे तो उसे अन्य जानवरों से अलहदा कर दें, और अपने जानवरों को ताल तथा पोखरों का सड़ा हुआ गंदा पानी न पिलावें। तभी किसानों के जानवर बीमारी से बच सकते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक बैलों की बीमारियों से रक्षा न की जा सकेगी तब तक किसान बढ़िया बैल नहीं खरीदेगा क्योंकि उसको उसके बीमारी से मर जाने का बराबर भय रहेगा। ऐसी दशा में वह सस्ता से सस्ता बैल खरीदना ही पसन्द करेगा।

रिन्डरपैस्ट (पशुओं का प्लेग) भयंकर छूत का रोग है। जब यह रोग फैलता है तो गाँव के गाँव साफ हो जाते हैं। प्रति वर्ष भारत में लाखों की संख्या में पशु इस रोग से मर जाते हैं।

जब पशु बीमार होता है तो वह खाना छोड़ देता है और सुस्त रहने लगता फिर उसको तेज़ बुखार चढ़ता है तथा तीन चार दिन में मर जाता है। यदि एक पशु को यह बीमारी लग गई तो यह गाँव भर में फैल जाती है।

पशु-चिकित्सा विभाग ने इसकी दवा तो निकाल ली है। जब बीमारी फैली हो और पशु के दवा (सिरम) का टीका लगवा दिया जावे तो पशु पर बीमारी का असर नहीं होता। किन्तु देश के लगभग सात लाख गाँवों में सिरम का टीका लगाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। पशुओं के डाक्टर बड़े कस्बों या शहरों में रहते हैं। गाँव के लोग उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि बहुत ज्यादा 'सिरम" तैयार कराया जावे और गाँव के मुखिया, पटवारी, गाँव की पाठशाला के अध्यापक तथा अन्य कर्मचारियों को टीका लगाना सिखा कर दवा उन्हें दे दी जावे। इस प्रकार पशुओं की इस रोग से रक्षा हो सकती है।

गाय और बैलों की नस्ल (Cattle Breeding)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाय और बैलों की नस्ल बिगड़ गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि गाँव तथा क़स्बों में अच्छे साँड़ों की कमी है। हिन्दुओं में प्राचीन काल से यह प्रथा थी कि किसी वृद्ध के मरने पर उसके वंशज एक अच्छी नस्ल के अच्छे बछड़े को साँड़ बनाते थे। बनाने के लिए बहुत अच्छा बछड़ा छाँटा जाता था। किन्तु अब लोग पुण्य तो कमाना चाहते हैं और इस कारण किसी रद्दी बछड़े को साँड़ बना देते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि ये धार्मिक-साँड़ (जो कि खराब नस्ल के हैं) हजारों लाखों की संख्या में छूटे फिरते हैं और गाय बैलों की नस्ल को खराब करते हैं। यही नहीं, बूढ़े और अशक्त साँड़ भी वंशोत्पत्ति करते रहते हैं। जबकि बछड़े पैदा करने का प्रबन्ध इतना खराब है फिर नस्ल कैसे अच्छी बन सकती है?

अच्छी नस्ल पैदा करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि इन रद्दी साँड़ों को दूर किया जावे। कुछ विशेषज्ञों का तो यह कहना है कि इन साँड़ों को मरवा दिया जावे। किन्तु हिन्दू इसको सहन न कर सकेंगे, अतएव इन रद्दी साँड़ों को नपुंसक करवा दिया जावे जिससे वे सन्तानोत्पत्ति के योग्य न रहें। भविष्य में इस प्रकार साँड़ बनाकर छोड़ने को नियम विरुद्ध बना दिया जावे। केवल अच्छी नस्ल के बछड़ों को ही साँड़ बनाया जावे। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में कुछ सरकारी साँड़ फ़ार्म हैं जहाँ अच्छी जाति के साँड़ तैयार किए जाते हैं। संयुक्तप्रान्त में भी दो ऐसे सरकारी फार्म हैं जहाँ अच्छी नस्ल के साँड़ तैयार किए जाते हैं। किन्तु इनसे इतने साँड़ प्रति वर्ष नहीं दिए जा सकते जितनों की गाँवों को आवश्यकता है। साधारणतः सौ गायों के लिए एक अच्छे साँड़ की आवश्यकता होती है।

गाय और बैलों की नस्ल तभी सुधर सकती है कि जब गाँव गाँव में अच्छे साँड़ पहुँचा दिये जावें। इसके लिए केवल सरकार पर अवलम्बित रहना ठीक नहीं है, सरकार कभी भी यथेष्ट संख्या में साँड़ बाँट न सकेगी। इसके लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, गाँव वालों को संगठित रूप में, ज़मींदारों, कोर्ट्स आव वार्ड्स, गऊशालाओं और पिंजरापोलों, गाँव की सहकारी समितियों

। अन्य गाँव के धनी व्यक्तियों को साँड़ों को पालना चाहिए और नस्ल अच्छा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

जिला बोर्ड (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) द्वारा सहायता

प्रत्येक जिला (डिस्ट्रिक्ट) बोर्ड को अपने ज़िले की गाय और बैलों की ज़ांच कराना चाहिए और उसके उपरान्त यह निश्चय करना चाहिए कि कौनसी नस्ल का साँड़ उस जिले के लिए उपयुक्त रहेगा। जहाँ जहाँ पशु-चिकित्सालय हों वहाँ वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड साँड़ रक्खे। ये समीपवर्ती गाँवों के उपयोग के लिए हों। जो भी पंचायत, गऊशाला, अथवा अन्य संस्था नस्ल अच्छी करने के लिए साँड़ मोल ले उसे बोर्ड आर्थिक सहायता प्रदान करे। गाय और बैलों की नुमाइश कराई जावे। मेलों, नुमाइशों तथा पैंठों में प्रचारकों को भेजकर इस बात का प्रचार कराया जावे कि अच्छी नस्ल किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही अच्छे साँड़ों तथा उनसे उत्पन्न गाय और बैलों का प्रदर्शन कराया जावे। जो किसान अच्छे गाय और बैल उत्पन्न करें उन्हें इनाम दिया जावे।

सरकार ज़मींदारों, तथा कोर्टस-आफ-वार्डस को उत्साहित करे कि वे साँड़ खरीदें और अपनी अपनी ज़मींदारी में गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए अपना अपना प्रयत्न करें। यदि गाँव के लोग सामूहिक रूप से सगठित होकर साँड़ रक्खें तो गाय को गाभिन कराने की थोड़ी सी फीस ली जा सकती है जिससे साँड़ का पालन हो सकता है।

सहकारी नस्ल-सुधार-समितियाँ

(Cooperative Cattle breeding Societies)

गाँव वालों को भी अपने गाय-बैलों की नस्ल सुधारने के लिए प्रयत्न-शील होना चाहिए। इसके लिए उन्हें एक सहकारी समिति गाय-बैलों की नस्ल सुधारने के लिए स्थापित करना चाहिए। पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में ये सहकारी नस्ल-सुधार-समितियाँ स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ अच्छे साँड़ रखती हैं। रद्दी और ख़राब नस्ल के साँड़ों को गाँव से हटा देती हैं। गाँव के गायों का रजिस्टर रखती हैं, गायों के गाभिन होने तथा उनके ब्याने का लेखा रखती हैं। गाय तथा उनसे उत्पन्न

सन्तान पर निशान डालती हैं। (यह निशान मिटते नहीं इनसे यह ज्ञात होता है कि नस्ल में कितनी उन्नति हुई) अच्छी नस्ल के साँड़ और गाँव की छुटी हुई गायों के संसर्ग से जो गायें उत्पन्न हों उनके दूध का लेखा रखती हैं। जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे कितना दूध देती हैं? गाँव के गाय और बैलों की बीमारी से रक्षा करने के लिए उनको टीका लगवाती हैं। नस्ल सुधार-समिति अपना खर्च चलाने के लिए सदस्यों से प्रवेश फीस लेती हैं। सदस्यों की गायों को गाभिन कराई की जो फीस ली जावे, गैर सदस्यों की गायों को गाभिन कराई की उससे दुगनी फीस ली जानी चाहिए। जब सदस्यों की गाय बच्चा पैदा करे तब नाम मात्र की फीस ली जावे। तथा सदस्य द्वारा गाय अथवा बैल बेचें जाने पर भी थोड़ी सी फीस ली जावे।

ग्राम-सुधार-विभाग

ग्राम-सुधार-विभाग को भी इस कार्य में सहयोग देना चाहिये। जो गाँव कैटिल ब्रीडिंग सोसायटी स्थापित करें और अच्छी नस्ल का साड़ मोल लें उन्हें ग्राम-सुधार-विभाग साड़ का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत मूल्य दे। इसके अतिरिक्त वह इस सम्बन्ध में प्रचार कार्य करे।

गऊशाला

गऊशालायें भी गाय और बैलों की नस्ल को अच्छा बनाने में बहुत कुछ कार्य कर सकती हैं। इस समय तो भारतवर्ष भर में हज़ारों गऊशालाओं पर हिन्दू करोड़ों रुपये व्यय करते हैं, किन्तु वे बूढ़े तथा रोगी गाय और बैलों को रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करतीं। यदि इन गऊशालाओं को गाय बैलों की नस्ल के सुधारने के केन्द्र बना दिया जावे तो बहुत कुछ काम हो सकता है।

पशुओं और विशेष कर गाय और बैलों की नस्ल तभी सुधर सकती है जब कि जनता, सार्वजनिक संस्थाएँ, तथा सरकार सभी इस ओर प्रयत्नशील हों।

हिन्दू गाय को अत्यन्त पवित्र मान कर उसकी पूजा करते हैं किन्तु गऊशालायें जिन पर हिन्दुओं का करोड़ों रुपया व्यय होता है गाय की उन्नति के लिए कुछ नहीं करतीं। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जब तक हम

५ की नस्ल की उन्नति करके उसको लाभदायक पशु नहीं बना देते तब उसके प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती।

होना यह चाहिए कि प्रत्येक गऊशाला एक या अधिक अच्छी जाति का साड़ रक्खे, जिससे कि उस इलाके में नस्ल अच्छी बने। जहाँ गऊशाला बहुत धनवान हो वहाँ अच्छे साड़ तैयार किये जावें और दूसरी गऊशालाओं को दिये जावें। गायों के पालन, चारे की व्यवस्था, साइलेज बनाने, पशुओं के रोगों की जानकारी कराने, पशुओं की चिकित्सा का प्रबंध करने का गऊशाला केन्द्र होना चाहिए।

वर्ष मे एक बार समीपवर्ती प्रदेश की गायों का प्रदर्शन किया जावे, अच्छे बछड़े और गायों पर पारितोषिक दिया जावे। इस प्रकार देश की गऊशालायें गौ-वंश की उन्नति का प्रधान साधन बन सकती हैं। आज तो वे बूढे पशुओं के रखने का स्थान मात्र हैं।

गौ-सेवा-संघ

कई वर्ष हुए महात्मा गाधी के नेतृत्व में गौ-सेवा सघ की स्थापना हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य गाय की नस्ल की उन्नति करना और इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसधान करना है। इस सघ का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो इस बात का व्रत ले अर्थात् प्रतिज्ञा करे कि वह आजीवन गाय का ही दूध, और उसके ही दूध से बने हुए घी, दही, मक्खन इत्यादि का उपयोग करेगा।

गौ-सेवा संघ ने वर्धा मे गोपुरी नामक स्थान बनाया है जहाँ गाय की नस्ल का सुधार करने, दूध को बढ़ाने, चारे इत्यादि की व्यवस्था करने और पशुओं के रोगों को रोकने तथा अन्य सभी आवश्यक समस्याओं पर अनुसंधान हो रहा है।

गौ-सेवा-संघ का यह निश्चित मत है कि भारत में जो बैल के लिए गाय पालने और दूध तथा घी के लिए भैंसे पालने की परिपाटी चल पड़ी है यह हानिकारक है। इससे हमें एक पशु के स्थान पर दो पशुओं को रखना पड़ता है और चारे की समस्या और भी विकट रूप धारण कर लेती है। अतएव सेवा-सघ का कहना यह है कि हमें गाय की ऐसी नस्ल उत्पन्न करना

चाहिए जो कि खेती के लिए उत्तम बैल भी दे और दूध भी खूब दे जिससे कि भैंस रखने की आवश्यकता न रहे। यही कारण है कि संघ जनता से गाय के दूध, घी इत्यादि को काम में लाने का आग्रह करता है।

आज तो स्थिति यह है कि गाय बैल उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है, दूध तो वह नाम मात्र को ही देती है। भैंसा खेती में काम नहीं देता इसलिए गाय पालना ज़रूरी है। लेकिन गाय के दूध न देने के कारण भैंस पालनी पड़ती है। इससे बहुत हानि होती है। इस लिए अगर ऐसी गाय की नस्ल तैयार की जावे जो दूध भी खूब दे और खेती के लिए उत्तम बैल भी पैदा करे तो यह हानि बच सकती है। गौ सेवा-संघ इसी प्रकार की दोहरे काम वाली गाय की नस्ल को उत्पन्न करने पर ज़ोर देता है।

आशा है कि इस संघ से गौ वंश का विशेष उपकार होगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाय किसान के लिए क्यों उपयोगी जानवर है ?

२—खेती में बैलों का किन किन कार्यों में उपयोग होता है ?

३—हिन्दोस्तान में किन प्रदेशों की गायें अधिक दूध देती हैं और बैलों की कौन सी अच्छी नस्लें मिलती हैं।

४—हिन्दुस्तान में गाय और बैलों की नस्लें खराब हो गई इसका क्या कारण है ?

५—क्या हिन्दोस्तान में बैल ज़रूरत से ज्यादा हैं ? यदि हैं, तो इसका कारण बतलाइये।

६—गाँवों में चारे की कमी को पूरा करने के लिए क्या उपाय काम में लाना चाहिए ?

७—साइलेज किसे कहते हैं, वह कैसे तैयार होती है और उससे क्या लाभ होता है ?

८—पशुओं की कौन कौन सी भयकर बीमारियाँ गाँवों में फैलती हैं ? उनसे पशुओं की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

९—गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिये कौन से उपाय काम में लाना चाहिए ?

१०—ज़िला बोर्ड (डिस्ट्रिक्टबोर्ड) तथा कैटिल ब्रीडिंग सोसायटी गाय-बैलों की नस्ल को सुधारने में किस प्रकार सहायक हो सकती है ?

११—गौ-सेवा-संघ गौ-वंश की उन्नति के लिए क्या कर रहा है ?

इक्कीसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

(Agriculture Improvement)

कृषि की गिरी हुई दशा

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, देश की लगभग तीन-चौथाई जन-संख्या खेती पर ही निर्भर है। खेती का देश के आर्थिक संगठन में सर्वोच्च स्थान होने पर भी खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, यह आश्चर्य की बात है। देश की निर्धनता को दूर करने के लिए जहाँ देश की औद्योगिक उन्नति करने की आवश्यकता है वहाँ उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि भूमि की उपज बढ़ाई जावे। जैसा कि हम किसी पिछले अध्याय में बतला आए हैं अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष की प्रति एकड़ उपज सबसे कम है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ कपास की पैदावार पचीस पौंड है जबकि ईजिप्ट की ४०० पौंड तथा सयुक्तराज्य अमरीका की २५० पौंड है। भारतवर्ष में एक एकड़ में जितना गन्ना उत्पन्न होता है उससे चौगुना जावा, और छै गुना क्यूबा मे उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ इंगलैंड का एक चौथाई गेहूँ उत्पन्न होता है। तथापि इन देशों और भारतवर्ष की खेती बारी के ढंग में बहुत अन्तर है, वहाँ खाद, यन्त्र, और शक्ति के द्वारा बड़े बड़े खेतों पर आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है। अतएव यह कहना कि भारतवर्ष भी प्रति एकड़ इतनी ही पैदावार उत्पन्न कर सकता है ठीक न होगा। परन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि यदि खेती बारी अधिक सावधानी से की जावे तथा आवश्यक सम्भव सुधार कर दिए जावें तो उपज बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है।

अब हम उन साधनों का वर्णन करते हैं कि जिनकी कृषि में आवश्यकता होती है और साथ ही यह बतलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि किस प्रकार पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

कृषि के आवश्यक साधन

प्रत्येक उत्पादन कार्य में चार साधन आवश्यक हैं। १. भूमि (Land) २. पूँजी, (Capital) ३. श्रम, (Labour) ४. संगठन (Organisation and Enterprise)

भूमि

भूमि के अन्तर्गत हमें निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन करना है छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या। खाद की समस्या।

पूँजी

पूँजी के अन्तर्गत, पशुधन, खेती के यन्त्र, बीज, सिंचाई, तथा साख की समस्यायें आती हैं।

श्रम तथा संगठन

श्रम तथा संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु, तथा पैदावार को बेचने की समस्यायों का अध्ययन करना होगा।

छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या

(Fragmentation of Land Holdings)

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारतीय किसान के पास जो भी थोड़ी सी भूमि होती है वह भी छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरी होती है।

यह सर्वमान्य बात है कि जब तक किसान छोटे छोटे अनेक खेतों पर खेती करने का प्रयत्न करता है जो कि एक दूसरे से बहुत दूरी पर बिखरे हुए हैं, तब तक खेती की उन्नति होना सम्भव नहीं है। खेती की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि खेत एक चक में हों।

किसी किसी प्रान्त में तो खेतों के ऐसे छोटे छोटे टुकड़े हो गए हैं और इतनी दूरी पर बिखरे होते हैं कि उन पर खेती करने से कोई लाभ हो ही

नहीं सकता। भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित होने का खेती पर बहुत बुरा असर पड़ता है। औसत किसान अपनी शक्ति और साधन का उचित उपयोग नहीं कर सकता। एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े तक उसे जाने में बहुत समय नष्ट करना पड़ता है। इन बिखरे हुए टुकड़ों की ठीक तरह से देख भाल भी नहीं हो सकती, बहुत सी ज़मीन मेड़ बनाने में व्यर्थ चली जाती है। किसानों के खेत एक जगह न होकर बिखरे होने के कारण उसे दूसरों के खेतों में से होकर जाना पड़ता है जिससे झगड़ा होता है और मुकदमेबाज़ी की नौबत आती है। सिंचाई के मामले में भी अड़चन होती है। किसान अपने सब टुकड़ों पर तो कुआँ बना नहीं सकता। और एक कुयें से दूर दूर के खेतों को पानी ले जाने में दूसरों के खेतों में से पानी ले जाना पड़ता है। बिखरे हुए खेतों के कारण अच्छे यंत्र और औज़ार काम में लाये नहीं जा सकते, क्योंकि वे भारी होते हैं और किसान उन्हें अपने कंधों पर रख कर एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर नहीं ले जा सकता। न खेत पर वह और कोई सुधार ही कर सकता है। छोटे छोटे खेतों में बाढ़ लगाने का ख़र्च भी बहुत पड़ता है इसलिए बिना बाढ़ के खेती करनी होती है। किसान के पास सारी भूमि एक चक में न होने के कारण वह अन्य देशों के किसानों की तरह अपने खेत पर मकान बना कर नहीं रहता वरन खेतों से दूर बस्ती में रहता है। वैज्ञानिक ढंग की खेती करने के लिए किसान को खेत पर ही रहना चाहिए, क्योंकि उस दशा में वह हर वक्त खेती की देखभाल कर सकेगा, उसकी स्त्री तथा बच्चे पूर्ण रूप से सहायक हो सकेंगे, तथा खाद इत्यादि का पूरा उपयोग हो सकेगा। सारांश यह है कि भूमि का छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरे होना खेती की उन्नति में बहुत बाधक है। इसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक और पहली बात है।

यह तभी हो सकता है कि जब हर एक किसान को उसकी ज़मीन (जो अभी अलग अलग टुकड़ों में बँटी है) के बराबर का एक ही बड़ा खेत दे दिया जावे और आगे इस बात का प्रबन्ध कर दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्रफल के बाद ज़मीन के टुकड़े नहीं किये जा सकेंगे। पहला प्रश्न ज़मीन के बिखरे हुए टुकड़ों की चकबंदी का है और दूसरा भविष्य में ज़मीन के बंटवारे को रोकने का है।

चकबंदी दो तरह से की जा सकती है—सहकारी चकबंदी समितियों द्वारा और कानून के द्वारा। (देखो चकबंदी समितियाँ) चकबंदी का अर्थ यह है कि ज़मीन का इस प्रकार बटवारा किया जावे कि किसान की जितनी कुल ज़मीन है वह एक चक में आ जावे। मान लो 'अ' किसान के एक टुकड़े के पास 'क' 'ख' और 'ग' के टुकड़े हैं। चकबंदी की योजना के अनुसार 'अ' को 'क' 'ख' 'ग' के टुकड़े दे दिये जावेंगे और 'क' 'ख' 'ग' को 'अ' के वे टुकड़े दे दिये जावेंगे जो उन के खेतों के पास हैं।

सहकारी चकबंदी समिति की स्थापना तभी हो सकती है कि जब सब लोग नये बँटवारे को मानें। किन्तु कानून बनाकर जो चकबंदी की जाती है उसमें यदि अधिकतर लोग नये बंटवारे को मान लेते हैं तो वह चकबंदी की योजना गाँव भर पर लागू कर दी जाती है।

खेतों के बिखरे होने का मुख्य कारण यह है कि भारत में खेती योग्य भूमि का अकाल पड़ गया है। बढती हुई जनसंख्या के लिए उदर पूर्ति का दूसरा कोई साधन नहीं रहा। गृह-उद्योग धंधे (Cottage Industries) मर चुके हैं और आधुनिक कारखानों में देश की केवल एक प्रतिशत जन-संख्या काम पा सकी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि खेती पर ज़रूरत से ज्यादा लोग निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में भूमि पर जनसंख्या का भार बेहद बढ गया है। भारतवर्ष में आज हालत यह है कि फी किसान पीछे केवल ढ़ाई एकड़ भूमि का औसत पडता है।

खेती की सफलता के लिए किसान के पास इतनी जमीन का होना नितान्त ज़रूरी है कि जिस पर उसके श्रम और साधनों के पूरा पूरा उपयोग होने की पूर्ण सम्भावना हो। भारतवर्ष में एक किसान को कम से कम एक जोड़ी बैल तो रखने ही पड़ते हैं, इसके सिवाय एक औसत कुटुम्ब में ५ प्राणी होते हैं। ऐसी हालत में खेती में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए एक किसान के पास इतनी भूमि होना आवश्यक है कि जिस पर एक जोड़ी बैल और कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के श्रम का पूरा उपयोग हो सके। इतनी भूमि को 'आर्थिक जोत' (Economic Holding) कहते हैं।

भारतीय किसान के पास इससे बहुत कम ज़मीन है और वह भी एक

जगह (चक) में नहीं छोटे छोटे टुकड़ों में बँटी रहती है और दूर दूर बिखरी होती है।

जनसख्या के पढ़ने और उद्योग-धंधों में जनसंख्या को काम न मिलने से प्रत्येक व्यक्ति को भूमि पर निर्भर होना पड़ा, जिससे भूमि का बँटवारा ज़रूरी हो गया। सयुक्त-कुटुम्ब की संस्था के टूटने से भी बँटवारा ज़रूरी हो गया।

उदाहरण के लिए हम एक सम्पन्न किसान को लेते हैं जिसके पास दस दस एकड़ के चार खेत हैं और उसके चार लड़के हैं। उसके मरने पर हर एक लड़का प्रत्येक खेत का एक चौथाई भाग लेगा क्योंकि चारों खेतों की ज़मीन एक सी नहीं होगी इस प्रकार किसान के मरने पर १६ टुकड़े हो जावेंगे। और आगे चलकर इनके और भी अधिक टुकड़े हो सकते हैं।

अतएव हमारे सामने भूमि सम्बन्धी दो समस्यायें हैं एक तो प्रति किसान भूमि का बहुत कम होना जिस पर लाभदायक खेती नहीं हो सकती दूसरी खेतों के बिखरे होने की समस्या। पहली समस्या तो तभी हल होगी जबकि देश में उद्योग-धंधों की उन्नति हो और खेती में लगे हुए ज़रूरत से ज्यादा लोग उनमें काम पा सकें। बिखरे हुए खेतों की समस्या चकबंदी से हल हो सकती है। लेकिन चकबंदी हो जाने से उस भूमि का आगे विभाजन नहीं होगा इसका कोई ठीक नहीं। यदि एक बार चकबंदी कर देने पर भूमि का फिर विभाजन हो जावे तो फिर किया धरा सब नष्ट हो जावेगा। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि एक ऐसा कानून बना दिया जाए कि एक सीमा के बाद भूमि का बँटवारा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि १० एकड़ भूमि को 'आर्थिक जोत' (Economic Holding) माना जावे तो यदि किसी के पास केवल १० एकड़ भूमि है तो उसके मरने के बाद उसका बंटवारा न हो सके। लेकिन यह सब तभी हो सकता है कि जब देश में उद्योग धंधों की उन्नति हो और ज़रूरत से ज्यादा खेती में लगी हुई जनसंख्या उनमें काम पा सके।

खाद की समस्या (Manure)

फसल उत्पन्न करने से भूमि कमज़ोर पड़ जाती है। यदि खाद काम

भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए न रक्खा जावे तो कुछ समय के बाद भूमि अनुत्पादक हो जावेगी। खाद का उपयोग केवल भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के ही लिए नहीं किया जाता वरन भूमि से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए, भी किया जाता है। गाँव में जितना भी कूड़ा, मैला, पशुओं का गोबर, पेशाब, घास, पेड़ों के पत्ते, बचा हुआ चारा हो, सब खाद के रूप में परिणत किया जा सकता है। परन्तु गाँवों में जो भी खाद की सामग्री उपलब्ध है वह अधिकतर या तो फेंक दी जाती है या नष्ट हो जाती है। पशुओं का गोबर तथा पेशाब बहुत बढ़िया खाद में परिणत की जा सकती है। वास्तव में यदि देखा जावे तो गोबर और पेशाब किसान के पास यथेष्ट मात्रा में होता है और यदि वह थोड़ा सा परिश्रम करके खाद तैयार करले तो उसके खेतों की पैदावार बहुत बढ सकती है। परन्तु यह अत्यन्त मूल्यवान खाद या तो कंडे (उपली) बनाकर किसान अपने घर में ही जला डालता है अथवा बाज़ार और शहरों में वेचकर कुछ पैसे कमाता है। किसानों की स्त्रियाँ गोबर के कडे बनावें तो जहाँ वे उसके द्वारा कुछ पैसों की बचत करती हैं उसके एवज में उन्हें अधिक फसल के रूप में कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। वर्षा में जब कडे बन ही नहीं सकते तब किसान गोबर का उपयोग खाद बनाने में करता है और शेष आठ महीने वह कडे बना कर जलाता है। यदि खेती की पैदावार को बढ़ाना है तो किसान को पशुओं का गोबर खेतों में डालना होगा। केवल गोबर ही नष्ट होता हो यही बात नहीं है। कूड़ा, चारा, पेड़ की पत्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ जिनकी खाद बनाई जा सकती है वे भी गाँवों में नष्ट हो जाती हैं और उनकी खाद नहीं बनाई जाती। हवा, पानी तथा पशु इस मूल्यवान खाद को नष्ट कर देते हैं। किसान 'जो भी खाद' इस समय तैयार करता है वह ढेर लगाकर करता है। हवा कुछ खाद को उड़ा ले जाती है, वर्षा के दिनों में बहुत सा कूड़ा इत्यादि बह जाता है और पशु तथा मनुष्यों के पैरों से खाद इधर उधर बिखरती है। साथ ही ढेर लगाकर अच्छी खाद तैयार नहीं होती। खाद को तैयार करने का सबसे अच्छा उपाय गड्ढों में खाद तैयार करना है। इससे तीन बड़े लाभ होंगे, गाँव का कूड़ा, गोबर, पेशाब, चारा, घास या पत्ती कुछ भी खराब नहीं जावेगा, एक बार वह गड्ढे में डाल दिए

पर सुरक्षित रहेगा। दूसरे गाँव में गंदगी नहीं रहेगी। तीसरे खाद अच्छी तैयार होगी।

खाद की समस्या को हल करने का सब से उत्तम उपाय यह है कि किसान को गोबर जहाँ तक हो सके न जलाने के लिए कहा जावे और खाद के गड्ढों (Manure pits) में खाद तैयार करने के लिए कहा जावे। लेकिन गाँव में ईंधन की बहुत कमी है। गाँव वालों से यह आशा करना कि वे ईंधन को मोल लेकर जलावेंगे भूल होगी। फिर जब गाँवों में ईंधन के लिए लकड़ी की कमी है तो यदि कंडे (उपले) जलाना बन्द कर दिया जावेगा तो फिर ईंधन का प्रबन्ध कैसे होगा। अतएव जब तक गाँवों में अधिक लकड़ी उत्पन्न नहीं कर दी जाती तब तक गोबर का जलाना बंद नहीं होगा। ज़रूरत इस बात की है कि हर गाँव में ऊसर तथा बंजर भूमि पर जंगल का मुहकमा ऐसे वृक्ष उत्पन्न करे जो जल्दी बड़े होते हों और गाँव की पंचायत उस छोटे से जंगल के टुकड़े की देख भाल करे। उस जंगल के टुकड़े में जो घास और लकड़ी पैदा होगी, हर गाँव वाले को उसमें से अपने काम के लिए लकड़ी काटने और घास छीलने का अधिकार हो। उसमें कोई अपने पशु न चरा सके। इससे गाँव में ईंधन और चारे की समस्या हल हो सकती है। और तभी गोबर खाद के लिए बचाया जा सकता है।

खुड्डी की खाद

स्वास्थ्य के परिच्छेद में कहा जा चुका है कि यदि गाँव में एक ओर सार्वजनिक शौच-कूप (Pit Latrines) बना दिये जावें तो गाँव गंदगी से भी बच सकता है। साथ ही कुछ खाद भी मिल सकती है। कुछ लोग खुड्डी की खाद को छूने में हिचकते हैं और उसे काम में नहीं लाते किन्तु प्रचार करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। बड़े बड़े नगरों में वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा मल को दुर्गंध रहित और सूखा बनाया जा सकता है क्योंकि वहाँ बहुत राशि में मल होता है।

हरी खाद (Green manure)

किसान यदि चाहे तो जहाँ वर्षा अधिक होती हो अथवा जहाँ नहर

आसानी से मिल सकता हो वहाँ हरी खाद (Green Manure) का भी उपयोग कर सकता है। ढैंचा, सन, मूंगफली, गवार तथा कुछ दूसरी फसलें ऐसी हैं जिन्हें पैदा करके जोत देने से खेत उर्वरा हो जाता है। किन्तु यह खाद तभी उपयोगी हो सकती है जब कि भूमि में खूब नमी हो, बिना पानी के खाद देना हानिकर है।

अन्य प्रकार की खाद

पशुओं का मूत्र भी बहुमूल्य खाद है किन्तु भारतीय किसान उसका तनिक भी उपयोग नहीं करता। उसको चाहिए कि वह अपने पशुओं को खेत पर ही बांधे, यदि यह न हो सके तो वह पशुओं के बांधने के स्थान पर मिट्टी बिछा दिया करे और उस मिट्टी को खेत में डाले।

यही नहीं घास, फूस, सूखी पत्तियाँ इत्यादि सभी को खाद में परिणत किया जा सकता है।

खाद के सम्बन्ध में किसान को सलाह देते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसान पैसे खर्च करके अधिक खाद मोल नहीं ले सकता। वह इतना निर्धन है कि क़ीमती खाद तो वह खेत में डाल ही नहीं सकता। यही कारण है कि भारतवर्ष में सलफेट-आफ अमोनिया, नाइट्रेट, इत्यादि रसायनिक खादें तथा खली, हड्डी तथा अन्य कीमती खादों का उपयोग नहीं हो सकता। हाँ फलों, तरकारी, गन्ना तथा अन्य मूल्यवान फसलों के लिए हो सकता है कि किसान मोल लेकर खेत में खाद डाल दे। किन्तु अधिकांश खाद के लिए उसे गोबर तथा घास-कूड़े पर ही निर्भर रहना होगा। मूल्यवान फसलों के लिए क़ीमती खाद का प्रचार बढ़ाना चाहिए।

खाद के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है कि जिन खेतों में खाद डाला जावे उनको अधिक जल की आवश्यकता होगी।

भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के दूसरे साधन

फसलों का हेर फेर (Rotation of Crops)

फसल उत्पन्न करने से भूमि के कुछ तत्व कम हो जाते हैं तो फसल कुछ अन्य तत्वों को भूमि में बढ़ा देती है। अस्तु अनुभवी किसान फसलें

प्रकार उत्पन्न करता है कि जिससे जो तत्व एक फसल के कारण हो गए हैं वह दूसरी फसल पूरी कर दे। इसको फसलों का हेर फेर ते हैं। भारतीय किसान फसलों के हेर फेर के सिद्धान्त को प्राचीन काल जानता है। लेकिन केवल फसलों के हेर फेर से ही भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये नहीं रक्खा जा सकता। हाँ भूमि की उपजाऊ शक्ति को तेज़ी से घटने से रोका जा सकता है। यही कारण है कि किसान एक खेत पर लगातार एक सी फसल कई वर्ष तक नहीं पैदा करता। वह बदलता रहता है।

भूमि को आराम देने से भी भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है क्योंकि भूमि वायु से नाइट्रोजन इत्यादि तत्वों को ले लेती है। लेकिन इस देश में घनी आबादी के लिए भोजन इत्यादि उत्पन्न करने के कारण भूमि को यथेष्ट आराम नहीं दिया जा सकता।

युद्ध के उपरान्त देश में जो भोजन का अकाल पड़ा है उससे सरकार तथा जनता सभी का ध्यान पैदावार बढ़ाने की ओर गया है और सरकार ने विशेषज्ञों को बुला कर खाद के सम्बन्ध में जाँच करवाई है। अब सरकार के प्रोत्साहन से ऐसे कारखाने स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है जो नाइट्रोजन से खाद उत्पन्न करेंगे इस प्रकार देश में खाद की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

फिर भी जब तक हम किसान को अपने पशुओं के गोबर, घर के कूड़े, बचा हुआ घास फूस तथा पशुओं के मूत्र से बढ़िया खाद बनाने के लिए उत्साहित नहीं करते तब तक खाद की समस्या हल नहीं हो सकती।

पशुधन (Cattle)

किसान की सबसे महत्व पूर्ण पूंजी उसके बैल हैं। जब तक किसान के गाय और बैल कमज़ोर हैं और गाय यथेष्ट दूध नहीं देती तब तक खेतीबारी की दशा सुधर नहीं सकती। गाय और बैलों की उन्नति कैसे हो सकती है. हम पिछले अध्याय में ही लिख चुके हैं।

खेती के यन्त्र (Agricultural Machinery-Tractor)

भारतवर्ष के छोटे छोटे खेतों में ट्रैक्टर* तथा अन्य बड़े बड़े यन्त्र काम नहीं दे सकते, अतएव भारतवर्ष में इनका अधिक प्रचार नहीं हो सकता। कारण यह है कि छोटे छोटे खेतों पर बड़े बड़े यन्त्र न तो लाभदायक ही सिद्ध होंगे और न किसान उन्हें रख ही सकता है। जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय किसान अपना देशी हल तथा अन्य यन्त्र काम में ला रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि देशी औज़ार उसकी स्थिति को देखते हुए अधिक उपयोगी हैं। देशी हल तथा औज़ारों में निम्नलिखित गुण हैं। १—वे बहुत सस्ते हैं, निर्धन किसान हल तथा अन्य औज़ारों पर अधिक व्यय नहीं कर सकता। २—वे बहुत हलके होते हैं, किसान देशी हल को अपने कंधे पर उठा कर एक खेत से दूसरे खेत पर ले जा सकता है। ३—देशी हल तथा औजार बहुत सादे होते हैं। किसान को उनके उपयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती। ४ गाँव के बढ़ई और लोहार देशी हल और औजारों की मरम्मत भली भाँति कर लेते हैं, परन्तु आधुनिक यन्त्रों की मरम्मत गाँव के बढ़ई और लोहार न कर सकेंगे। ५ देशी हल हलके होने के कारण किसान के कमज़ोर बैलों से खिंच जाते हैं परन्तु बहुत भारी हल या कोल्हू इन निर्बल बैलों से खिंच ही नहीं सकते।

यही कारण है कि आरम्भ में जब कृषि-विभाग ने विदेशी हलों और यन्त्रों का भारतवर्ष में प्रचार करना चाहा तो वे सफल नहीं हुए। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि देशी हलों-औज़ारों में तनिक भी सुधार की आवश्यकता नहीं। सुधार की आवश्यकता है, किन्तु ऊपर लिखी हुई बातों को ध्यान में रख कर ही सुधार करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि-विभाग का इंजिनियरिंग विभाग ऐसे हलों और औजारों का निर्माण करे जो सस्ते हों, हलके हों, और सादे हों। इस प्रकार के हलों और औज़ारों का आविष्कार करके जो ऊपर लिखी शर्तों को पूरा करें, और भूमि को देखते हुए उपयोगी सिद्ध हों उन्हें अधिक

---

*ट्रैक्टर—भूमि को जोतने के लिए भाप या तेल से चलने वाली बड़ी मशीन।

संख्या में बनाने के लिए कारखाने खोले जावें, जिससे कि वे सस्ते से सस्ते दामों पर बेचे जा सकें। कृषि-विभाग ने अपनी पुरानी नीति को छोड़ कर अब यही नीति बनाई है किन्तु इस दिशा में अधिक काम नहीं हुआ है। मैस्टन, हिन्दुस्तान, हिसार, राजा इत्यादि कुछ हल हैं जिनका कृषि-विभाग प्रचार कर रहे हैं, परन्तु अभी इन हलों में भी सुधार की आवश्यकता है। कोल्हू, गुड़, तथा शक्कर बनाने के यन्त्र, चारा काटने के औज़ार, तथा अन्य प्रकार के अच्छे औज़ार भी तैयार किए गए हैं जिनका अधिकाधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। हाँ जब सरकारी फार्म (Cooperative Farm) स्थापित हो तब बड़े यन्त्र काम दे सकते हैं।

बीज (Seed)

यह तो सभी जानते हैं कि किसान खेत में जैसा बीज डालेगा वैसी फसल तैयार होगी। खराब बीज डालकर कोई अच्छी फसल उत्पन्न नहीं कर सकता। इस समय अधिकतर किसान महाजन अथवा गाँव के ज़मींदार से सवाए ड्योढ़े पर बीज उधार लेकर खेत में बोते हैं। महाजन खत्तियों में भरा हुआ रद्दी और घुना बीज किसान को उधार देता है। खराब बीज के कारण किसान की फसल भी अच्छी नहीं होती। बीज की समस्या को हल करने के लिए दो बातें मुख्य हैं। प्रथम अच्छा बीज उत्पन्न करना, दूसरे उस बीज को किसानों को देना। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कृषि-विभागों ने मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण फसलों के बीज की लगातार अनुसंधान करने के उपरान्त आशातीत उन्नति की है। प्रान्तों के कृषि-विभागों ने कपास, गेहूँ, गन्ना, चावल तथा जूट के बीजों में आश्चर्यजनक उन्नति की है किन्तु अभी मोटे अनाज (मक्का ज्वार, बाजरा, जौ तथा भिन्न भिन्न दालों) तथा सन इत्यादि के उत्तम बीज तैयार नहीं किए गए हैं। उत्तम बीज तैयार करने का कार्य विशेषज्ञों का है, और आशा है कि धीरे धीरे कृषि विभाग ऊपर लिखी हुई फसलों के लिए उत्तम बीज उत्पन्न करेगा। परन्तु बीज की सबसे कठिन समस्या बीज का किसानों को देना है। यद्यपि कृषि विभाग सीड-डिपो (बीज भंडार) खोल कर गाँव वालों को उत्तम बीज देने का कार्य कर रहा है। परन्तु यह सर्वमान्य बात है कि बीज देने का कार्य कृषि विभाग पूरी तरह

नहीं कर सकता। इस समय कृषि-विभाग अपने फार्मों पर, ज़मीदारों तथा किसानों के खेतों पर, अपनी देख रेख में उत्तम बीज को उत्पन्न करवा कर अपने बीज भंडारों के द्वारा उसे किसानों को बेंच देता है। सहकारी समितियाँ तथा ग्राम-सुधार के कार्य-कर्ता भी इस कार्य में कृषि विभाग की सहायता करते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि कृषि-विभाग प्रति वर्ष असख्य किसानों को उत्तम बीज यथेष्ट मात्रा मे नहीं दे सकता। अतएव प्रत्येक किसान को एक बार उत्तम बीज कृषि विभाग से लेकर स्वय प्रति वर्ष अपना बीज तैयार करना चाहिए। जिस खेत पर बीज तैयार करना हो उसे अच्छी तरह से जोतना तथा उस पर खाद डालना चाहिए। यदि प्रत्येक गाँव में किसान अपने लिए बीज तैयार करलें तो अच्छे बीज की समस्या हल हो सकती है। परन्तु कुछ समय के उपरान्त उत्तम बीज भी खराब होने लगता है। अतएव चतुर किसानों को सतर्कतापूर्वक यह देखते रहना चाहिए कि उनका बीज खराब तो नहीं होता जा रहा है। यदि उन्हें बीज के ख़राब होने के चिन्ह दृष्टिगोचर हो तो कृषि विभाग से दूसरा उत्तम बीज लेकर फिर कुछ वर्षों तक उसे अपने खेतों पर पैदा करके प्रति वर्ष बोते रहना चाहिए। किसान को अपने उत्तम बीज को शुद्ध बनाए रखने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

कृषि-विभाग द्वारा दिया हुआ बीज कुछ अधिक कीमती होता है। किसान को इसकी चिन्ता न करनी चाहिए। बीज का थोड़ा अधिक मूल्य देकर भी उत्तम बीज खरीदना चाहिए। फिर वह स्वयं प्रति वर्ष बीज बचा कर रख सकता है, या किसी ऐसे पड़ोसी से वह उत्तम बीज ले सकता है कि जिसने उसको बोया हो। जो कुछ भी हो किसान को बीज अच्छा ही डालना चाहिए।

सिंचाई (Irrigation)

भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों मे खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि वर्षा यथेष्ट नहीं होती, और यदि वर्षा होती है तो वह वर्षा के केवल तीन या चार महीनों में, अतएव रबी की फसल बिना सिंचाई के हो ही नहीं सकती। आसाम, पूर्वीय बंगाल तथा पश्चिमीय घाट के समुद्र-तट के मैदान को छोड़ कर किसी भी प्रान्त में खेती सिंचाई के बिना नहीं हो

करते। अधिकतर प्रान्तों में तो पानी का अकाल रहता है, परन्तु फिर भी किसान वर्षा से जितना लाभ उठाया जाना चाहिए नहीं उठाता।

वर्षा का जल (Rain water)

गाँवों में भूमि बहुत ऊबड़-खाबड़ होती है, कहीं कहीं बड़े गहरे नाले बन जाते हैं और कहीं भूमि अधिक ऊँची और अधिक नीची होती है। इसका फल यह होता है वर्षा का जल भूमि पर गिरते ही बड़ी तेज़ी से बहता है, उन प्राकृतिक नालों तथा निचली भूमि के कारण उसकी तेजी और भी बढ जाती है। जहाँ ऊबड़-खाबड़ जमीन अधिक होती है वहाँ वर्षा के दिनों में ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बड़ी नदी तेज़ी से बहती हो। उस क्षेत्र का सारा जल शीघ्रतापूर्वक बह जाता है और साथ ही वह भूमि के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है। पानी उस क्षेत्र पर अधिक देर तक नहीं ठहरता, अतएव भूमि वर्षा के जल को सोखने में असमर्थ रहती है। भूमि के अन्दर यथेष्ट जल न जाने से भूगर्भ बहने वाला जल स्रोत सूखता है, और अधिक गहराई पर चला जाता है जिसके कारण कुयें बेकार हो जाते हैं। प्रदेश के ऊबड़ खाबड़ होने से केवल इतनी ही हानि नहीं होती, इससे भी भयकर हानि यह होती है कि शीघ्रतापूर्वक बहने के कारण जल कटाव करता है, अर्थात् भूमि को काटता है (Erosion of soil) धीरे धीरे और अधिक नाले बन जाते हैं और जल का उपद्रव और भी अधिक हो जाता है। कुछ समय के उपरान्त वह सारा प्रदेश ऊबड़ खाबड़ भूमि का रूप धारण कर लेता है, और खेती के अयोग्य बन जाता है। जल के कटाव से भूमि की रक्षा करने का एकमात्र साधन यह है कि उस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में वृक्ष लगाए जावें और इस प्रकार जल को भूमि के नष्ट करने से रोका जावे। इसके अतिरिक्त यदि गाँव की भूमि को समथल तथा चौरस कर दिया जावे और चारों ओर कुछ ऊँची मेड़ बना दी जावे तो वर्षा का जल बहुत देर तक पृथ्वी पर रहने के कारण भूमि उसे अधिक सोख ले। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि सारा गाँव संगठन रूप में इस कार्य को करे। इससे तीन बड़े लाभ होंगे, एक तो भूमि यथेष्ट जल पा लेगी जिससे सिंचाई की कम आवश्यकता होगी, दूसरे

उस क्षेत्र के कुओं में सिंचाई के लिए यथेष्ट जल रहेगा, तीसरे भूमि का नाश नहीं होगा।

कुओं के द्वारा सिंचाई (Well Irrigation)

भारतवर्ष में कुएँ सिंचाई के मुख्य आधार हैं। यद्यपि नहरों के द्वारा भी यथेष्ट सिंचाई होती है। परन्तु कुओं का महत्व इस कारण है कि उनके द्वारा किसान सिंचाई के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। वह जब चाहे सिंचाई कर सकता है। कुओं का पानी नहर के पानी से फसल के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जिस किसी भी प्रदेश मे मीठा पानी साधारण दूरी पर मिलता है वहाँ कुओं के द्वारा ही सिंचाई होनी चाहिए। जहाँ नहरें हैं वहाँ भी कुएँ खोदे जाने चाहिए जिससे किसान हर समय पानी पा सके।

कुएँ से पानी निकालने के लिए भारतवर्ष में रहँट तथा चरसा दो साधनों का उपयोग होता है। रहँट (Persian wheel) से एक लाभ यह है कि एक ही आदमी रहँट चला सकता है। यहाँ तक कि एक छोटा लड़का भी रहँट को चला सकता है। रहँट में लड़के को केवल बैलों को हाँकने का ही काम होता है। परन्तु चरसा में दो आदमियों की आवश्यकता होती है। एक बैलों को हाँकता है दूसरा चरसा (पुर) को लेता है। राजपूताना तथा मध्यभारत में चरसा (पुर) के निचले भाग में चमड़े का एक मोटा नल और जुड़ा रहता है, उस नल का मुँह एक पतली डोरी से बँधा रहता है। डोरी का सिरा बैल हाँकने वाले के हाथ मे रहता है। जब पुर कुएँ के ऊपर आ जाता है तो बैल हाँकने वाला उस डोरी को ढीला कर देता है और पुर का पानी उस चमड़े के नल द्वारा गिर पड़ता है। इस प्रकार पुर का लेने वाले मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर भी जो कुएँ बहुत गहरे नहीं हैं उन पर रहँट लगाना ही अधिक सुविधाजनक होता है।

संयुक्त प्रान्त में ट्यूब-वेल (Tube wells in U P.)

संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने लगभग दो करोड़ रुपये व्यय करके १६५० ट्यूब वेल खुदवाये हैं और भी खोदे जा रहे हैं। बदायूँ, मुज़फ़्फ़रनगर, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, . . . जिलों में बहुत बड़ी

ण्या में, ट्यूब वेल खोदे जा रहे और गंगाजी की नहर के जल से तैयार की हुई बिजली के द्वारा यह ट्यूब-वेल चलते हैं। एक ट्यूब-वेल लगभग एक हजार एकड़ भूमि को सींच सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने में दो लाभ हैं। प्रथम तो किसान को जब वह चाहे तब सिंचाई के लिए पानी मिल सकता है। नहर की भाँति वह इस आशा में बैठा नहीं रहता कि जब नहर मे जल आवेगा तब सिचाई हो सकेगी। इसका फल यह होता है कि जब नहर मे पानी आता है तो किसान आवश्यकता से अधिक पानी खेत में दे देता है जिससे फसल को हानि पहुँचती है। क्योंकि किसान को यह ज्ञान नहीं होता है कि अब नहर में कब पानी आवेगा। नहर का पानी अनिश्चित है और ट्यूब-वेल का पानी निश्चत है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने पर जितना भी पानी किसान लेता है सब का उपयोग हो जाता है, इस कारण किसान पानी को किफायत से ख़र्च करता है। ट्यूब-वेल से एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि गाँवों मे जहाँ पीने के लिए शुद्ध जल की कमी है वहाँ शुद्ध जल मिल सकेगा। यदि प्रत्येक ट्यूब वेल पर रेडियो लगा दिया जावे तो गाँवों के नीरस जीवन में मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है। ट्यूब, वेल के द्वारा एक लाभ और भी है—अर्थात् जिन ज़िलों में होकर नहरें गई हैं उनमें नहरों के दोनों ओर ट्यूब-वेल बना कर पानी नहरों में डाल दिया जाता है जिससे नहरों में प्रान्त के पश्चिमीय ज़िलों के लिये यथेष्ट पानी हो जाता है। पश्चिमीय ज़िलों म वर्षा कम होती है और साधारणत नहरों में भी वहाँ के लिए यथेष्ट जल नहीं रहता। बात यह है कि पूर्वीय जिलों में ही नहर का जल बहुत कुछ समाप्त हो जाता है जब पश्चिमीय ज़िलों में नहरें पहुँचती हैं तो उनमें यथेष्ट जल नहीं रहता। अब और ज़िलों में भी ट्यूब-वेल खोदे जावेंगे। प्रान्तीय सरकार अब इस योजना को पूर्वी ज़िलों मे चला रही है।

नहर के द्वारा सिंचाई (Canal Irrigation)

नहरों के द्वारा सिंचाई उत्तर के प्रान्तों में बहुत होती है। सिंध, पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त बहुत कुछ नहरों पर ही अवलम्बित हैं। किसान नहर के पानी का कभी दुरुपयोग करते हैं, आवश्यकता से अधिक पानी खेत में दे

देते हैं। कुएँ के पानी को किसान बहुत सावधानी से तथा सतर्कता से ख़र्च करते हैं, किन्तु नहर के पानी के प्रति वे उदासीन रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा आबपाशी की दर निश्चित कर दी गई है। उदाहरण के लिए यदि एक किसान ईख की सिंचाई करता है और प्रति बीघा कम पानी ख़र्च करता है तो उसको आबपाशी प्रति बीघा उतनी ही देनी होगी जितनी कि एक दूसरा किसान देता है यद्यपि वह पहले किसान से कहीं अधिक पानी ख़र्च करता है। अतएव प्रत्येक किसान को यही लालच होता है कि वह अधिक से अधिक पानी ख़र्च करे इससे भूमि को हानि होती है। अनुमान किया जाता है कि सयुक्त प्रान्त तथा पजाब में जितनी भी नहरें निकल सकती थीं निकाल दी गईं।

तालाब (Tanks)

पहाड़ी प्रदेश मे अधिकतर बाँध बनवाकर वर्षा के जल को रोक लिया जाता है और उससे सिचाई की जाती है। राजपूताने के दक्षिणी भाग, मालवा, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में अधिकतर तालाबों से ही सिंचाई होती है, क्योंकि नहरे वहाँ निकाली ही नहीं जा सकतीं। कुओं से सिंचाई अवश्य होती है। परन्तु कुओं को खोदना तथा उनको बनाना इन पहाड़ी प्रदेशों में व्ययसाध्य है। राजपूताना तथा मध्य भारत के देशी राज्यों मे जहाँ राज्यों ने बड़े-बड़े बाँध और तालाब सिंचाई के लिए बनवाए हैं वहाँ गाँव वालों ने सामूहिक रूप से भी छोटे छोटे बाँध बनाकर सिंचाई के साधन उपलब्ध कर लिये हैं। इन तालाबों की मरम्मत भी गाँव वाले मिल कर स्वयं करते हैं। साधारणतः यह नियम होता है कि गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को एक घन फुट मिट्टी बाँध पर डालनी पड़ती है। दक्षिण में ब्रिटिश शासन से पूर्व इस प्रकार के हजारों छोटे-छोटे बाँध (पट बधा) गाँव वाले बना लेते थे किन्तु ब्रिटिश शासन काल म वे तालाब नष्ट हो गए। प्रयत्न करना चाहिए कि किसान इस प्रकार सामूहिक रूप से वर्षा के जल का जितना भी उपयोग कर सके उतना करे।

यदि कहीं भूमि बहुत ऊँची है और नदी, तालाब अथवा नहर बहुत नीचे पर हैं वहाँ बिजली, आयल एँजिन अथवा रँहट जो भी सुविधाजन-

तथा प्राप्य हो, उसका उपयोग पानी को ऊपर उठाने में किया जा सकता है। बिजली का उपयोग तो उसी क्षेत्र में किया जा सकता है जहाँ वह सस्ते दामों पर उत्पन्न की जाती हो। यह कार्य केवल सरकार कर सकती है। आइल एजिन जमींदार तथा समृद्धिशाली किसान लगा सकते हैं। रॅहट का उपयोग प्रत्येक किसान कर सकता है।

साख (Credit)

प्रत्येक धंधे में साख की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन कार्य (Production) में लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति को पूँजी (Capital) की आवश्यकता होती है। किसान को खेती के लिए ऋण लेना पड़ता है परन्तु भारतवर्ष में किसान इतना ग़रीब है कि उसे अनुत्पादक (Unproductive) तथा उत्पादक (Productive) सभी कार्यों के लिए महाजन से ऋण लेना पड़ता है। महाजन किसान की ग़रीबी का अनुचित लाभ उठा कर उससे बहुत अधिक सूद लेता है। ऋण इसलिए लिया जाता है कि उससे खेती की जावे और खेती के लाभ से सूद सहित ऋण चुका दिया जावे। परन्तु यदि सूद इतना अधिक हो जितना कि खेती से लाभ हो ही न सके तब तो ऐसा ऋण किसान को सदा के लिए ऋणी बना देता है। यही अवस्था भारतीय किसान की है। ग्रामीण ऋण के सम्बन्ध में 'ग्रामीण ऋण तथा उसके कारण' शीर्षक अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा जायगा।

अतएव किसानों को साख का प्रबन्ध करने के लिए अपने अपने गाँव में 'कृषि सहकारी साख-समिति' (Cooperative Credit Society) की स्थापना करना चाहिए। "कृषिसहकारी साख-समिति" के विषय में एक पृथक् अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

श्रम और संगठन (Labour and organisation)

श्रम और संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को बेचने की समस्याओं का वर्णन होगा। ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य तथा उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं। जब तक किसानों का स्वास्थ्य अच्छा न होगा और उन्हें शिक्षित नहीं बनाया जावेगा तब तक वे अच्छे खेतिहर नहीं बन सकेंगे।

फसलों के शत्रु (Enemies of crops)

केवल अच्छे बीज, खाद और हल-बैल से ही खेती बारी की उन्नति नहीं हो जावेगी। यदि एक ओर फसलों को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जावे और दूसरी ओर फसलों के शत्रु उसे नष्ट कर दें तो सारा प्रयत्न निष्फल जावेगा। अतएव फसलों को उनके शत्रुओं से बचाने की बहुत आवश्यकता है। फसलों के दो प्रकार के शत्रु होते हैं। एक तो फसलों के कीड़े जो फसल को नष्ट कर देते हैं दूसरे वे जंगली तथा पालतू पशु और पक्षी जो फसलों को खा जाते हैं।

फसलों के कीड़े बहुत भयंकर होते हैं। प्रत्येक फसल का कोई कीड़ा होता है। जिस क्षेत्र में भी कीड़ा लग जाता है उस क्षेत्र की फसल को वह नष्ट कर डालता है। फिर कोई खेत उससे बच नहीं सकता। कभी तो फसल के कीड़ों का ऐसा भयंकर प्रकोप हो जाता है कि साधारण प्रयत्न से वह जाता ही नहीं। तब कृषि विभाग को ऐसे बीज उत्पन्न करना पड़ता है जिसमें वह कीड़ा नहीं लग सकता। भारतवर्ष में ही केवल यह समस्या हो ऐसी बात नहीं है—जर्मनी और अमेरिका जैसे देश. में भी फसल के कीड़ों की समस्या उठ खड़ी होती है।

फसल के कीड़े विदेशों से भी आ सकते हैं इस कारण प्रत्येक देश ने ऐसे कानून बना दिए हैं कि जिससे ऐसी कोई खेती की पैदावार जिसमें बीमारी अथवा कीड़े लगे हों देश में आने से रोकी जा सकती है। सन् १६१४ में भारतवर्ष में भी एक कानून बना दिया गया जिसके अनुसार यदि बन्दरगाह के अधिकारी किसी खेती की पैदावार को कीड़ों से युक्त पावे तो उसको देश के अन्दर न आने देवे। इस कानून के द्वारा विदेशों से कीड़ों का भारतवर्ष मे आने का भय तो नहीं रहा, किन्तु देश के अन्दर फसलों के कीड़े तथा बीमारियों की कमी नहीं है।

फसल के कीड़ों को नष्ट करने अथवा उन्हें उत्पन्न ही न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि-विभाग तथा किसानों का पूरा सहयोग हो। यही नहीं आवश्यकता पड़ने पर सारे गाँव को संगठित रूप में कीड़ों को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह ध्यान में रखने की बात है

कि यदि इस वर्ष कुछ खेतों में कीड़ा है तो अगले वर्ष वह अन्य खेतों पर भी आक्रमण करेगा। टीड़ी और फसल के कीड़ों को कृषि-विभाग के बतलाए हुए उपायों के अनुसार सामूहिक रूप से ही नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य में सम्पूर्ण गाँव के सहयोग की आवश्यकता होती है।

साधारणतः फसल में बीमारी अथवा कीड़े लगने के वे ही कारण हैं जो कि मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न होने के कारण हैं। अर्थात् कम भोजन अथवा हानिकर भोजन ही इन रोगों का मुख्य कारण है। जो खेत ठीक तरह से जोते नहीं जाते जिनमें कम खाद डाली जाती है अथवा कम सड़ी खाद डाल दी जाती है, जिस खेत मे निराई नहीं होती, आवश्यकता से अधिक अथवा बहुत कम पानी दिया जाता है, उस खेत मे फसल निर्बल होती है और उस पर बीमारी तथा कीड़ों का आक्रमण शीघ्र होता है। किसान को निरन्तर फसल पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिए और जैसे ही उसे ज्ञात हो कि फसल मे बीमारी या कीड़ा लग रहा है उसे तुरन्त कृषि विभाग से सलाह लेकर उसका इलाज करना चाहिए।

फसल में कीड़ों के लगने का एक मुख्य कारण यह है कि किसान अथवा वे महाजन और ज़मींदार जो कि खत्तियों और कोठरों मे बीज के लिए अनाज भरते हैं, बीज की सफ़ाई का ध्यान नहीं रखते, और न उन खत्तियों या कोठारों को ही साफ़ करते हैं। इसका फल यह होता है कि बीज खराब हो जाता है, उसमे कीड़ा लग जाता है, और जब फसल तैयार होती है तो कीड़ा करोड़ों की सख्या में बढ कर फसल को नष्ट करता है। बीज तथा बीज भडार को कीड़ों से मुक्त करने का यह एक सरल तथा सफल उपाय है कि जहाँ बीज रक्खा जाता है उसे हर बार जब उसमे बीज भरा जावे साफ कर लिया जावे, और बीज को भी साफ़ कर लिया जावे। इसके उपरान्त उस कोठार को चारों ओर से गीली मिट्टी से बन्द करके, एक अंगीठी में जलते हुए कोयलों पर गंधक डाल कर उसे कोठार मे रख दिया जावे। जब खूब धुआँ भर जावे तो कोठार का दरवाज़ा बन्द कर दिया जावे। दो दिन बन्द रख कर कोठार को साफ़ किया जावे तब उसमे बीज भरा जावे।

परन्तु इतने पर भी यदि किसी के खेत में अथवा अधिक खेतों में कीड़े लग जावे तो उस समय से पूर्व जब कि वे अपनी वंशवृद्धि करते हैं उनको

नष्ट कर दिया जाना चाहिए। उनके अंडे तथा नर और मादाओं के जिस प्रकार कृषि विभाग बतलाए अवश्य नष्ट कर डालना चाहिए। इन कीड़ों को नष्ट करने तथा टीड़ी के अंडों और असख्य टीड़ियों को भूमि से खोद कर निकालने तथा उन्हें खाइयों में दबा कर मार डालने के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। कृषि विभाग को भिन्न भिन्न फसलों के कीड़ों को कब और कैसे नष्ट किया जाना चाहिए इसका प्रचार करना चाहिए, और गाँव के लोगों को मिला कर कीड़ों के विरुद्ध युद्ध करना चाहिए। इस कार्य में गाँव के स्काउट (बालचर) तथा गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियों से खूब सहायता मिल सकती है। गाँव के बालचरों और स्कूल के विद्यार्थियों को यह बतलाया जाना चाहिए कि इन कीड़ों को नष्ट करना गाँव की सबसे बड़ी सेवा है।

जिस खेत में कीड़ा लग चुका हो उसकी फसल काट लेने के उपरान्त उस खेत में आग लगा देनी चाहिए और दूसरे साल नया और अच्छा बीज मोल लेकर खेत में डालना चाहिए। इतना करने पर ही कीड़े को समूल नष्ट किया जा सकता है।

परन्तु जब कोई कीड़ा बहुत बड़े क्षेत्र में बहुत दिनों तक पनपता रहता है तब इस प्रकार सारे प्रयत्न करने पर भी वह दूर नहीं होता। उस दशा में कृषि विभाग को ऐसा बीज उत्पन्न करना चाहिए कि जिसमें वह कीड़ा न लग सके।

कीड़ों के अतिरिक्त जंगली पशु भी खेती का बहुत नुकसान करते हैं। बम्बई प्रान्त में इस समस्या पर विचार करने के लिए एक कमेटी बिठलाई गई थी उसका अनुमान था कि केवल बम्बई प्रान्त में प्रति वर्ष जंगली पशुओं के द्वारा सत्तर लाख रुपए की खेती की हानि होती है। सुअर, गीदड़, चूहे (जंगली), बिलाव, बन्दर, तथा अन्य जंगली पशु खेती को नष्ट कर डालते हैं। जंगली पशुओं से फसल की रक्षा करने के दो ही उपाय हैं। (१) खेतों के चारों ओर काँटेदार झाड़ी अथवा मिट्टी की ऊँची बाड़ बनाई जावे जिससे कि जंगली जानवर फसल को नष्ट न कर सकें। (२) गाँव वालों को ऐसे जानवरों को मारने के लिए बन्दूक का लायसेंस दे दिये जावें। किन्तु बाड़ बनाना अथवा कोई काँटेदार झाड़ी खेतों के चारों ओर लगाना

५ तथा खर्चीला है। यदि खेत बिखरे हुए न हों, एक चक में हों तो किसान बाड अथवा कांटेदार झाड़ी लगा सकता है।

खेती की पैदावार बेचने की समस्या

(Marketing of Agricultural Produce)

किसान के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न करे। अच्छी फसल उत्पन्न करने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य भी प्राप्त करे। यदि किसान खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न कर भी ले किन्तु उसको अपनी पैदावार का कम मूल्य मिले तो उसका परिश्रम और व्यय व्यर्थ जावेगा। अतएव किसान को अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य मिलना चाहिए। परन्तु आज कल जैसी अवस्था है उसके कारण किसान को अपनी पैदावार को सस्ते दामों पर बेंच देना पड़ता है जैसा कि क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की आवश्यकता बतलाते हुए पहिले कहा जा चुका है।

किसान की निर्धनता उसको सस्ते दामों पर अपनी पैदावार बेंचने के लिए विवश करती है। यदि वह किसी महाजन अथवा व्यापारी का ऋणी है तो उसको उस व्यापारी अथवा महाजन के हाथ पैदावार बेचनी होती है। कहीं कहीं ऋण लेते समय यह ही बात तय हो जाती है कि किसान फसल सस्ते दामों पर अपने महाजन को देगा। यदि किसान अपने महाजन को बेंचने के लिए बंधा नहीं हो तो भी उसे लगान, आबपाशी तथा ऋण चुकाने के लिए फसल तैयार होते ही बाज़ार में बेंचनी पड़ती है। उस समय भाव गिरा हुआ होता है। अतएव किसान को सहकारी विक्रय समितियों के द्वारा ही अपनी फसल बेचना चाहिए तभी उसको अपनी पैदावार का अच्छा मूल्य मिल सकता है। (देखो अध्याय १० और २८)

गाँवों की सड़कें (Village Roads)

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों में पक्की सड़कें तो हैं ही नहीं, अधिकांश गाँवों की कच्ची सड़कें भी इतनी ख़राब होती हैं कि

गाँवों से पैदावार को गाड़ियों में भरकर मंडियों तक लाना बहुत कठिन होता है। बरसात में तो वे दलदल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होतीं। गाँवों की सड़कें खराब होने के कारण गाँव में गमनागमन के साधनों का नितान्त अभाव होता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक गाँवों की सड़कों का सुधार नहीं होगा तब तक गाँवों की आर्थिक दशा भी नहीं सुधर सकती। परन्तु गाँव की सड़कों को सुधारने का काम इतना खर्चीला है कि जब तक किसान और ज़मींदार कुछ स्वयं करने को तैयार न हों तब तक सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। किन्तु सड़कों को सुधारने के लिए सारे गाँव को संगठित रूप में प्रयत्न करना होगा। कहीं कहीं एक से अधिक गाँवों के सहयोग की आवश्यकता होगी। सड़क सुधर जाने पर बैलों की टाँगे और गाड़ियों के पहिए नहीं टूटा करेंगे।

मंडियों का पुनर्संगठन (Market Organisation)

मंडियों में किसान को कई तरह से लूटा जाता है जैसे कि पहले बताया जा चुका है। दलाल अधिकतर व्यापारी को लाभ करने का प्रयत्न करते हैं। किसान के दामों में से बहुत सा धर्मादा (गऊशाला, पाठशाला, मंदिर, प्याऊ, धर्मशाला इत्यादि के लिए) तथा मनमाने खर्चे काट लिये जाते हैं। बहुत से स्थानों पर बाँट भारी रख लिए जाते हैं और तौलने में किसानों को धोखा दिया जाता है। कभी कभी भाव तय हो जाने पर जब किसान गाड़ी खाली कर देता है और तौल शुरू हो जाती है तब यह कह कर कि अन्दर माल खराब निकला उसको मूल्य कम लेने पर विवश किया जाता है। इस प्रकार के अनेक दोष मंडियों में हैं। शाही कृषि कमीशन ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक प्रान्त में मंडी कानून (Market Act) बना कर इन दोषों को दूर कर दिया जावे। परन्तु इन दोषों के दूर हो जाने पर भी किसान को तो अपनी पैदावार को सहकारी विक्रय समिति के द्वारा ही बेंचना चाहिए।

किसान को सतर्क तथा परिश्रमी होना चाहिए

खेती मे सफलता तभी मिल सकती है जब कि किसान उन सब बातों को अपनावे जिनसे अच्छी फसल उत्पन्न होने की सम्भावना हो और लगकर खेत

रिश्रम करे। भारतवर्ष में यद्यपि अधिकांश खेतिहर जातियाँ परिश्रमी ५ हिन्दुओं की ऊँची कही जाने वाली जातियों के लोग अच्छे किसान होते। खेती एक बहुत महत्त्वपूर्ण धंधा है उसको नीचा नहीं समझना ।हिए। किसान को परिश्रम के अतिरिक्त बुद्धि से भी काम लेना चाहिए। उसे अपनी भूमि की उपजाऊ शक्ति को ध्यान में रखकर वही फसल बोनी चाहिए जिससे उसे अधिक लाभ हो। बाज़ार की माँग (Demand) को भी उसे ध्यान में रखना चाहिए। केवल उसे इसलिए कपास नहीं बोना चाहिए वह पहले भी कपास बोता था। उसे कपास की माँग और उसके मूल्य को देखकर ही उसे बोना चाहिए। फसलों के हेर फेर (Rotation of Crops) का उसे पूरा ध्यान रखना चाहिए जिससे कि भूमि की उपजाऊ शक्ति घटने न पावे।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान में खेती की दशा खराब क्यों है ?

२—बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों से क्या हानि होती है ?

३—खेतों की चकबन्दी से क्या लाभ होते हैं ?

४—किसान गोबर की खाद क्यों नहीं बनाता ? गड्ढों में खाद तैयार करने से क्या लाभ होगा ?

५—किसान खेती के बड़े बड़े यन्त्रों और आधुनिक औज़ारों को काम में क्यों नहीं लाता ?

६—हिन्दोस्तान में किसान की ज़रूरतों को देखते हुए कैसे खेती के औज़ार और यन्त्र उपयुक्त होंगे ?

७—किसान ज़्यादातर कैसे बीज खेत में डालता है ? किसान को अच्छा बीज कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकता है ?

८—वर्षा के जल से भूमि का कटाव (Erosion of Soil) क्यों होता है और उससे क्या हानि होती है ?

९—ट्यूब वेल द्वारा सिंचाई से क्या क्या लाभ हैं। संयुक्त प्रान्त के किन जिलों में ट्यूब-वेल हैं ?

१०—नहर के पानी से ज़मीन कमज़ोर क्यों हो जाती है ?

११—फसलों के कौन से शत्रु हैं और उनसे क्या हानि होती है?

१२—फसलों को उसके शत्रुओं से कैसे बचाया जा सकता है?

१३—फसलों में कीड़े कैसे लग जाते हैं?

१४—किसान अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य क्यों नहीं पाता?

१५—हिन्दोस्तान में मंडियों के वर्तमान प्रबन्ध से किसान को क्या हानि है?

बाइसवाँ अध्याय

मुक़दमेबाज़ी (Litigation)

आज भारतवर्ष के ग्रामों में ईर्षा, द्वेष, कलह का साम्राज्य है। साधारण सी बातों पर फौजदारी हो जाना, लम्बे लम्बे मुक़दमों के कारण घर के घर तबाह हो जाना, गाँवों में आये दिन की बात हो गई है। मुक़दमेबाज़ी ग्रामीण के ऋणी होने का एक मुख्य कारण है। भारतीय न्यायालयों में किसान को किस प्रकार लूटा जाता है यह किसी से छिपा नहीं है। मुक़दमेबाज़ी एक ऐसा भयकर रोग है कि जिसके कारण गांवों के लोग दिवालिए होते जा रहे हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, श्री यम० यल० डार्लिङ्ग का तो यहाँ तक कहना है "जिस प्रकार अंग्रेजों का जातीय खेल क्रिकेट है उसी प्रकार मुक़दमेबाज़ी भारतीयों का जातीय खेल प्रतीत होता है"। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह रोग यहाँ बुरी तरह फैला हुआ है।

यह तो सर्वमान्य बात है कि जुर्म करने की भावना का उदय सामाजिक विषमता अथवा समाज की गिरी हुई दशा के कारण होता है। यदि मनुष्य जिस वातावरण में रहता है वह अच्छा नहीं है तो वह मनुष्य भी अच्छा नहीं बन सकता। भारतीय ग्रामीण जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है उसका परिणाम इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है कि आपस में लड़े और मुक़दमेबाज़ी करे। भारतीय ोग अधिकांश में अशिक्षित,

से दबा हुआ, अस्वस्थ, निर्धन फिजूलखर्ची, खराब रस्मों को मानने ।, कहीं कहीं नशा पीने वाला, आलसी, मनोरंजन के साधनों से हीन, अत्यन्त गंदे स्थानों पर रहता है। इस प्रकार के वातावरण में रह कर हमेशा शान्तिप्रिय रहना कठिन है। यही कारण है कि कृषक जो स्वाभावत: शान्तिप्रिय होता है कभी कभी कलहप्रिय हो उठता है और अपना सर्वनाश कर लेता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि गाँवों में मनोरंजन के तथा खेलने के साधन न होने के कारण उसका लड़ने तथा झगड़ने में भी कुछ मन बहलाव होता है, इसी कारण सीधा सादा किसान कभी कभी लड़ बैठता है। यदि गाँवों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध हो जावें और गाँवों की दशा में सुधार हो जावे तो लड़ाई-झगड़े तथा मुकदमे-बाज़ी में बहुत कमी हो सकती है।

लड़ाई झगड़े को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं — (१) लाभदायक कार्य, सुरुचिपूर्ण मनोरंजन तथा खेल, (२) आकर्षक घर, (३) संगठित गाँव।

खेती का सुधार होने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि किसान को ग्राम-उद्योग-धन्धे सिखाये जावें जिससे कि वह बेकारी के समय उन धंधों से कुछ कमा ले। इससे यह लाभ होगा कि वह काम में लगा रहेगा और जो साल में चार-पाँच महीने वह बेकार रहता है वह न रहेगा। इसके अतिरिक्त मनोरंजन तथा खेल-कूद के साधन भी उसको मिलने चाहिए।

आकर्षक गृह (Attractive Homes)

केवल इतने से ही काम न चलेगा, हमको गाँव में रहने वालों के घरों को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बना देना चाहिए। जब मनुष्य का घर में मन नहीं लगता है, उसकी स्त्री गृहस्थी को सुखमय बनाना नहीं जानती, खाना पकाना, घर को सुन्दर और साफ रखना तथा बच्चों का लालन पालन करना नहीं जानती तथा पति के साथ सहयोग नहीं करती तो पुरुषों में लड़ाई-झगड़े की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यदि घर सुन्दर और आकर्षक हो, गृह स्वामिनी घर का सचालन भली प्रकार करती हो और गृहस्थी सुख-

मय हो तो कौन अपने स्वर्ग सदृश घर को छोड़ कर शराब पीने वाले अथवा लड़ाई-झगड़ा करने वालों में सम्मिलित होगा। सुखमय घर जुर्म तथा लड़ाई झगड़े को कम करने का मुख्य साधन है।

इसके अतिरिक्त दो बातें और हैं। गाँव वालों में आत्मसंयम (Self-Control) तथा स्वाभिमान लेश-मात्र भी नहीं रहा है। किसी भी जाति में यह दो गुण मिल जुलकर रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। परन्तु यह गुण गाँव वालों में तभी आ सकते हैं जब कि गाँव की स्त्रियाँ बच्चों का लालन-पालन करना जानती हों तथा वे शिक्षित हों, जिससे कि आरम्भ से ही गाँव के बच्चों में आत्मसंयम, इत्यादि आवश्यक गुण उत्पन्न हो सकें। इस दृष्टि से ग्रामीण स्त्रियों के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है।

घरों को अधिक सुन्दर बनाने के लिए भारतवर्ष में गृह-वाटिका (Home Garden Plot) आन्दोलन चलना चाहिए। प्रत्येक घर के साथ एक छोटी सी वाटिका हो उसमें तरकारी, फूल और फल के वृक्ष लगाये जावें। घर भर के लोग उसमें अवकाश के समय काम करें। गृह-वाटिका से घर अधिक सुन्दर बनेगा साथ ही मन बहलाव भी होगा।

संगठित गाँव

इस समय भारतीय ग्राम अत्यन्त गिरी हुई दशा में हैं। प्रत्येक सभ्य देश में गाँवों का एक संगठन होता है जो गाँव के सम्बन्ध की देखभाल करता है। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के पूर्व जब गाँव की पंचायत एक जीवित संस्था थी तब गाँवों की दशा ऐसी खराब नहीं थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में एक ग्राम पंचायत स्थापित की जावे जो कि गाँव की सफाई, शिक्षा, तथा अन्य प्रबन्ध कार्यों की देखभाल के अतिरिक्त, गाँव में लड़ाई-झगड़ों तथा मुकदमेबाज़ी को रोके और यदि कोई झगड़ा हो भी जावे तो उसका निपटारा करे। यदि पंचायत ठीक तरह से काम करे तो बहुत कम झगड़े हों और उनमें से भी अधिकांश का पंचायत ही निर्णय कर दे। निर्धन ग्रामीण उस लम्बी मुकदमेबाज़ी से बच जावें जो कि उनको तबाह कर देती है। इसका कारण यह है कि सीधा ग्रामीण एक बार अदालत में गया नहीं

वकील और उनके दलाल फिर उसको ऐसा समझा देते हैं कि फिर ' । होना असम्भव हो जाता है।

पंचायत

मुक़दमेबाज़ी को कम करने तथा गाँव वालों को भारतीय अदालतों की लूट से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि गाँवों में पचायतें स्थापित की जावें। पाँच-चार गाँवों की एक पंचायत हो। प्रत्येक गाँव से एक या दो पंच ले लिये जावे। जब कोई झगड़ा उठ खड़ा हो तो पहले तो पंच दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश करे और यदि समझौता न हो सके तो फिर पंचायत फैसला कर दे। पंचायतों में वकीलों को आने की आज्ञा न होनी चाहिए।

अभी तक जो भी पंचायतें देश में स्थापित की गईं उनके पंचों को सरकार नामज़द करती थी और उनको १०/ रु० से अधिक जुर्माना करने का अधिकार नहीं था इस कारण वे अधिक सफल नहीं हुईं।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान के गाँवों में लड़ाई-झगड़े बहुत होते हैं इसका क्या कारण है?

२—मुकदमेबाज़ी से गाँव वालों को क्या हानियाँ हैं और उसको कम करने का क्या उपाय है?

३—गाँवों और गाँवों में रहने वालों की गिरी हुई दशा का लड़ाई-झगड़े। और मुक़दमेबाज़ी से क्या सम्बन्ध है?

४—यदि गाँव में एक ऐसी पचायत हो जिसमें सबकी श्रद्धा हो तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

५—शराबबन्दी से गाँवों में लड़ाई-झगड़े कहाँ तक बंद हो सकते हैं?

६—यदि किसानों के घर अधिक आकर्षक बन जावे तो उसका किस पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

७—गाँव में घरों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए किन बातों ज़रूरत है?

तेईसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

भारतवर्ष में ग्रामीण ऋण की समस्या अत्यन्त भयकर हो उठी है और आज सरकार, राजनीतिज्ञ और जनता सभी का ध्यान इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित हो गया है। हिन्दोस्तान के गाँवो में रहने वाले किसान कर्ज के भयकर बोझ से इस बुरी तरह से दबे हुए हैं कि साधारण रूप से उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं हो सकती। ऋणी होने के कारण किसानों का राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र विषयक पतन हो रहा है। कहीं कहीं तो उसकी दशा अपने महाजन के मोल लिए हुए दास जैसी हो गई है। यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इस समस्या को हल करना आवश्यक है। जब कि जन-संख्या का एक बहुत बड़ा भाग दासता का जीवन व्यतीत करता हो तब देश की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न करना निष्फल है।

१९३० में जो केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी बिठाई गई थी उसने ब्रिटिश भारत के समस्त प्रान्तों के ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाया है। उक्त कमेटी के हिसाब से समस्त ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण उस समय ९०० करोड़ रुपये था। किन्तु १९३० से ही खेतों की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया और उसी अनुपात में ऋण का बोझा बढ़ गया। अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि १९३९ में ग्रामीण ऋण उस समय से लगभग दुगुना अर्थात् १८०० करोड़ रुपए के लगभग होगा। यह ध्यान में रखने की बात है कि इन अंकों में देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण के अंक सम्मिलित नहीं हैं। १९३० में संयुक्त प्रान्तीय बैंकिंग जाँच कमेटी के अनुसार संयुक्त प्रान्त का ग्रामीण ऋण लगभग १२४ करोड़ रुपये था।

१९३९ में महायुद्ध आरम्भ हो गया। जिसके फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ गया। रुपये की कीमत गिर गई और खेती की पैदावार की कीमत बेहद बढ़ गई। इससे कर्ज का बोझ कुछ हलका ज़रूर हुआ। अगर इस अवसर का लाभ उठाया जाता और सरकार इस तरफ

ध्यान देती तो किसान का सारा कर्जा चुकाया जा सकता था। लेकिन किसान ने उस रुपये का उपयोग चाँदी खरीदने, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं के मोल लेने, तीर्थ-यात्रा, विवाह और भोजों में किया और कर्ज़ वैसे का वैसा ही बना रहा।

प्रान्तीय बैंकिंग जाँच कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। सर एडवर्ड मैकलेगन ने १९११ में कहा था "यह मानना पड़ेगा कि ग्रामीण ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेषकर पिछले पचास वर्षों में बहुत बढ़ गया है।" शाही कृषि कमीशन की भी लगभग यही सम्मति है। जब से खेती की पैदावार का मूल्य गिर गया है तब से किसानों के कर्ज़ का बोझ और भी बढ गया है। इस भयकर बोझ को किसान किस प्रकार सँभाल सकेगा यह प्रत्येक विचारवान व्यक्ति समझ सकता है।

अभी तक यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि गाँवों में प्रतिशत कितने लोग कर्ज़दार हैं। कुछ अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि ६० से ७० प्रतिशत ग्राम निवासी कर्जदार हैं।

महायुद्ध और ऋण

सन् १६३६ के उपरान्त जब से द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ है तबसे खेती की पैदावार का मूल्य बहुत बढ़ गया है और कुछ अर्थशास्त्री यह मानने लग गए हैं कि किसान ऋण मुक्त हो गये हैं। परन्तु हम जैसा ऊपर कह आये हैं ऐसा नहीं हुआ। फिर भी यह मानना होगा कि ऋण का भार कुछ हलका अवश्य हुआ है। अभी कुछ दिन हुए मदरास सरकार ने इस सम्बन्ध में एक जाँच करवाई थी उससे यह ज्ञात हुआ कि २० प्रतिशत ऋण कम हुआ है और बड़े किसानों के ही ऋण में कमी हुई है छोटे किसानों की दशा वैसी ही है। हाँ यदि इस समय सरकार ऋण की जाँच करवा कर उसे कानून बना कर घटा दे तो और उसकी अदायगी का कुछ प्रबन्ध करे तो समस्या हल हो सकती है। परन्तु यदि ऐसा कुछ न हुआ किसान की आय को खुशहाली शादियों, सोना-चाँदी, तीर्थ-यात्रा, मेलों, तमाशों पर कम हो गई और आगे चल कर खेती की पैदावार का मूल्य कम हो गया तो

फिर किसान कर्ज़े के बोझ से ऐसा दब जावेगा कि उसका उभरना कठिन होगा।

कर्ज़दार होने के कारण

१—पैतृक ऋण

किसान को कर्ज़दार बनाने में उसके बाप के समय का कर्ज़ बहुत सहायक होता है। बाप का ऋण चुकाना एक धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। बाप के मरने पर महाजन पुत्र से पुराने कर्ज़े के लिए नया कागज़ लिखवा लेता है।

२—महाजन के लेन-देन करने का ढग

महाजन इतना अधिक सूद लेता है कि यदि कोई किसान एक बार महाजन के चगुल में फँस गया तो फिर उसका ऋण-मुक्त होना असम्भव हो जाता है। गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सूद की दर भिन्न है, परन्तु फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि किसान को २५ से ७५ प्रतिशत तक सूद देना होता है। इतना अधिक सूद किसान कैसे दे सकता है? फल यह होता है कि ऋण बढ़ता जाता है। किसान जो कुछ देता है वह सूद में ही कट जाता है और किसान कभी भी ऋण मुक्त नहीं हो पाता। किसान अशिक्षित होता है इस कारण कभी कभी महाजन हिसाब में गड़बड़ कर देता है और किसान को धोखा दे देता है।

३—किसान के पास खेती के लिए यथेष्ट भूमि न होना

साधारण किसान के पास इतनी भूमि नहीं कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन कर सके। देश में उद्योग-धधे कम होने के कारण आवश्यकता से अधिक जनसख्या खेती बारी पर अवलम्बित है। इस कारण खेती के योग्य भूमि की बहुत कमी है। केवल यही खराबी नहीं है, जो कुछ भी भूमि किसान के पास है वह भी एक स्थान पर न होकर दूर दूर छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरी होती है, (Fragmented land holdings) इन बिखरे हुए खेतों के कारण वैज्ञानिक ढग से खेती नहीं हो सकती और न खेती में लाभ हो सकता है।

अनिश्चित खेती

भारतवर्ष मे खेती अत्यन्त अनिश्चित है, किसी साल वर्षा कम होने से, अथवा वर्षा अधिक होने से, ओला या पाला पड़ने से, या फसल के कीड़े लग जाने से अथवा अन्य किसी कारण के जब फसल मारी जाती है तो किसान को क़र्ज़ लेना पडता है।

बैलों की मृत्यु

पशुओं की महामारी (प्लेग आदि) फैलने से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लाखों पशु मरते हैं। किसान के बैल मर जाने पर उसे कर्ज़ लेकर नए बैल मोल लेने पड़ते हैं।

सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में अधिक व्यय करना

भारतीय ग्रामीण विवाह, मृत्यु, जन्म तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक कृत्यों पर कर्ज लेकर अधिक व्यय कर देता है। कुछ लोग इसको अत्यधिक कर्ज़दार होने का मुख्य कारण बतलाते हैं परन्तु इसमें अतिशयोक्ति अधिक है।

मुकद्दमेबाज़ी

मुकद्दमेबाजी किसान के ऋणी होने का एक मुख्य कारण है। किसान कर्ज लेकर मुक़द्दमे लड़ता है। भारतवर्ष में मुकद्दमेबाजी का रोग ऐसी बुरी तरह फैला हुआ है कि इसके कारण लाखो परिवारों का सर्वनाश हो गया है। वकील, अदालतों के कर्मचारी तथा खर्चीला न्याय किसान को कर्ज़दार बना देते हैं।

लगान और मालगुजारी

मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती से लाभ बहुत कम है। जब कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं अथवा खेती की पैदावार की क़ीमत कम हो जाती है तो किसान को लगान देना कठिन हो जाता है। यद्यपि ऐसे समय कुछ छूट दी जाती है परन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। [illegible]न किसान को महाजन से क़र्ज़ लेकर लगान या मालगुजारी देनी होती है। [illegible]कि ज़मींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बहुत सख़्ती से वसूल करते हैं।

भूमि की कमी होने के कारण कभी कभी किसान लम्बे पट्टे लेता है और उसके लिए बहुत अधिक लगान देना स्वीकार करता है। कभी कभी कर्ज लेकर वह भूमि मोल ले लेता है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा ड्योढ़े पर बीज लाता है। महाजन पुराना सड़ा बीज दे देता है। खाद इत्यादि डालने के लिए भी वह कर्ज लेता है। फसल तैयार होने पर उसे अपनी पैदावार तुरन्त बेचनी पड़ती है क्योंकि जमींदार लगान, सरकार आबपाशी, तथा महाजन अपने कर्ज़ के लिए जल्दी मँचाते हैं। उस समय बाज़ार भाव मंदा होता है। महाजन बाजार भाव से भी बहुत सस्ते दामों पर किसान की पैदावार मोल ले लेता है। किसान थोड़े दिनों ठहर सके तो उसे अपनी पैदावार का अधिक मूल्य मिल सकता है। जूट, गन्ना और कपास इत्यादि की फसलों में तो कारखाने वाले किसान को कुछ रुपये पेशगी कर्ज दे देते हैं और बहुत सस्ते दामों पर फसल को पहले से ही मोल ले लेते हैं।

अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फसल काटने के उपरान्त सब लेनदारों का रुपया चुकाने पर उसके पास केवल आठ महीने का भोजन ही बच रहता है। पिछले चार महीनों में किसान को महाजन से सवाये या ड्योढे पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कहीं कहीं तो कर्जदारों की स्थिति मोल लिये हुए दासों से भी गई बीती हो जाती है।

सरकार द्वारा ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत, अजमेर मेरवाड़ा प्रान्त, तथा बिहार प्रान्त के छोटा नागपुर डिवीज़न में किसान विद्रोह हो उठे। उन्होंने बहुत से महाजनों के घर जला दिए और उन्हें मार डाला। सरकार ने एक कमशीन बिठाया। कमीशन ने इन उत्पातों का मुख्य कारण किसानों की भयकर कर्जदारी बतलाई। सरकार ने किसानों की रक्षा के लिए देशी कानून में सुधार किये और एक कानून बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमें उचित सूद की ही डिगरी दे, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितने अधिक सूद देने

वादा क्यों न किया हो। किन्तु इस कानून से कोई लाभ न हुआ क्योंकि अदालतों का न्याय खर्चीला है और किसान निर्धन हैं।

भारतीय सरकार ने किसानों में मितव्ययिता का भाव उत्पन्न करने के लिए पोस्ट आफिस सेविंग बैंक खोले। अशिक्षित किसान पोस्ट आफिस सेविंग बैंक से अधिक लाभ न उठा सका। सरकार ने कई बार सिविल-ला में इस दृष्टि से सुधार किए कि किसानों को कुछ सुविधा दी जावे किन्तु कानूनों द्वारा सरकार किसानों को कुछ भी सहायता न कर सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती बारी का धन्धा करने के लिए साख (कर्ज) की आवश्यकता होती है। किसान को दो तरह की साख चाहिए— थोड़े समय के लिए और अधिक समय के लिए। अस्तु, भारतीय सरकार ने दो कानून बनाकर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तक़ावी दे सकती हैं। किन्तु तकावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तकावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि किसानों को तकावी पटवारी, कानूनगो तथा नायब तहसीलदार की सिफारिश से मिलती है। इस कारण किसान को रुपया समय पर नहीं मिल पाता। आवश्यकता के समय तक़ावी न मिलने से तथा वसूली में कड़ाई होने से तक़ावी का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

कर्जदार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि निकल कर महाजनों के पास चली जाती थी और किसान उन पर मज़दूरों की भाँति कार्य करता था। पंजाब में इस समस्या को हल करने के लिए "पंजाब लैंड एलीनेशन ऐक्ट" पास करके गैर खेतिहर जातियों को खेती की भूमि लेने से वंचित कर दिया गया। संयुक्त प्रांत के बुन्देलखंड प्रदेश तथा मध्यप्रान्त के कुछ भागों में इसी प्रकार का कानून लागू कर दिया गया है।

यह सब कुछ हुआ परन्तु ग्रामीण ऋण की समस्या पूर्ववत ही बनी रही। इसी बीच में इटली और जर्मनी की सहकारी साख समितियों की आश्चर्यजनक सफलता से भारत के सरकार का ध्यान सहकारी साख आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सन् १९०४ में भारतवर्ष में भी सहकारिता आन्दोलन

का श्रीगणेश किया गया। सहकारी साख आन्दोलन कहाँ तक सफल हुआ है यह तो अगले अध्यायों में लिखा जावेगा, किन्तु इतने वर्षों के अनुभव से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि सहकारी साख समितियाँ किसान के पुराने कर्ज़े को अदा नहीं कर सकतीं। थोड़े समय के लिए खेती बारी में जो ऋण की आवश्यकता होती है उसका प्रबन्ध यह साख समितियाँ सफलता पूर्वक कर सकती हैं। जब तक किसान पुराना ऋण नहीं चुकाता तब तक वह महाजन के चंगुल से मुक्त नहीं हो सकता।

पुराने ऋण को चुकाने के लिए तथा अन्य कार्यों के लिये अधिक समय तक को ऋण देने के लिए भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) अधिक उपयुक्त हैं। ये बैंक किसान अथवा ज़मीदारों की भूमि को गिरवी रख उन्हें बीस या तीस वर्ष तक के लिए ऋण देते हैं। और किश्तों में वसूल कर लेते हैं। ऋण देने के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है वह बैंक बंधक रखी हुई भूमि की ज़मानत पर डिबैंचर (ऋण पत्र) बेचकर इकट्ठी करते हैं। अभी भारतवर्ष में थोड़े से ही भूमि बंधक बैंक स्थापित हुए हैं। परन्तु यह बैंक उन्हीं किसानों को ऋण दे सकेंगे जो कि भूमि बंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रान्तों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है वहाँ ये बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे। (देखो अध्याय २७)

ऋण-परिशोध

केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी की सम्मति में सरकार को निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिए।

प्रान्तीय सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो गाँवों में दौरा करके पता लगावें कि किसानों पर कितना ऋण है। इसके लिए एक कानून बना कर महाजनों को विवश किया जावे कि वे किसान के ऋण का पूरा हिसाब बतावें। तदुपरान्त वह कर्मचारी ऋण को चुकाने के लिए महाजन को कम से कम रुपया लेकर किसान को ऋणमुक्त करने के लिए राजी करे। जब यह निश्चय हो जावे कि महाजन कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण मुक्त कर देगा, तब किसान को साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। साख समिति किसान का कर्ज़ा एक मु

अथवा किश्तों में चुका दे तथा खेती बारी के लिए किसान को आवश्यक साख (कर्ज़) देती रहे।

यदि महाजन किश्तों में रुपया लेना स्वीकार करे तो जितना स्वय दे सके उतना दे दे और शेष किश्तों को देने की जिम्मेवारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्तें वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया माँगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए। साख समिति किसान से वार्षिक किश्तें लेकर सरकार का कर्ज़ चुका देगी।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज़ के इस प्रकार चुकाये जाने के लिए तैयार न हो और समझौता न करें। ऐसी परिस्थित मे कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रान्तों में ऋण समझौता-बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बधक बैंक (Land Mortgage Banks) साथ साथ स्थापित किए गए हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रकम को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि-बधक-बैंक सदस्य की भूमि को बन्धक रख कर उस रकम को चुका देता है। तद्उपरान्त किश्तों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये संस्थाएँ बहुत कम संख्या मे हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुए हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ कानून जमींदारों और किसानों की रक्षा के लिए बनाये गए हैं। संयुक्त प्रान्त में भी कुछ कानून इस सम्बन्ध में बन गए हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि या जमींदारी कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित करके किश्त बाँध देती है। इन कानूनों से जमींदारों को अधिक लाभ हुआ है उनकी जमींदारियाँ महाजनों के हाथ में जाने से बच गई हैं। किन्तु इन कानूनों से किसानों को अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए [illegible] क्रान्तिकारी तथा साहसी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर का ग्रामीण ऋण सम्बन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है। भावनगर के तत्कालीन

दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी ने राज्य भर के किसानों के ऋण की जाँच करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों को बुलाया और उनसे बीस लाख रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त कर देने को कहा। पहिले तो महाजन तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न करने पर राज्य ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल न हो सकेगा तो वे बीस लाख रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त करने को तैयार हो गए। राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपए देकर किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे किसान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस लाख रुपए तो केवल सूद में दे देते थे। राज्य अब किश्तों में वह रुपया लगान के साथ किसान से वसूल करता है। राज्य में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के ऋणी न हो जावें। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भावनगर में यह हुआ है कि किसान स्वयं वैज्ञानिक ढंग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल, बैल, खाद, तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गाँव समृद्धिशाली बनते जा रहे हैं। ब्रिटिश भारत में भी जब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी योजना काम में लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे। जब तक किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भाँति कोई क्रान्तिकारी योजना प्रान्तों में काम में नहीं लाई गई परन्तु पिछले वर्षों में भी कुछ कानून बनाये गए हैं जिनसे कर्ज़दारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य हैं :—

महाजन लायसेंस कानून—(Money-lenders Act.) बंगाल, आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई, पंजाब में महाजन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एक सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस लेना

सरल किश्तों में चुका दे तथा खेती बारी के लिए किसान को आवश्यक साख (क़र्ज़) देती रहे।

यदि महाजन किश्तों में रुपया लेना स्वीकार करे तो जितना स्वयं दे सके उतना दे दे और शेष किश्तों को देने की जिम्मेवारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्तें वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया मांगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए। साख समिति किसान से वार्षिक किश्तें लेकर सरकार का क़र्ज़ चुका देगी।

यह भी सम्भव है कि महाजन क़र्ज़ के इस प्रकार चुकाये जाने के लिए तैयार न हो और समझौता न करें। ऐसी परिस्थित मे कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रान्तों में ऋण समझौता-बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बधक बैंक (Land Mortgage Banks) साथ साथ स्थापित किए गए हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रक़म को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि-बधक-बैंक सदस्य की भूमि को बन्धक रख कर उस रकम को चुका देता है। तदुपरान्त किश्तों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये संस्थाएँ बहुत कम संख्या मे हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुए हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ कानून जमींदारों और किसानों की रक्षा के लिए बनाये गए हैं। संयुक्त-प्रान्त में भी कुछ कानून इस सम्बन्ध में बन गए हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि या जमींदारी कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित करके किश्त बांध देती है। इन कानूनों से जमींदारों को अधिक लाभ हुआ है उनकी जमींदारियाँ महाजनों के हाथ मे जाने से बच गई हैं। किन्तु इन कानूनों से किसानों को अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए कोई क्रान्तिकारी तथा साहसी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर का ग्रामीण ऋण सम्बन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है। भावनगर के तत्कालीन

दीवान सर प्रभाशङ्कर पट्टनी ने राज्य भर के किसानों के ऋण की जाँच करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छयासी लाख से कुछ अधिक ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों को बुलाया और उनसे बीस लाख रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त कर देने को कहा। पहिले तो महाजन तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न करने पर राज्य ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल न हो सकेगा तो वे बीस लाख रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त करने को तैयार हो गए। राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपए देकर किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे किसान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस लाख रुपए तो केवल सूद में दे देते थे। राज्य अब किश्तों में वह रुपया लगान के साथ किसान से वसूल करता है। राज्य में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के ऋणी न हो जावें। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भावनगर में यह हुआ है कि किसान स्वयं वैज्ञानिक ढंग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल बैल, खाद, तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गाँव समृद्धिशाली बनते जा रहे हैं। ब्रिटिश भारत मे भी जब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी योजना काम में लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे। जब तक किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भाँति कोई क्रान्तिकारी योजना प्रान्तों में काम में नहीं लाई गई परन्तु पिछले वर्षों में भी कुछ कानून बनाये गए हैं जिनसे कर्ज़दारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य हैं :—

महाजन लायसेंस कानून—(Money-lenders Act.) बंगाल, आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई, पंजाब में महाजन पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एक सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसैंस लेना

अथवा किश्तों में चुका दे तथा खेती बारी के लिए किसान को आवश्यक साख (क़र्ज़) देती रहे।

यदि महाजन किश्तों में रुपया लेना स्वीकार करे तो जितना स्वयं दे सके उतना दे दे और शेष किश्तों को देने की जिम्मेवारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्तें वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया माँगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए। साख समिति किसान से वार्षिक किश्तें लेकर सरकार का क़र्ज़ चुका देगी।

यह भी सम्भव है कि महाजन क़र्ज़ के इस प्रकार चुकाये जाने के लिए तैयार न हों और समझौता न करें। ऐसी परिस्थित में कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रान्तों में ऋण समझौता-बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) साथ साथ स्थापित किए गए हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रक़म को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि-बंधक-बैंक सदस्य की भूमि को बन्धक रख कर उस रकम को चुका देता है। तदुपरान्त किश्तों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये संस्थाएँ बहुत कम संख्या में हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुए हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ कानून जमींदारों और किसानों की रक्षा के लिए बनाये गए हैं। संयुक्त प्रान्त में भी कुछ कानून इस सम्बन्ध में बन गए हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि या जमींदारी कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित करके किश्त बाँध देती है। इन कानूनों से जमींदारों को अधिक लाभ हुआ है उनकी जमींदारियाँ महाजनों के हाथ में जाने से बच गई हैं। किन्तु इन कानूनों से किसानों को अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए कोई क्रान्तिकारी तथा आदर्शी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर [illegible] का ग्रामीण ऋण सम्बन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है। भावनगर के [illegible]

राज्य भर के किसानों के ऋण को जाँच
दीवान सर प्रभाशंकर पट्टनी ने राज्य भर के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक
करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक
ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों को बुलाया और उनसे बीस लाख
रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त कर देने को कहा। पहिले तो महाजन
तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न करने पर राज्य
ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल न हो सकेगा
तो वे बीस लाख रुपए लेकर किसानों को ऋण मुक्त करने को तैयार हो गए।
राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपए देकर किसानों को महाजनों के ऋण से
मुक्त कर दिया। ध्यान रहे किसान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस लाख रुपए तो
केवल सूद में दे देते थे। राज्य अब किश्तों में वह रुपया लगान के साथ
किसान से वसूल करता है। राज्य में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की
जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के
ऋणी न हो जावें। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भावनगर में यह
हुआ है कि किसान स्वयं वैज्ञानिक ढंग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल,
बैल, खाद, तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गाँव समृद्धिशाली
बनते जा रहे हैं। ब्रिटिश भारत में भी जब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी
योजना काम में लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे। जब तक
किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव
नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भाँति कोई क्रान्तिकारी योजना प्रान्तों में काम
में नहीं लाई गई परन्तु पिछले वर्षों में भी कुछ कानून बनाये गए हैं जिनसे
कर्ज़दारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य
हैं:—

महाजन लायसेंस कानून—(Money-lenders Act.) बंगाल,
आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई, पंजाब में महाजन पर नियंत्रण
रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एक
सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस

होगा। प्रत्येक लायसैंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्ज़दार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिख कर देना होगा। जब कभी कर्ज़दार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी।

इन कानूनों के साथ ही प्रान्तीय सरकारों ने सूद की दर भी कानून से निश्चित कर दी है। यद्यपि भिन्न भिन्न प्रान्तों मे सूद की दर भिन्न हैं। फिर भी पहले से सूद की दर बहुत कम हो गई है।

मदरास और मध्यप्रान्त मे कानून बना कर किसान के कर्जों को कुछ प्रतिशत कम कर दिया गया है। कुछ प्रान्तों में ऋण समझौता बोर्ड स्थापित करके किसान के ऋण की रकम को घटाने का प्रयत्न किया गया है।

किन्तु इन सुविधाओं से ऋण की समस्या हल नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि भावनगर राज्य की तरह ही सरकार इस समस्या को हल करने के लिए एक योजना तैयार करे और उसको शीघ्र ही लागू कर दे।

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार उस समय ग्रामीण ऋण की जाँच करवावे। कानून बनाकर उसे उचित मात्रा में कम करदे। कम करने में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि महाजन बहुत अधिक सूद लेकर अपनी रकम को बढ़ा लिया है। अस्तु कर्ज की रकम को सभी बातों को ध्यान में रखकर कम कर दिया जावे। जिन किसानों के बारे मे यह प्रतीत हो कि वे दस वर्ष में भी घटी हुई रकम को अदा नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास कुछ भी बचत नहीं होती उनको 'ग्रामीण दिवालिया क़ानून' (Rural Insolvency Act) बनाकर दिवालिया क़रार दे दिया जावे और उन्हें फिर से नये सिरे से कार्य आरम्भ करने को इजाज़त दी जावे। भूमि, बैलों की जोड़ी खेती के औजार, बीज, ६ महीने के लिए खाने के अन्न छोड़कर जो भी उसके पास हो उसको महाजनों में बाँट दिया जावे। और किसान को ऋण मुक्त कर दिया जावे। शेष किसानों की कम की हुई रकम सरकारी बॉडों के रूप में किसानों के महाजनों को दे दी जाय। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार उन महाजनों की कर्जदार हो गई और जब तक सरकार महाजनों का कर्ज़ा न चुका सके तब तक उस पर २½ प्रतिशत सूद देनी है।

सरकार यह रकम किसान से सूद सहित किश्तों में वसूल करले। इस प्रकार ऋण की समस्या को हल किया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँवों में किसान किन आदमियों और संस्थाओं से ऋण लेता है?

२—हिन्दोस्तान में ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी महत्वपूर्ण क्यों हो उठी है?

३—किसान के कर्जदार होने के मुख्य कारण क्या हैं?

४—क्या ऋण लेना हर हालत में हानिकर होता है? भारतीय किसान किन किन कार्यों के लिए ऋण लेता है?

५—क्या यह सच है कि भारतीय किसान ऋणी जन्म लेता है और ऋणी ही मरता है? इस भयंकर कर्ज़दारी का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—किसान के ऋणी होने से उसकी क्या हानि होती है?

७—भारतीय किसान का जो निराशावादी दृष्टिकोण बन गया है उस पर उसके कर्ज़दार होने का क्या असर पड़ता है?

८—' तक़ावी " क्या है और उससे किसान को कहाँ तक सहायता मिलती है?

९—केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने ऋण की समस्या को हल करने के लिए क्या उपाय बतलाया है?

१०—भावनगर राज्य में ऋण की समस्या को कैसे हल किया गया और उसका फल क्या हुआ?

११—भूमि बंधक बैंक किसे कहते हैं? वह क्या कार्य करता है?

परिशिष्ट

गाँवों में आय के साधन और गमनागमन

गाँवों में खेती के सिवाय आय के दूसरे साधन नहीं के बराबर हैं। जन-संख्या के बढ़ने और भूमि की कमी के कारण प्रति किसान पीछे भूमि इतनी

ढाई एकड़) है कि एक परिवार का उस पर पालन होना साधारण में भी असम्भव है। फिर भारत में हर तीसरे चौथे साल फसल नष्ट ा है। सूखा, बाढ़, अतिवर्षा, टीड़ी, ओला, फसलों के रोग, पाला, ादि दैवी कारणों से फसलें नष्ट हो जाती हैं और कहीं कहीं तो भीषण पड़ जाता है। ऐसे समय में किसान की दशा अत्यन्त दयनीय हो ी है। यह तो हुई उन सालों की बात जब कि फसल खराब हो जाती है। फसल ठीक होती है तब भी किसान के पास इतना नहीं होता कि वह परिवार का पालन-पोषण ठीक तरह से कर सके। इसलिए यह आवश्यक है कि खेती के अलावा किसान के पास आय के दूसरे भी साधन हों।

ग्रामीण धंधे

भारत में साधारणतः किसान वर्ष में ४ से ६ महीने बेकार रहता है कारण खेती का धंधा ऐसा है कि इसमें वर्ष भर लगातार काम नहीं रहता। किन्हीं दिनों उसे बहुत अधिक काम करना पड़ता है, किन्हीं दिनों कम, और कभी वह बिलकुल बेकार रहता है। गाँव के मजदूरों को तो वर्ष में ४ या ५ महीने से अधिक काम मिलता ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि कोई ६ महीने काम करके १२ महीने का भोजन नहीं पा सकता।

योरोप तथा अमेरिका जैसे देशों में जहाँ किसानों के पास बड़े बड़े फार्म हैं किसान केवल खेती पर ही अवलम्बित नहीं रहता वह ग्राम उद्योगों के द्वारा अपनी आय बढ़ाता है। ऐसी दशा में भारत में जहाँ भूमि का अकाल है किसान बिना ग्रामीण धंधों के कैसे जीवित रह सकता है।

१—धंधा ऐसा होना चाहिए जो खेती के काम में बाधक न हो अर्थात् जब खेतों पर अधिक काम हो तब उसको बिना हानि के छोड़ा जा सके।

२—धंधा ऐसा हो जिसमें अधिक कुशलता प्राप्त करने की ज़रूरत हो। नहीं तो किसान को उस धंधे की शिक्षा की समस्या उठ खड़ी

३—धंधे में कच्चे पदार्थ की जो आवश्यकता हो वह गाँव से ही पूरी हो सके।

४—धंधे की चीज़ ऐसी होनी चाहिए कि जिनकी माँग सब जगह हो जिससे माल के बेचने में कठिनाई न हो।

५—धंधा ऐसा होना चाहिए जिसके चलाने में अधिक पूंजी की ज़रूरत न हो।

६—साथ ही जहाँ तक ग्रामीण धंधे ऐसे चुने जावें जिनकी होड़ मिलों में बने माल से न हो।

ऊपर दिये हुए गुणों को ध्यान में रखते हुए नीचे लिखे धंधे गाँवों के उपयुक्त हो सकते हैं।

१—दूध-घी-मक्खन का धंधा, (२) मुर्गी पालने का धंधा, (३) फलों का धंधा, (४) तरकारी पैदा करना, (५) शहद उत्पन्न करना (६) सूत कातने का धंधा, (७) रेशम के कीड़े पालने का धंधा, (८) भेड़ पालने का धंधा, (९) गुड़ बनाना, चावल कूटना, रस्सी बटना, डालियाँ तैयार करना (१०) सूत कातना, गाड़ी चलाना, तेल पेरना इत्यादि। (देखो अध्याय ५)

ग्राम उद्योग संघ

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्राम उद्योग संघ की स्थापना हुई है जो ग्रामीण धंधों की उन्नति के लिए प्रयत्न कर रही है। इन धंधों की उन्नति करने के लिए नये नये तरीकों की खोज की जा रही है। आशा है कि इससे गाँव वालों को आय का एक अच्छा साधन मिल जावेगा। क्या ही अच्छा हो कि सरकार का औद्योगिक विभाग भी इस ओर ध्यान दे।

गाँवों में आने जाने की असुविधा

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँवों में सड़कें न होने के कारण वे बाहरी दुनिया से अलग रहते हैं। गाँवों की उन्नति के लिए सड़कों की उन्नति सबसे पहले जरूरी है। यदि सड़कों की उन्नति की जावे और हर एक गाँव मुख्य पक्की सड़कों से जोड़ दिया जावे तो थोड़े ही दिनों में गाँवों की काया-पलट हो सकती है। उस दशा में मोटर लारियों के

ों की पैदावार बहुत जल्दी और कम खर्च से शहरों तक लाई जा सकती । गाँवों का व्यापार सड़कों की उन्नति से बहुत जल्दी बढ़ सकता है और व में और दूसरे कारबार चल सकते हैं। इस लिए देश में सड़कों की उन्नति बहुत जरूरी है। हर्ष की बात है कि सरकार इस ओर अब कुछ ध्यान देने का विचार कर रही है।

किन्तु केवल सड़कों से ही काम नहीं चलेगा। डाक, तार, तथा रेडियो की भी सुविधा गाँवों को मिलनी चाहिए जिससे वे दुनिया की हलचलों से परिचित हो सकें।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसानों को खेती के सिवाय दूसरे आय के साधनों की क्यों ज़रूरत है?

२—ग्रामीण धन्धो मे कौन सा विशेष गुण होना चाहिए?

३—सड़कों की उन्नति से गाँव के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

४—कौन सा ग्रामीण धन्धे तुम अपने गाँव मे चलाना चाहोगे उसके सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक लिखो।

चौबीसवाँ अध्याय

कृषि विभाग के कार्य

सर्व प्रथम संयुक्तप्रान्त मे कृषि विभाग की स्थापना सन् १८७५ ईस्वी में हुई। तत्कालीन लेफ्टीनैंट गवर्नर सर जान स्टैचे ने प्रयत्न करके प्रान्त में एक डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर और कामर्स की नियुक्ति करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर को इस आशय की आज्ञा दी गई की वह प्रान्त के किसानों को नये तरीके से खेती करने के लाभ बतलाए और देशी फसलों और छोटे छोटे धन्धों की उन्नति करने के लिए प्रयोग करे कि जिनके द्वारा किसानों को अधिक लाभ हो। आरम्भ में रेशम के कीड़े को पालने तथा रेशम उत्पन्न करने के धंधे, सन, तथा तम्बाकू की ओर अधिक

ध्यान दिया गया। उससे पूर्व ही प्रान्त में तीन माडल फार्म थे जो कि नव निर्मित कृषि विभाग ने ले लिए। रेशम के कीड़े का एक फार्म देहरादून में खोला गया, तम्बाकू का फार्म गाज़ीपुर में और फलों का फार्म कमायूँ की पहाड़ियों पर खोला गया। तम्बाकू और रेशम के फार्म असफल रहे किन्तु कमायूँ का फार्म बहुत सफल हुआ। प्रान्त में आलू और फलों के व्यापार की जो आशातीत उन्नति हुई है उसका मुख्य कारण कमायूँ का फार्म है।

सयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग को प्रान्त की सड़कों के किनारे पेड़ लगाने का भी कार्य सौंपा गया था जो कि आज तक कृषि विभाग करता आ रहा है। १८८० में कृषि विभाग ने अपनी एक शाखा स्थापित करके पुराने कुओं के सुधार तथा नए को खोदने का काम भी अपने हाथ में लिया। वेल बोरिंग ब्रांच (Well boring branch) किसी भी ज़मींदार अथवा किसान को यह सलाह देती है कि इस क्षेत्र में कितनी दूरी पर पानी निकलेगा। यदि किसान अथवा ज़मींदार चाहे तो वे कुएँ को खोद भी देते हैं।

इनके अतिरिक्त उस समय कृषि विभाग ने ऊसर भूमि तथा पानी द्वारा काटी भूमि (Ravines) को खेती के योग्य बनाने, गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने, कपास के तथा गन्ने के बीज को उन्नत करने का भी प्रयत्न किया। यद्यपि गाय और बैलों की उन्नति करने में सीधी सफलता नहीं मिली किन्तु ऊसर भूमि के सुधार होने पर वहाँ चरागाह बन गए जिससे अप्रत्यक्ष रूप से गाय और बैलों का सुधार हुआ और प्रान्त में डेयरी का धंधा पनपा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसी नीति के अनुसार कार्य होता रहा। इस बीच में केवल दो परिवर्तन हुए। कानपूर में कृषि स्कूल खोला गया। बाद को वही स्कूल कृषि कालेज में परिणत हो गया, कृषि विभाग को अधिक आदमी देकर शक्तिशाली बनाया गया, तथा प्रान्त में फार्मों की संख्या बढ़ा दी गई।

सन् १६०५ में भारत सरकार ने घोषणा की कि वह २० लाख ७५

जो बाद को बढ़ाकर २४ लाख कर दिए गए) प्रति वर्ष प्रान्तों में कृषि ५५क अनुसंधान, प्रयोग, प्रदर्शन, तथा शिक्षा के लिए देगी। इस सहायता प्रत्येक प्रान्त में कृषि कालेजो की स्थापना की गई और उनके अध्यापकों के पदों पर भिन्न भिन्न विषयों के विशेषज्ञ रक्खे गए। इन विशेषज्ञों का कार्य केवल कालेज के विद्यार्थियों को पढाना ही नहीं था वरन अपने विषय के अन्तरगत प्रान्तीय समस्याओं को हल करने के लिए अनुसन्धान करना भी था। उदाहरण के लिए यदि कोई विशेषज्ञ फसल की बीमारियों की शिक्षा देता है तो वह प्रान्त में होने वाली फसलों की बीमारियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान भी करता है। प्रत्येक बड़े क्षेत्र मे विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बात का प्रयोग करने के लिए एक प्रयोग करने वाला स्टाफ (Experimental Staff) रक्खा गया। इसका कार्य फार्मों पर विशेषज्ञो द्वारा बतलाई हुई बातो का प्रयोग करना और उस प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध होने पर उस बात का गाँवों में प्रचार करना है। प्रचार कार्य उन छोटे छोटे प्रदर्शन फार्मों (Demonstration farm) के द्वारा किया जाता है जो कि प्रत्येक ज़िले अथवा तहसीलों में स्थापित किए गए हैं।

कृषि विभाग का संगठन और उसका कार्य

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कृषि विभाग का प्रधान अधिकारी डायरैक्टर आफ ऐग्रीकल्चर होता है। डायरैक्टर विभाग का सारा काम सभालता है। कृषि विषयक शिक्षा देने के लिए कानपूर में एक प्रथम श्रेणी का कृषि कालेज (Agricultural College) है। कानपूर में कृषि कालेज में कृषि विषयक उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान (Research) कार्य भी होता है। बीजों का सुधार, खाद, फसलों के कीड़े, भूमि तथा सिंचाई सम्बन्धी अनुसधान कार्य इसी कालेज के विशेषज्ञ अध्यापक करते हैं। साधारण कृषि विषयक शिक्षा, ग्रामीणों, जमींदारो तथा कृषि विभाग के छोटे कर्मचारियों को देने के लिए प्रान्त मे बुलन्दशहर तथा एक दो अन्य स्थानों पर कृषि स्कूल खोले गए हैं।

समस्त प्रान्त को कुछ सर्किलों मे बाँटा गया है। प्रत्येक सर्किल एक ...ो डायरैक्टर-आफ-एग्रीकल्चर की आधीनता में होता है। उसका मुख्य

कार्य अपने क्षेत्र में स्थित प्रयोग फार्म (Experimental farms) बीज फार्म (Seed farms) तथा प्रदर्शन फार्म (Demonstration farms) का प्रबन्ध करना तथा प्रदर्शन प्लाट्स (Demonstration plots) की देख-भाल करना है। इसके अतिरिक्त अपने सर्किल में अच्छे बीच और खेती के औज़ारो को बेचना तथा कृषि सुधार विषयक प्रचार कार्य करना भी उसके जिम्मे है। इस कार्य के लिए उसकी आधीनता में इन्सपैक्टर और फील्डमैन रहते हैं जो इस कार्य को करते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सयुक्त प्रान्तीय कृषि विभाग तीन प्रकार के फार्म रखता है, एक जिन पर विशेषज्ञों द्वारा अनुसन्धान की हुई बातों का प्रयोग किया जाता है, दूसरे जिन पर अच्छा बीज अधिक राशि में उत्पन्न करके किसानों को 'चा जाता है, तीसरे वह जिन पर अच्छी खेती करने का ढग किसानों को बताया जाता है।

प्रदर्शन फार्म और प्रदर्शन प्लाट (Demonstration farm and Demonstration plot) का प्रबन्ध फील्डमैन करता है। किसी गाँव में किसी भी किसान को जिस प्रकार फील्डमैन कहे उस प्रकार खेती करने को राजी कर लिया जाता है। फील्डमैन अपनी देखरेख में किसान से खेती करवाता है। जब उस किसान की फसलें अपने पड़ोसियों की फसलों से अच्छी होती हैं। और उसे अधिक लाभ होता है तो गाँव के अन्य किसानों को फील्डमैन की बताई हुई बातों पर विश्वास हो जाता है और कृषि विभाग के द्वारा बताये हुए सुधारों को अपना लेते हैं।

कृषि विभाग अच्छा बीज बेंचने और उसको अपने सीड फार्मस् (बीज उत्पन्न करने के फार्म) पर उत्पन्न करने में अपनी बहुत शक्ति लगाता है। गेहूँ, गन्ना, कपास, तथा अन्य फसलों के अच्छे बीज तैयार करने में कृषि-विभाग को बहुत सफलता मिली है। कृषि विभाग उस अच्छे बीज को अपने फार्म पर तथा अपनी देख रेख में जमींदारों के फार्म तथा किसानों के खेतों पर उत्पन्न करते हैं। किसानों को बीज बेचने के लिए कृषि विभाग ने देहातों में बहुत बड़ी सख्या मे बीज भण्डार (Seed Depot) खोले हैं जहाँ से किसानों को बीज दिया जाता है। कृषि साख समितियों, रहन-सहन सुधार समितियों, और ग्राम-सुधार के आरगेनाइजरों के द्वारा भी कृ

को अच्छा बीज बेंचता है। बीज के अतिरिक्त कृषि विभाग अच्छे, कोल्हू, तथा अन्य खेती के यन्त्र भी बेचता है।

कृषि सुधार सम्बन्धी आवश्यक बातों का प्रचार तथा प्रदर्शन करने का भी कृषि विभाग को ही करना पड़ता है। कृषि प्रदर्शनियों, मेलों, तथा अन्य समारोहों पर कृषि विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किसानों में प्रचार कराता है। जब कहीं फसलों में कीड़ा लग जाता है तो उसका दूर करने के उपाय तथा पशुओं की नस्ल को उन्नति के उपाय भी किसानों को बताए जाते हैं।

कृषि विभाग मुर्गी, गाय, बैल, बकरी, तथा अन्य पशुओं की नस्ल को सुधारने तथा खेती के यन्त्रों में आवश्यक सुधार करने का भी प्रयत्न करता है। पिछले दिनों में कृषि विभाग ने गन्ने की ओर विशेष ध्यान दिया है और यही कारण है कि गन्ने की पैदावार प्रान्त में बहुत अच्छी होने लगी है।

कृषि विभाग के अतिरिक्त आल इंडिया कृषि कौंसिल भी है जो खेती के सम्बन्ध में अनुसंधान करवाया करती है और कृषि विभागों को सलाह-मशवरा देती है। यही नहीं भारत सरकार को भी खेती के धंधे के बारे में क्या नीति बरती जावे इस सम्बन्ध में कौंसिल सलाह देती है। युद्ध के उपरान्त खेती की उन्नति करने की योजना बनाई गई है। खाद, अच्छे हल और पैदावार का बढ़ाने का प्रयत्न किया जावेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—संयुक्त प्रान्त में कृषि विभाग कब खोला गया और आरम्भ में उसने क्या काम किया?

२—आजकल प्रान्त में कृषि विभाग कौन कौन से कार्य करता है?

३—प्रान्त में कृषि शिक्षा का कहाँ कहाँ प्रबन्ध है और इन कृषि स्कूल और कालेजों से क्या लाभ है?

४—कृषि विभाग के स्थापित होने से प्रान्त में खेती की क्या उन्नति ?

५—कृषि विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किये गए आविष्कारों का प्रचार किस प्रकार करता है ?

६—अच्छे बीज पैदा करने और उसको बेचने का प्रबन्ध इस प्रान्त में कैसा है ?

८—कृषि प्रदर्शिनियों की क्या उपयोगिता है ?

पच्चीसवाँ अध्याय

ग्राम और ज़िले का शासन

अब हम ग्राम और जिले का किस प्रकार शासन होता है इस पर विचार करते हैं। अधिकांश गाँवों की दशा खराब है, पढ लिख कर सुयोग्य हो जाने पर लोग जाकर शहरों में बस जाते हैं, वे ग्रामों का ध्यान नहीं रखते। इससे ग्रामों की सफ़ाई, रहन-सहन आदि में यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाती। देश का जो भला चाहते हैं उन्हें गाँवों की समस्याओं का सहानुभूति पूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

ग्राम शासन; ग्राम के मुख्य कर्मचारी

हर गाँव में चार कर्मचारी होते हैं। मुखिया, नम्बरदार, पटवारी और चौकीदार। नम्बरदार ज़मींदारों से मालगुज़ारी तथा सिंचाई (आबपाशी) की रकम वसूल करता है, और उसे तहसील में जमा कर देता है। वह अपने गाँव में शान्ति रखने का प्रयत्न करता है।

मुखिया

गाँव के किसी प्रभावशाली व्यक्ति को मुखिया बना दिया जाता है। गाँव की घटनाओं की मुखिया चौकीदार के द्वारा पुलिस में रिपोर्ट करवाता है। उसका तहसील से भी सम्बन्ध होता है। दौरे के समय वह राज्यकर्मचारियों के साथ सहयोग करता है।

पटवारी

बड़े गाँवों में एक ही गाँव का, और छोटे छोटे गाँवों में दो दो या अधिक का, एक पटवारी होता है। वह अपने गाँव के किसानों और

ज़मींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज़ तथा रजिस्टर आदि रखता है। जब खेतों में कोई तबदीली हो, कोई खेत या उसका हिस्सा बिक जावे, या किसी खेत का मालिक बदल जावे या मर जावे तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है। मालगुजारी का हिसाब रखता है। खेतों में कितनी पैदावार हुई है, कितनी भूमि पर अमुक फसल उत्पन्न की गई है, गांव में कितने पशु हैं, इनके आंकड़े भी पटवारी ही रखता है।

चौकीदार

चौकीदार गाँव में पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितने आदमी मरे, कितने बच्चों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, मारपीट, तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है।

तहसीलदार

ऊपर बतलाए हुए गांवों के कर्मचारी तहसीलदार के आधीन होते हैं तहसीलदार अपनी तहसील का प्रधान अधिकारी होता है। तहसीलदार सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, कानूनगो इत्यादि होते हैं। प्रत्ये कानूनगो को एक परगना दे दिया जाता है वह उस परगने के पटवारियों काम की देखभाल करता है। तहसीलदार प्रजा और अपने से ऊपर अधिकारियों को एक दूसरे के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना देता रहता है उसका मुख्य कार्य तहसील की मालगुज़ारी वसूल करना है, जिसे वह अप सहायक कानूनगोओं की सहायता से वसूल करता है। तहसीलदार फ़ौजदारी के मामले भी सुनता है। उसे तीसरे या दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटी* के अधि कार भी होते हैं। वह पचास से लेकर दो सौ रुपए तक जुर्माना और ए मास से छः मास तक की क़ैद की सज़ा दे सकता है। इन राज्य कर्मचारि के अतिरिक्त कुछ ऐसे विभाग हैं जिनका गांव के शासन में तो कोई सम्ब

* मजिस्ट्रेट—वह कर्मचारी जिसे शासन तथा न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार प्राप्त हों।

नहीं है वरन् गाँव की भलाई करना जिनका कर्तव्य है। इन विभागों के कर्मचारियों का भी गाँवों से सम्पर्क रहता है, उदाहरण के लिए आबपाशी, कृषि विभाग, सहकारिता विभाग, ग्राम सुधार विभाग तथा स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी। इन कर्मचारियों का गाँव की सेवा करना मुख्य कार्य है।

देहाती बोर्ड और ज़िला-कौंसिल

देहातों में प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का काय करने वाली मुख्य संस्थाएं बोर्ड कहलाती हैं। इनके तीन भेद हैं। किसी किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं और कहीं कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं।

१—लोकल-बोर्ड, यह कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिवीज़नल-बोर्ड। यह एक ताल्लुके या सब डिवीज़न मे होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देखभाल करता है।

३—जिला-बोर्ड, इसे किसी प्रान्त मे जिला कौंसिल भी कहते हैं; यह एक जिले में होता है और जिले भर के लोकल-बोर्डों (या ताल्लुका बोर्डों) का निरीक्षण करता है।

इन बोर्डों का संगठन कुछ कुछ म्यूनिसपैलिटियों की ही भाँति होता है। यद्यपि बोर्डों में अधिकतर चुने हुए सदस्य ही होते हैं, तथापि कहीं-कहीं नामज़द सदस्य भी काफी होते हैं। किस जिला बोर्ड में कितने सदस्य हों, तथा उसका सभापति चुना हुआ रहे या नियुक्त किया जावे, यह प्रत्येक प्रान्त के जिला बोर्ड-कानून से निश्चित किया हुआ है। संयुक्त प्रान्त में सभापति चुना हुआ एवं गैर सरकारी होता है।

निर्वाचक और सदस्य

जिला बोर्डों के लिये निम्नलिखित व्यक्ति निर्वाचक या मतदाता नहीं हो सकते :-(क) जो ब्रिटिश प्रजा न हों (ख) जो अदालत से पागल ठहराए गए हों और (ग) जो इक्कीस वर्ष से कम के हों। इन्हें छोड़कर साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) निर्वाचक हो सकता है जो कि एक निश्चित मालगुजारी, लगान, अथवा कर देता हो। वह शिक्षित हो। शिक्षा कौन सी दर्जे तक हो यह भी निश्चित है।

निर्वाचकों को चाहिए कि खूब सोच समझ कर वोट दें। उन्हें ऐसे उम्मीदवार को ही अपना वोट देना चाहिए जो कि गाँव वालों की सच्ची सेवा करना चाहता और सदस्य बनने के सर्वथा योग्य हो और जिससे गाँवों के विशेष हित होने की आशा हो। किसी स्वार्थ वश या किसी प्रकार के लिहाज के कारण अयोग्य आदमियों को कभी वोट न देना चाहिए।

बोर्ड के चुनाव के लिए ज़िले को भिन्न भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य बोर्ड में जाता है। बोर्ड के सदस्य गाँवों के हित का बहुत कुछ काम कर सकते हैं, उन्हें गाँव वालों की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से सदस्य ग्रामवासियों की सेवा करना चाहें तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। अतएव उन्हीं लोगों को उम्मीदवार हो चुनाव के लिए खड़े होना चाहिए जो कि योग्य हों और समय देकर गाँव वालों की सेवा करना चाहें।

जिला बोर्ड के कार्य

बोर्ड का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के अतिरिक्त कृषि, और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं:—१ सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना और उन पेड़ों की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और प्रबन्ध करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला बोर्ड के ही होते हैं) ३ चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाज़ार, मेला, नुमायश, या कृषि प्रदर्शिनी का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के लिए तालाब या कुयें खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—काँजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं [जिस आदमी का पशु नुकसान करते हैं वह उन्हें काँजी हौज़ भेज देता है, जब पशु का मालिक उसे लेने आता है तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है] ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

जिला बोर्डों की आय

ब्रिटिश भारत में बोर्डों के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की सख्या इक्कीस
करोड़ से भी अधिक है। उपर्युक्त कार्यों तथा इस जनसख्या को देखते हुए
इनकी कुल वार्षिक आय जो लगभग सोलह करोड़ रुपये हैं बहुत कम है।
आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया गया है, और जो
सरकारी वार्षिक लगान या मालगुज़ारी के साथ ही प्राय: एक आना या अधिक
की रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इनके
अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार बोर्डों को कुछ रकम, कुछ शर्तों
पर प्रदान करती है। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर महसूल,
पशु चिकित्सा और स्कूलों की फीस, कांजी हौज़ की आमदनी, मेले-नुमायशों
पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि कर हैं। प्राय लोकल बोर्डों की
कोई स्वय आय नहीं होती, उन्हें समय समय पर जिला बोर्डों से ही कुछ
रुपया मिल जाता है, वे उस रुपये को जिला बोर्ड की इच्छा या सम्मति के
विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण

डिप्टी कमिश्नर (या कलेक्टर) अथवा कमिश्नर इनके काम की
देखभाल करते हैं। कलेक्टर को इनके सम्बन्ध में बहुत अधिक अधिकार हैं।
जब वह समझे कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है
जिसमे सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह उस काम को बद कर
सकता है तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाए जाने से रोक सकता है। यदि
प्रान्तीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं
करता तो वह उसे तोड़ सकती है। उस दशा मे बोर्ड का नया चुनाव होता
है। सयुक्त प्रान्त की सरकार ज़िला बोर्डों के सम्बन्ध में एक नया कानून
बनाने जा रही है उसके अनुसार बोर्डों के कार्य में कलेक्टर या कमिश्नर को
हस्तक्षेप करने का भविष्य में अधिकार नहीं रहेगा और न बोर्ड में नामज़द
सदस्य ही रक्खे जावेंगे। स्वायत्त शासन विभाग का मन्त्री (Minister for
Local Self-Government) ही बोर्डों का नियन्त्रण करेगा।

निर्वाचकों को चाहिए कि खूब सोच समझ कर वोट दें। उन्हें ऐसे उम्मीदवार को ही अपना वोट देना चाहिए जो कि गाँव वालों की सच्ची सेवा करना चाहता और सदस्य बनने के सर्वथा योग्य हो और जिससे गाँवों के विशेष हित होने की आशा हो। किसी स्वार्थ वश वा किसी प्रकार के लिहाज़ के कारण अयोग्य आदमियों को कभी वोट न देना चाहिए।

बोर्ड के चुनाव के लिए ज़िले को भिन्न भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य बोर्ड में जाता है। बोर्ड के सदस्य गाँवों के हित का बहुत कुछ काम कर सकते हैं, उन्हें गाँव वालों की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से सदस्य ग्रामवासियों की सेवा करना चाहें तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। अतएव उन्हीं लोगों को उम्मीदवार हो चुनाव के लिए खड़े होना चाहिए जो कि योग्य हों और समय देकर गाँव वालों की सेवा करना चाहें।

जिला बोर्ड के कार्य

बोर्ड का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के अतिरिक्त कृषि, और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं :—१ सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना और उन पेड़ों की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और प्रबन्ध करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला बोर्ड के ही होते हैं) ३ - चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाज़ार, मेला, नुमायश, या कृषि प्रदर्शिनी का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के लिए तालाब या कुयें खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—काँजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं [जिस आदमी का पशु नुकसान करते हैं वह उन्हें काँजी हौज भेज देता है; जब पशु का मालिक उसे लेने आता है तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है] ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

जिला बोर्डों की आय

ब्रिटिश भारत में बोर्डों के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या इक्कीस करोड़ से भी अधिक है। उपर्युक्त कार्यों तथा इस जनसंख्या को देखते हुए उनकी कुल वार्षिक आय जो लगभग सोलह करोड़ रुपये हैं बहुत कम है। आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया गया है, और जो सरकारी वार्षिक लगान या मालगुज़ारी के साथ ही प्रायः एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इनके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार बोर्डों को कुछ रकम, कुछ शर्तों से प्रदान करती है। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर महसूल, पशु चिकित्सा और स्कूलों की फीस, काँजी हौज की आमदनी, मेले-नुमायशों पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि कर हैं। प्रायः लोकल बोर्डों की कोई स्वय आय नहीं होती, उन्हें समय समय पर जिला बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है, वे उस रुपये को जिला बोर्ड की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण

डिप्टी कमिश्नर (या कलेक्टर) अथवा कमिश्नर इनके काम की देखभाल करते हैं। कलेक्टर को इनके सम्बन्ध में बहुत अधिक अधिकार हैं। जब वह समझे कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है जिससे सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह उस काम को बंद कर सकता है तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाए जाने से रोक सकता है। यदि प्रान्तीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता तो वह उसे तोड़ सकती है। उस दशा में बोर्ड का नया चुनाव होता है। संयुक्त प्रान्त की सरकार ज़िला बोर्डों के सम्बन्ध में एक नया कानून बनाने जा रही है उसके अनुसार बोर्डों के कार्य में कलेक्टर या कमिश्नर को हस्तक्षेप करने का भविष्य में अधिकार नहीं रहेगा और न बोर्ड में नामज़द सदस्य ही रक्खे जावेंगे। स्वायत्त शासन विभाग का मंत्री (Minister for Local Self-Government) ही बोर्डों का नियन्त्रण करेगा।

नागरिक भावों की आवश्यकता

हमें भी भली भाँति समझ लेना चाहिए कि यदि हमारे गाँव में अशि[illegible]ी और लड़ाई-झगड़ा रहेगा तो हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकती[illegible]व हमें अपने गाँव और जिले की भलाई का ध्यान रखना चाहिए। अस्तु, प्रत्येक गाँव के व्यक्ति को जिला बोर्ड के काम में दिलचस्पी ले[illegible] चाहिए और यह देखते रहना चाहिए कि उनके निर्वाचित सदस्य गाँवों [illegible] भलाई के लिए क्या क्या कार्य कर रहे हैं? जब मतदाता (वोटर) इत[illegible] सतर्क रहेंगे तभी बोर्ड अधिक उपयोगी प्रमाणित हो सकेंगे।

ज़िले के शासन

यह तो हम पहले ही बतला चुके हैं कि ग्राम के कर्मचारी तहसीलदार [illegible] आधीन होते हैं। तहसीलदार सब डिवीजनल अफसर के आधीन, औ[illegible] सब-डिवीजनल अफसर, जिला मैजिस्ट्रेट (कलक्टर) के आधीन होते हैं[illegible] जिला मजिस्ट्रेट को पजाब, मध्यप्रान्त तथा अवध में डिप्टी कमिश्नर कहते हैं और आगरा तथा शेष प्रान्तों में कलक्टर कहते हैं।

मदरास प्रान्त को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में कुछ कुछ जिलों की एक कमिश्नरी है। उसका प्रधान अधिकारी कमिश्नर कहलाता है। वह अपनी कमिश्नरी के जिलों के प्रबन्ध की देख-भाल करता है। अब हम जिले का शासन कैसे होता है इसका वर्णन करेंगे।

शासन व्यवस्था में ज़िले का स्थान

ब्रिटिश भारत में कुल मिलाकर २७७ जिले हैं। जिलों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और सरकारी आय भिन्न भिन्न है। तथापि राज्य की कल जैसी एक जिले में चलती दिखलाई देती है वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं वैसे ही औरों में भी हैं। जनता के काम-काज का केन्द्र ज़िला होता है। ग्रामीणों का अधिकतर प्रभाव जो होता है उन्हें भी जिलों में काम पड़ता है। जिले के शासन प्रबन्ध को देखकर ही देश के शासन का अनुमान किया जा सकता है।

जिला मजिस्ट्रेट के कार्य

प्रत्येक जिले का प्रधान जिला मजिस्ट्रेट कहलाता है। उसे कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर भी कहते हैं। उस पर जिले की मालगुजारी वसूल करने की जिम्मेदारी होती है। इसीलिए उसे कलक्टर कहते हैं। वह अपने जिले की भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और जमींदार और किसानों आदि के झगड़ों का फैसला करता है। दुर्भिक्ष, बाढ तथा फसल के नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसकी सम्मति के अनुसार ही मिलती है। जिले के खजानों का वही उत्तरदाता है। उसे म्यूनिसिपैलटियों तथा जिला बोर्ड की निगरानी का अधिकार है। उसे अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त हैं जिनसे वह एक अपराध पर दो साल की कैद और एक हजार रुपये तक जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार सुख-शान्ति का वही उत्तरदाता है। वही स्थानीय पुलिस की निगरानी भी करता है। इस बात का निश्चय करने में कि कहाँ पुल, सड़क, इत्यादि बनने चाहिए, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए तथा जिले के किन किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। जिले में जिस बात का प्रबन्ध ठीक न हो उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। जिले की आतरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहात में दौरा भी करना होता है।

ज़िले के अन्य कर्मचारी

जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्यूनिसिपैलटी तथा जिला बोर्डों की निगरानी रखना, जेलखाने और स्कूलों का निरीक्षण करना। इन विविध कार्यों के लिए जिले में कई अफसर रहते हैं, जैसे स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर पुलिस का सुपरिंटैनडैंट या पुलिस कप्तान, अस्पताल का सिविल

। का सुपरिंटेनडैंट, निर्माण कार्य के लिए एग्जीक्यूटिव इंजिनियर कार्य के लिए जिला जज आदि होते हैं। ये अफसर अपने पृथक् भागों के उच्च कर्मचारियों के आधीन होते हैं। परन्तु शासन के से जिला जज और मुंसिफ आदि को छोड़ कर सब पर जिला मजिस्ट्रेट होता है। जिला मजिस्ट्रेट के कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी ।र सहायक मैजिस्ट्रेट भी रहते हैं।

प्रायः प्रत्येक जिले के कुछ भाग होते हैं जिन्हें सबडिवीजन कहते हर एक सब डिवीजन एक डिप्टी कलक्टर अथवा एक्सट्रा असिस्टैंट कमिश के आधीन रहता है। अपने अपने सब डिवीजन में सब डिवीजनों के अफ़ के अधिकार जिला मजिस्ट्रेट की भाँति होते हैं।

कमिश्नर

पहिले कहा जा चुका है कि मदरास प्रान्त को छोड़ कर प्रत्येक प्रान्त में कुछ कमिश्नरियाँ होती हैं। इनके प्रधान अफसर को डिवीजन कमिश्नर या कमिश्नर कहते हैं। वह शासन सम्बन्धी कोई विशेष कार्य न करता। केवल अपने आधीन जिला अफसरों के कार्य की जाँच पड़ताल कर है, जिलों से जो रिपोर्ट या पत्र आदि प्रान्तीय सरकार के पास जाते हैं वे स कमिश्नर के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नर माल (रेवन्यू) के मुकदमों अपील भी सुनता है। मालगुजारी के बन्दोबस्त में इसका काम केवल परामर्श देना है, पर विशेष दशाओं में उसे मालगुजारी की वसूलयाबी रोकने अधिकार है।

कमिश्नरों को अपनी अपनी म्युनिसिपैलटियों के काम को देखने-भाल के भी कुछ अधिकार होते हैं। परन्तु उनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी प्रबन्ध के लिए। पंजाब और सी॰ पी॰, में सर्वोच्च अधिकारी फाइनेन्श कमिश्नर है और संयुक्त प्रान्त, बिहार और बंगाल में रेवन्यू बोर्ड है। बोर्ड में एक से लेकर चार तक मेम्बर होते हैं। फाइनेनसियल कमिश्नर और रेवन्यू बोर्ड मालगुजारी के सम्बन्ध में कमिश्नरों और कलक्टरों के का देखभाल करते हैं, माली मामलों में यह कमिश्नरों के निर्णय के विरुद्ध भी सुनते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँवों के मुख्य कर्मचारी कौन से होते हैं और वे क्या कार्य करते हैं ?

२—तहसीलदार और उसके आधीन कर्मचारी क्या काम करते हैं ?

३—ज़िला बोर्ड किसे कहते हैं और वह कैसे बनता है ?

४—ज़िला बोर्ड क्या क्या काम करता है ?

५—ज़िला बोर्ड के पास खर्च करने के लिए रुपया कहाँ से आता है ?

६—यदि तुम कभी अपने ज़िला बोर्ड के चेयरमैन चुने जाओ और बहुमत तुम्हारे पक्ष में हो तो तुम गाँवों की दशा सुधारने के लिए क्या करोगे ?

७—जिला का शासन किस प्रकार चलता है ?

८—जिला मैजिस्ट्रेट और कमिश्नर क्या काम करते हैं ?

९—गाँव वालों का कौन से सरकारी विभागों से अधिक काम पड़ता है ?

छब्बीसवाँ अध्याय

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

यद्यपि गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है और हानिकर रूढ़ियों के कारण उनकी दशा और भी खराब हो गई है, फिर भी गाँवों के सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी अच्छाइयाँ हैं जो आज भी नष्ट नहीं हुई हैं। यदि गाँव की उन अच्छी रस्मों के आधार पर गाँव में कार्य किया जावे तो वहाँ बहुत कुछ सुधार हो सकता है। गाँवों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि गाँव वालों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लिया जावे।

ज़मींदार और किसानों का सम्बन्ध

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में ज़मींदारी और रैयतवारी प्रथा प्रचलित है। उत्तर भारत में ज़मींदारी और दक्षिण में रैयतवारी प्रथा है। आरम्भ

गांव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध one another

गाँव में भ्रातृ भाव तथा सहयोग की भावना अब भी बहुत कुछ अंशों में शेष है। सारा गाँव एक बड़े कुटुम्ब के समान होता है और समय पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यदि किसी किसान के यहाँ लड़की का विवाह होता है तो गाँव भर के लोग चारा, लकड़ी, दही, दूध तथा टीके के रुपयों से उसकी सहायता करते हैं। विवाह का सारा कार्य बिरादरी तथा गाँव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर कर लेती हैं। पुरुष भी बारात की सेवा में भरसक सहायता देते हैं। खेतों की बुवाई, सिंचाई और कटाई के समय भी किसान एक दूसरे का काम करते हैं जिससे कि काम हलका हो जाता है। प्रत्येक बिरादरी की एक पंचायत होती है जो कि अपनी बिरादरी के सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करती है। किसी किसी प्रदेश में जहाँ कि पश्चिमीय सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है, गाँव का सारा आर्थिक और सामाजिक संगठन ही सहयोग के आधार पर खड़ा हुआ मिलता है। राजपूताने के गाँवों में सिंचाई के लिए गाँव के तालाब की मरम्मत गाँव के प्रत्येक पुरुष और गाँव की बहू (गाँव की लड़कियाँ इस श्रम से मुक्त हैं) को करनी पड़ती है। गाँव के मंदिर के व्यय के लिए घर पीछे पाव भर रुई सवा सेर तेल और छटाँक भर घी लिया जाता है। गाँव के झगड़ों का फैसला पंचायत करती है और शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए ग्राम पंचायत घर के पीछे कर उगाहती है। एक प्रकार से सारा स्थानीय शासन ही गाँवों की पंचायत करती है। गाँव के लोग फिर चाहे वे भिन्न-भिन्न जातियों के ही क्यों न हों एक दूसरे को अपने भाई के समान ही मानते हैं। एक क्षत्रिय का लड़का भी एक कहार को जो उससे आयु में बड़ा है चाचा या दादा कहकर पुकारता है। पहले तो गाँवों का जीवन सुन्दर, मधुर, और सहयोग का आदर्श जीवन था। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमीय सभ्यता के मूल आधार व्यक्तिवाद (Individualism)*

*व्यक्तिवाद :—इस सिद्धान्त को मानने वाले केवल अपने ओर ही ध्यान देते हैं।

दारों और किसानों के सम्बन्ध अच्छे थे। जमींदार अधिकतर अपने गाँवों रहता था, किसानों के दुख-दर्द में सम्मिलित होता था, अकाल अथवा किसी आपत्ति के समय अपनी रैयत की आर्थिक सहायता करता था, और उसके प्रतिफल स्वरूप किसान जमींदार से प्रेम करते थे और समय पड़ने पर उसके लिए कष्ट सहने को तैयार रहते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि पहले गाँव के लोग संगठित होते थे, गाँव की पंचायत बहुत शक्तिशाली संस्था होती थी, इस कारण जमींदार का यह साहस ही नहीं होता था कि वह किसानों को तंग करे। दूसरे राजनैतिक अशान्ति के कारण भी जमींदार किसानों से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक समझते थे। किन्तु अब अधिकतर जमींदार गाँवों में न रहकर शहरों में रहते हैं। उनके कारिन्दे मनमाना अत्याचार करते हैं। बेगार, नजराना और भाँति भाँति के ढंगों से किसानों से रुपए ऐंठे जाते हैं। समय पड़ने पर जमींदार अपनी रैयत की सहायता नहीं करते। कुछ जमींदार अब भी अच्छे मिलेंगे, उनकी रैयत उनसे खुश है, परन्तु अधिकांश जमींदार और किसानों का सम्बन्ध अच्छा नहीं है। अब समय आ गया है जबकि जमींदारों को अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देना चाहिए, नहीं तो गाँवों से उनका रहा सहा प्रभाव भी जाता रहेगा।

महाजन और किसान

महाजन गाँव वालों को कर्ज देता है। अर्थशास्त्र के विद्वानों का कथन है कि भारतवर्ष में महाजन एक आवश्यक बुराई (Necessary evil) है। किसान समय पर प्रत्येक कार्य के लिए महाजन से कर्ज पा सकता है। अभी तक और कोई संस्था (बैंक, अथवा सहकारी साख समिति) महाजन को प्रतिद्वन्द्विता में परास्त नहीं कर सकी। महाजन अपनी इस परिस्थिति का अनुचित लाभ उठाता है और किसान को लूटता है। परन्तु अब सरकार के द्वारा भिन्न-भिन्न ऋण सम्बन्धी कानून बन जाने तथा सहकारी साख समितियों की स्थापना हो जाने के कारण उसकी शक्ति घट गई है। भविष्य में महाजन की शक्ति और भी घट जाने की सम्भावना है। उस समय वह ईमानदारी से उचित सूद पर लेन देन का कार्य करेगा।

The relation of villagers with relation to one another

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

गाँव में भ्रातृ भाव तथा सहयोग की भावना अब भी बहुत कुछ अंशों में शेष है। सारा गाँव एक बड़े कुटुम्ब के समान होता है और समय पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यदि किसी किसान के यहाँ लड़की का विवाह होता है तो गाँव भर के लोग चारा, लकड़ी, दही, दूध तथा टीके के रुपयों से उसकी सहायता करते हैं। विवाह का सारा कार्य बिरादरी तथा गाँव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर कर लेती हैं। पुरुष भी बारात की सेवा में भरसक सहायता देते हैं। खेतों की बुवाई, सिंचाई और कटाई के समय भी किसान एक दूसरे का काम करते हैं जिससे कि काम हलका हो जाता है। प्रत्येक बिरादरी की एक पंचायत होती है जो कि अपनी बिरादरी के सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करती है। किसी किसी प्रदेश में जहाँ कि पश्चिमीय सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है, गाँव का सारा आर्थिक और सामाजिक संगठन ही सहयोग के आधार पर खड़ा हुआ मिलता है। राजपूताने के गाँवों में सिंचाई के लिए गाँव के तालाब की मरम्मत गाँव के प्रत्येक पुरुष और गाँव की बहू (गाँव की लड़कियाँ इस श्रम से मुक्त हैं) को करनी पड़ती है। गाँव के मंदिर के व्यय के लिए घर पीछे पाव भर रुई सवा सेर तेल और छटाँक भर घी लिया जाता है। गाँव के झगड़ों का फैसला पंचायत करती है और शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए ग्राम पंचायत घर के पीछे कर उगाहती है। एक प्रकार से सारा स्थानीय शासन ही गाँवों की पंचायत करती है। गाँव के लोग फिर चाहे वे भिन्न-भिन्न जातियों के ही क्यों न हों एक दूसरे को अपने भाई के समान ही मानते हैं। एक क्षत्रिय का लड़का भी एक कहार को जो उससे आयु में बड़ा है चाचा या दादा कहकर पुकारता है। पहले तो गाँवों का जीवन सुन्दर, मधुर, और सहयोग का आदर्श जीवन था। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमीय सभ्यता के मूल आधार व्यक्तिवाद (Individualism)*

---

*व्यक्तिवाद :—इस सिद्धान्त को मानने वाले केवल अपने स्वार्थों की ओर ही ध्यान देते हैं।

प्रभाव के कारण तथा आर्थिक और सामाजिक पतन के कारणों से गाँवों यह सुन्दर सामाजिक संगठन नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता इस की है कि गाँवों की इन अच्छी रस्मों और भ्रातृभाव को नष्ट होने से बचाया जावे और गाँवों को नवजीवन प्रदान किया जावे।

गाँवों की संस्थाएँ और उनका महत्व

भारतीय ग्रामों की मुख्य संस्था पंचायत थी। ब्रिटिश शासन के पूर्व पंचायत वस्तुतः गाँव का शासन करती थी और प्रत्येक गाँव इस दृष्टि से स्वावलम्बी था। किन्तु ब्रिटिश शासन काल में उनका महत्व जाता रहा है। (पचायत के विषय में नीचे विस्तारपूर्वक लिखा गया है)। भविष्य में सम्भवतः पंचायतें फिर महत्वपूर्ण हो जावेंगी।

दूसरी महत्वपूर्ण संस्था जो किसी किसी गाँव में पाई जाती है वह है सहकारी समिति। सहकारी समितियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। साख उत्पादक समिति, क्रय विक्रय समिति, रहन-सहन सुधार समिति, तथा उपभोक्ता स्टोर इत्यादि। सहकारी समितियाँ गाँव वालों को ऋण देने तथा उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने का प्रयत्न करती हैं। इनके विषय में सहकारिता के अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

थोड़े दिनों से गाँवों में प्रान्तीय सरकारों की ओर से ग्राम-सुधार का कार्य हो रहा है। जिस गाँव को ग्राम-सुधार कार्य के लिए छाँटा जाता है वहाँ एक ग्रामसुधार पचायत का चुनाव कर लिया जाता है। आरगेनाइज़र इन पंचायतों के सहयोग तथा परामर्श से ग्राम-सुधार का का॑ करते हैं।

इनके अतिरिक्त किसी किसी गाँव में स्वतंत्र पचायतें होती हैं जो पुरानी पचायतों के अवशेष चिन्ह मात्र होती हैं। वे सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, परन्तु गाँव के सार्वजनिक कार्यों की देख-भाल करती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं। पाठशाला, मंदिर, प्याऊ पौनशाला तथा कहीं कहीं पाठशालाओं को भी वे पचायतें चलाती हैं। परन्तु इस प्रकार की पचायतें बहुत कम हैं।

पंचायतें

[illegible] काल में यहाँ प्रत्येक गाँव और नगर में एक प्रभावशाली पंचायत

रहती थी, जो सारा स्थानीय शासन स्वय करती और केन्द्रीय (Central) सरकार अर्थात् राजा के सामने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी। पचायत स्थानीय रक्षा के लिए अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमिकर वसूल करके राज-कोष में भेजती, गाँव और नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थानों, जलाशयों तथा पाठशालाओं की देख-भाल तथा उनका सचालन करती था, और अपने गाँव या नगर में छोटे छोटे दीवानी और फौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। भारतवर्ष में पचायतों का यहाँ तक विश्वास और प्रभाव था कि अब तक भी "पच परमेश्वर" की कहावत चली आती है। हिन्दू राजाओं के जमाने से ही यहाँ पचायतें थीं, मुसलमानी अमलदारी में भी वे एक महत्वपूर्ण सस्था के रूप में रहीं। परन्तु अंग्रेजी शासन काल मे उनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय सरकार ने ले लिए। पुलिस तथा फौज़दारी अदालतें स्थापित कर दी गई इससे पचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। अब भी कहीं कहीं पचायतें हैं जो धर्मशाला, मदिर, जलाशय तथा अन्य धार्मिक हित के कार्य करती हैं किन्तु ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र हैं।

कुछ वर्षों से भारतीय ग्रामों की इस संस्था का महत्व सरकार ने समझा है और पचायतों को पुनः नवीन रूप मे स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रान्तों में कानून बनाये गये हैं और धीरे धीरे इनकी स्थापना की जा रही है।

पचायतों की स्थापना

यदि किसी ग्राम के निवासी अपने यहाँ पञ्चायत स्थापित करना चाहें तो उस ग्राम के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को कलक्टर के यहाँ इस आशय की दरख़ास्त देनी चाहिए। कलक्टर इस बात की जाँच करेगा कि वहाँ पञ्चों का सब कार्य करने योग्य काफी आदमी मिल सकते हैं या नहीं। यदि इस जाँच का फल अनुकूल हो तो वह पञ्चों को नामजद कर देता है और उन पञ्चों में से एक को सरपञ्च नियुक्त कर देता है। जब यह
तो पञ्चायत स्थापित हो जाती है और यह निश्चय कर

के प्रभाव के कारण तथा आर्थिक और सामाजिक पतन के कारणों से गाँवों का यह सुन्दर सामाजिक संगठन नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों की इन अच्छी रस्मों और भ्रातृभाव को नष्ट होने से बचाया जावे और गाँवों को नवजीवन प्रदान किया जावे।

गाँवों की संस्थाएँ और उनका महत्व

भारतीय ग्रामों की मुख्य संस्था पचायत थी। ब्रिटिश शासन के पूर्व पंचायत वस्तुतः गाँव का शासन करती थी और प्रत्येक गाँव इस दृष्टि से स्वावलम्बी था। किन्तु ब्रिटिश शासन काल में उनका महत्व जाता रहा है। (पचायत के विषय में नीचे विस्तारपूर्वक लिखा गया है)। भविष्य में सम्भवतः पंचायतें फिर महत्वपूर्ण हो जावेंगी।

दूसरी महत्वपूर्ण संस्था जो किसी किसी गाँव में पाई जाती है वह है सहकारी समिति। सहकारी समितियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। साख उत्पादक समिति, क्रय विक्रय समिति, रहन-सहन सुधार समिति, तथा उपभोक्ता स्टोर इत्यादि। सहकारी समितियाँ गाँव वालों को ऋण देने तथा उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने का प्रयत्न करती हैं। इनके विषय में सहकारिता के अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

थोड़े दिनों से गाँवों में प्रान्तीय सरकारों की ओर से ग्राम-सुधार का कार्य हो रहा है। जिस गाँव को ग्राम-सुधार कार्य के लिए छाँटा जाता है वहाँ एक ग्रामसुधार पचायत का चुनाव कर लिया जाता है। आरगेनाइज़र इन पंचायतों के सहयोग तथा परामर्श से ग्राम-सुधार का का ॅ करते हैं।

इनके अतिरिक्त किसी किसी गाँव में स्वतंत्र पचायतें होती हैं जो पुरानी पचायतों के अवशेष चिन्ह मात्र होती हैं। ये सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, परन्तु गाँव के सार्वजनिक कार्यों की देख-भाल करती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं। गऊशाला, मंदिर, प्याऊ पौंसला तथा कहीं कहीं पाठ-शालाओं को भी ये पचायतें चलाती हैं। परन्तु इस प्रकार की पचायतें बहुत कम हैं।

पंचायतें

प्राचीन काल में यहाँ प्रत्येक गाँव और नगर में एक प्रभावशाली पचाय

रहती थी, जो सारा स्थानीय शासन स्वयं करती और केन्द्रीय (Central) सरकार अर्थात् राजा के सामने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी। पंचायत स्थानीय रक्षा के लिए अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमिकर वसूल करके राज-कोष में भेजती, गाँव और नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थानों, जलाशयों तथा पाठशालाओं की देख-भाल तथा उनका संचालन करती था, और अपने गाँव या नगर में छोटे छोटे दीवानी और फौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। भारतवर्ष में पंचायतों का यहाँ तक विश्वास और प्रभाव था कि अब तक भी "पंच परमेश्वर" की कहावत चली आती है। हिन्दू राजाओं के ज़माने से ही यहाँ पंचायतें थीं, मुसलमानी अमलदारी में भी वे एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में रहीं। परन्तु अंग्रेजी शासन काल में उनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय सरकार ने ले लिए। पुलिस तथा फौजदारी अदालतें स्थापित कर दी गई इससे पंचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। अब भी कहीं कहीं पंचायतें हैं जो धर्मशाला, मंदिर, जलाशय तथा अन्य धार्मिक हित के कार्य करती हैं किन्तु ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र हैं।

कुछ वर्षों से भारतीय ग्रामों की इस संस्था का महत्व सरकार ने समझा है और पंचायतों को पुनः नवीन रूप से स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रान्तों में कानून बनाये गये हैं और धीरे धीरे इनकी स्थापना की जा रही है।

पंचायतों की स्थापना

यदि किसी ग्राम के निवासी अपने यहाँ पञ्चायत स्थापित करना चाहें तो उस ग्राम के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को कलक्टर के यहाँ इस आशय की दरख़्वास्त देनी चाहिए। कलक्टर इस बात की जाँच करेगा कि वहाँ पञ्चों का सब कार्य करने योग्य काफी आदमी मिल सकते हैं या नहीं। यदि इस जाँच का फल अनुकूल हो तो वह पञ्चों को नामजद कर देता है और उन पञ्चों में से एक को सरपञ्च नियुक्त कर देता है। जब यह कार्यवाही हो चुकती है तो पञ्चायत स्थापित हो जाती है, और यह नि॰ कर दिया जाता है।

में किस दिन और किस स्थान पर तथा किस समय पञ्चायत काम किया

संयुक्त प्रान्त में पंचायतें

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कलक्टर पञ्च को स्वयं नामजद करता है। यदि भविष्य में कलक्टर को यह ज्ञात हुआ कि कोई पञ्च अथवा सरपञ्च अयोग्य अथवा बेईमान है तो वह उस पञ्च अथवा सरपञ्च को हटा भी सकता है। यदि कोई पञ्च इस्तेफा दे दे अथवा मर जावे तो कलक्टर उसके स्थान पर दूसरा पञ्च नामजद कर देता है।

कमिश्नर की लिखित सम्मति से कलक्टर किसी भी पञ्चायत को तोड़ सकता है।

पञ्चायत में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक सात पञ्च होते हैं किन्तु यदि तीन पञ्च भी हाजिर हों तो कार्य हो सकता है।

पञ्चायत को छोटे मोटे दीवानी तथा फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार होता है तथा (Cattle Trespass Act) आवारा घूमने वाले मवेशियों द्वारा खेतों का नुकसान होने पर उनके मालिकों पर जुर्माना करने का भी अधिकार होता है। इनके अतिरिक्त सफ़ाई सम्बन्धी कानून (Village Sanitation Act) के अनुसार पञ्चायतों को सफाई सम्बन्धी अधिकार भी हैं।

फौजदारी के मामलों में पञ्चायतों को अधिक से अधिक दस रुपए, मवेशियों द्वारा हानि पहुँचाये जाने के मामलों मे अधिक से अधिक पाँच रुपए तथा गाँव की सफाई सम्बन्धी मामलों में अधिक से अधिक एक रुपया जुर्माना करने का अधिकार है।

प्रत्येक पञ्चायत के क्षेत्र में एक विलेज-फंड (Village fund) खोला जाता है जिसका प्रबन्ध पञ्चायत करती है। विलेज-फंड में मुकदमा लड़ने वाले वादियों और प्रतिवादियों से ली हुई फीस, जुर्माने का रुपया, तथा ज़िला बोर्ड तथा प्रान्तीय सरकार द्वारा दी गई सहायता जमा की जाती है। इस फंड के द्वारा पञ्चायत अपने क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पानी, गाँव के रास्तों को ठीक करना तथा अन्य सार्वजनिक हित के कार्य करती है।

पंचायतों के कार्य करने का ढंग

जो भी व्यक्ति कोई मुकदमा दायर करना चाहता है वह सरपञ्च को लिखित अथवा जबानी दरखास्त देता है और नियत फीस जमा कर देता है। उस व्यक्ति की दरख़ास्त रजिस्टर में लिख ली जाती है और उसके अँगूठे का निशान अथवा हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं। पञ्चायत की आगामी बैठक में उस व्यक्ति की दरख़ास्त सुनने के उपरान्त यदि पञ्चायत ठीक समझती है तो प्रतिवादी के नाम समन भेजती है। पञ्चायत में किसी भी पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। फैसला पञ्चों के बहुमत से होता है। अन्य प्रान्तों में भी लगभग ऊपर लिखे हुए नियम लागू हैं।

पंचायत की सफलता के उपाय

पञ्चायतों से ग्राम सुधार तथा न्याय सम्बन्धी बहुत कुछ काम हो सकता है। लोगों का मुकदमेबाज़ी में जो अपरिमित धन और शक्ति नष्ट होती है वह बहुत कुछ बच सकती है। हाँ, ऐसी संस्थाओं की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझें। वे अधिकारियों के दबाव में न रह अपने नैतिक बल से कार्य करें। तभी जनता का उन पर यथेष्ट विश्वास हो सकता है और उन्हें लोगों का समुचित सहयोग मिल सकता है। पञ्च ऐसे आदमी होने चाहिए जिनके लिए जनता की सम्मति हो, जिन्होंने सर्व साधारण की सेवा की हो तथा भविष्य में भी जो लोक हित के अभिलाषी हों। पंचों का कर्तव्य है कि वे अधिकार की भावना न रख कर अपने कार्य को कर्तव्य समझकर सेवा भाव से काम करें; जनता के अधिकाधिक सम्पर्क में आवें, और उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों की यथेष्ट जानकारी रखें। अभी तक पञ्चायतों को बहुत कम अधिकार दिए गए हैं इसी कारण उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। जनता की माँग है कि भविष्य में पञ्चायतों को अधिकार दिए जावें। सम्भवतः अब जब कि जनता के प्रतिनिधि ही प्रान्त का शासन कर रहे हैं तब पञ्चायतों के अधिकार बढ़ा दिए जावेंगे।

ग्राम पंचायत हुकूमत कानून

. में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस सरकार ने ग्राम पञ्चायत हुकूमत किया है। इस कानून के द्वारा पञ्चायतों को गाँव के शासन का कुछ अधिकार मिल जावेगा। अब भविष्य में यह पञ्चायतें ही अधिकांश : का फैसला करेंगी और उनके अधिकार लगभग वे ही होंगे जो कि के हैं। उस प्रकार न्याय इन पञ्चायतों द्वारा सरलता से मिल सकेगा। इन पचायतों को गाँव की सफाई, स्वास्थ्य इत्यादि के सम्बन्ध में भी बहुत अधिकार दिये जावेंगे।

एक प्रकार से पञ्चायत गाँव का शासन प्रबन्ध करेगी और गाँव की सर्वांगीण उन्नति का प्रयत्न करेगी। गाँव वाले स्वयं उस कार्य में भाग लेंगे अस्तु उनमें स्वाभिमान का विकास होगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—ज़मींदार और किसानों का पहले कैसा सम्बन्ध था और आज कैसा सम्बन्ध है ?

२—गाँवों के रहने वालों में भाईचारे का जो सम्बन्ध आज तक चला आ रहा है उससे क्या हानि-लाभ है ?

३—गाँव में महाजन का क्या उपयोग है ?

४—पञ्चायत किसे कहते हैं और वह क्या कार्य करती है ?

५—संयुक्त प्रान्त में पञ्चायतों को क्या क्या अधिकार दिये गए हैं ?

६—प्राचीन काल में पञ्चायतों का गाँव के संगठन में कैसा स्थान था ?

७—सरकार द्वारा स्वीकृत पञ्चायतों में छोटे छोटे मुकदमों का फैसला किस प्रकार होता है ?

८—क्या पचायतों के अधिकारों को बढ़ाने की जरूरत है ? यदि है तो कौन से अधिकार उन्हें दिये जाने चाहिये ?

सत्ताईसवाँ अध्याय

सहकारी साख समितियाँ

(Cooperative Credit Societies)

सहकारिता का मूल-सिद्धान्त (Principles of Cooperation)

आधुनिक काल में समाज ने आर्थिक जीवन में प्रतिस्पर्धा या होड़ (Competition) के सिद्धान्त को अपना लिया है। जो निर्बल हैं उसके लिए समाज में कोई स्थान नहीं है। उदाहरण के लिए जुलाहा कपड़े की मिल की प्रतिस्पर्धा में असफल होता है, किसान को महाजन से ७५ प्रतिशत सूद पर ऋण मिलता है जबकि कोई सेठ अथवा ज़मींदार किसी बैंक से ७ या ८ प्रतिशत पर ऋण पा सकता है। निर्धन मज़दूर या किसान जब किसी दूकान पर सौदा लेने जाता है तो क्योंकि वह पैसे दो पैसे का सौदा लेता है इस कारण दूकानदार उसे खराब चीज़ अधिक दामों पर देता है। धनी व्यक्ति अच्छी वस्तु सस्ते दामों पर पा सकते हैं क्योंकि वे अधिक खरीदते हैं। इसका अर्थ यह है कि निर्धन व्यक्ति फिर,चाहे वह सम्पत्ति का उत्पादन (Production) करने वाला हो अथवा उपभोग (Consumption) करने वाला हो वह आधुनिक प्रतिस्पर्धा के कारण लूटा जाता है। सहकारिता इन निर्धनों को भाईचारे के आधार पर सगठित करके उन्हें वही सुविधायें प्रदान करना चाहता है जो कि धनी और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए सहकारिता आन्दोलन बहुत से जुलाहों को भाईचारे के आधार पर सगठित करके उन्हें मिलों की प्रतिस्पर्धा में सफल बनाने का प्रयत्न करता है। निर्धन किसानों की साख समिति स्थापित करके उन्हें उचित सूद पर ऋण दिलाने का प्रबन्ध करता है। साराश यह कि आज के इस होड़ (प्रतिस्पर्धा) से ज़माने में जो सुविधायें केवल धनी और समाज के सबल सदस्यों को ही प्राप्त हैं ; सहकारिता आन्दोलन उन्हें सहकारी सगठन के द्वारा निर्धन और समाज के निर्बल सदस्यों को भी पहुँचाता है।

यहाँ हम उदाहरण देकर यह समझाने की चेष्टा करेंगे कि ...

किसे कहते हैं ।-सहकारिता का अर्थ है मिल कर एक साथ कोई काम करना। मानलो कि एक गाँव से पचीस किसान जिनके पास भैंस या गाय हैं अपना अपना दूध शहर के हलवाइयों के पास प्रातः तथा सायंकाल ले जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ पचासों किसान प्रति दिन तीन या चार घंटे समय अपना थोड़ा-सा दूध हलवाई के पास ले जाने में व्यय करते हैं। यदि वह नियम बनाएँ कि उनमें से केवल एक किसान प्रति दिन बारी से सब का दूध शहर ले जावेगा तो हर एक दिन शेष चौबीस किसानों का तीन या चार घंटा समय नष्ट होने से बच जावेगा और सबों का दूध भी यथा समय शहर पहुँच जाया करेगा। यही नहीं यदि वे पचीस किसान एक साथ मिल कर अपना दूध बेचें तो हलावाइयों से उन्हें दूध के अच्छे दाम मिल सकते हैं। बस इस प्रकार के संगठन को सहकारी समिति कहेंगे। जुलाई के महीने में यदि तुम अपने दर्जे के लड़कों को इस बात के लिए राज़ी करलो कि वे अलग-अलग अपनी पाठ्य पुस्तकें शहर के बुकसेलरों से न खरीद कर एक साथ मिलकर प्रकाशकों से खरीदें तो तुम लोगों को पुस्तकें कम कीमत में मिल जावेंगी और तुम्हारा यह संगठन विद्यार्थियों की सहकारी समिति कहलावेगा। बस अब तो तुम समझ ही गए होगे कि किसी काम को एक साथ मिल कर करने को सहकारिता कहते हैं।

सहकारी साख समितियाँ (Cooperative Credit Societies)

सहकारी साख आन्दोलन की जन्मभूमि जर्मनी में दो प्रकार की साख समितियाँ कार्य कर रही हैं। १—रैफ़िसन मान्य सहकारी साख समितियाँ जिनके जन्मदाता श्री रैफ़िसन महोदय थे। २—शुल्ज समितियाँ जो विशेषतः नगरों में मध्यमवर्ग तथा छोटे छोटे कारीगर और व्यापारियों के लिए स्थापित की गईं। भारतवर्ष में सहकारी साख आन्दोलन जर्मनी से नकल किया गया इस कारण यहाँ भी दो प्रकार की सहकारी समितियाँ स्थापित की गईं। प्रथम रैफ़िसन प्रणाली की कृषि सहकारी साख समितियाँ (Agricultural Cooperative Credit Societies) जो गाँवों में स्थापित की गईं, दूसरी शुल्ज प्रणाली के प्यूपिल्स बैंक जो कि नगरों में स्थापित किए गए। कृषि सहकारी साख समितियों के विषय में अगले परिच्छेद में विस्तार

पूर्वक लिखा जायगा। कृषि साख समितियों और म्यूनिस्पल बैंकों (नगर साख समितियों) में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है।

१—कृषि साख समितियों में हिस्से या तो नहीं होते अथवा बहुत कम मूल्य के होते हैं। नगर साख समितियों में हिस्से अधिक मूल्य के होते हैं।

२—कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित* (Unlimited liability) होता है परन्तु नगर साख समितियों का दायित्व परिमिति Limited liability) होता है।

३—कृषि साख समितियों में लाभ नहीं बाँटा जाता (किसी विशेष दशा में ही बाँटा जाता है) नगर साख समितियों में लाभ बाँटा जाता है।

४—कृषि साख समितियों में किसी भी सदस्य को समिति का कार्य संचालन के लिए कोई वेतन नहीं मिलता परन्तु नगर-साख समितियों में प्रबन्ध करने वाले सदस्यों को वेतन दिया जा सकता है।

रैफिसन और शुल्ज प्रणालियों को भारतवर्ष की परिस्थिति के अनुसार कुछ संशोधन करके अपना लिया गया है। दोनों प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों को उचित सूद पर ऋण देने का प्रबन्ध करती हैं।

प्रारम्भिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

(Primary Agricultural Cooperative Credit Societies).

सन् १९०४ में जब सहकारिता आन्दोलन का यहाँ आरम्भ हुआ तो

---

* अपरिमित दायित्व (Unlimited liability) —अपरिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्य व्यक्तिगतरूप से समिति के सारे ऋण को चुकाने के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक साख समिति टूटती है और उस पर बाहर वालों का कर्ज़ा चढ़ जाता है तो समिति के लेनदार (Creditor) किसी एक सदस्य से सारा कर्ज वसूल कर सकते हैं। परिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्यों की ऋण चुकाने की जिम्मेदारी उनके हिस्से के मूल्य से परिमित होती है। यदि सदस्य ने अपने हिस्से का मूल्य चुका दिया है तो समिति का लेनदार उस सदस्य से कुछ वसूल कर सकता।

का उद्देश्य केवल गाँव वालों की साख की समस्या को हल कर देना। अन्य धंधों की भाँति खेती बारी में भी पूँजी उधार लेने की आवश्यकता है। कृषक महाजन से पूँजी उधार लेकर उसका दास बन जाता है। अतएव पूँजी की समस्या को हल करने के लिए ही कृषि सहकारी साख समितियाँ स्थापित की गईं। प्रारम्भ में साख की समस्या को हल करने की ओर विशेष ध्यान होने के कारण सहकारिता विभाग ने कृषि सहकारी-साख-समितियों को अधिक संख्या में स्थापित किया। इसी का फल है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अन्य सब प्रकार की समितियों से संख्या में अधिक हैं।

कृषि साख समिति के उद्देश्य

कृषि साख समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को खेती बारी तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिए ऋण देना है। सदस्यों को ऋण देने के लिए समिति गाँव वालों की डिपाजिट (जमा) लेती है अथवा सेन्ट्रल-सहकारी बैंकों से ऋण लेती है। इसके अतिरिक्त कृषि-साख समिति अपने सदस्यों के लिए बीज, खाद, हल तथा अन्य खेत के औजारों को खरीदती है, तथा वैज्ञानिक खेती किस प्रकार हो सकती है इसका प्रचार करती है।

समिति की सदस्यता

समिति के कम से कम दस सदस्य होते हैं। यदि सदस्यों की संख्या दस से कम हो जावे तो रजिस्ट्रार* उस समिति को तोड़ सकता है। समिति का सदस्य वही बनाया जाता है जिसका चरित्र अच्छा हो, जो ईमानदार हो, शराब न पीता हो और जुआ न खेलता हो। समिति के सदस्य बनाते समय उसके चालचलन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। कृषि साख समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि एक ही गाँव अथवा पास के गाँवों में रहते हों अथवा एक ही जाति या पेशे के हों।

---

*रजिस्ट्रार सहकारिता विभाग का प्रधान कर्मचारी है जो समितियों की [illegible], आय-व्यय निरीक्षण, देख भाल करता है और समितियों को तोड़ता है।

अपरिमित उत्तरदायित्व (Unlimited Liability)

कृषि साख समिति का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्ज़ ही चुकाने का जिम्मेदार नहीं होता परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे समिति का सारा कर्ज़ चुकाना होता है। उदाहरण के लिए मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गाँव की साख समिति दिवालिया हो जाती है, समिति के अधिकतर सदस्य अपना कर्ज़ अदा नहीं कर सकते। केवल दो या तीन सदस्य ही ऐसे हैं जिनके पास सम्पति है। ऐसी दशा में समिति के लेनदार (Creditors), उनमें से किसी एक से अथवा सबों से समिति का पूरा कर्ज़ा वसूल कर सकते हैं। उन धनी सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति बेंच कर भी समिति का कर्ज़ चुकाना होता है।

इसी कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा माली हालत से भली भाँति परिचित हों। यदि सदस्य एक दूसरे को भली भाँति न जानते हों तो वे अपरिमित दायित्व स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिए बाध्य है।

जब कोई नवीन सदस्य समिति में आना चाहता है तो वह सर्व सम्मति से ही लिया जा सकता है। एक गाँव में अधिकतर एक ही समिति होती है किन्तु यदि गाँव बड़ा हो तो एक से अधिक समितियाँ भी हो सकती हैं।

समिति का प्रबन्ध

समिति के कार्य सञ्चालन का पूर्ण अधिकार जनरल मीटिंग (साधारण सभा) (जिसमें समिति का प्रत्येक सदस्य होता है) को होता है। प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट ही दे सकता है फिर उसके पास समिति के कितने भी हिस्से क्यों न हों। जनरल मीटिंग अपने में से एक पञ्चायत चुन देती है कि समिति का सारा कार्य करती है। पंचायत के पाँच या सात सदस्य हैं। जनरल मीटिंग सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे

ौर साधारण नीति निर्धारित कर देती है। पञ्चायत वस्तुतः सारा का
रती है। पञ्चायत का चुनाव करने के अतिरिक्त जनरल मीटिंग डिपाज़ि
पर कितना सूद दिया जावे, सदस्यों से ऋण पर कितना सूद लिया जावे
अधिक से अधिक प्रत्येक सदस्य को उसकी हैसियत के अनुसार कितना ऋण
दिया जा सकता है, तथा समिति सैन्ट्रल बैंक से अधिक कितना ऋण ले इन
बातों का निश्चय करती है।

समिति की पञ्चायत के कार्य

१—पञ्चायत सदस्यों को हिस्से देकर उन्हें समिति का सदस्य बनाती है।

२—गाँव से डिपाज़िट आकर्षित करने का प्रयत्न करती है तथा सैन्ट्रल अथवा ज़िला बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। पञ्चायत को समिति के सदस्यों से तथा अन्य ग्रामवासियों से अधिक से अधिक मात्रा में रुपया जमा करने को कहना चाहिए।

३—पञ्चायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए कर्ज़ दिया जावे। पञ्चायत उस समय के अन्त में ऋण वसूल करती है।

४—पञ्चायत समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

५—पञ्चायत रजिस्ट्रार से समिति सम्बन्धी कार्यों में लिखा पढ़ी करती है।

६—सदस्यों के लिए सम्मिलित रूप में आवश्यक वस्तुएं खरीदती है तथा उनकी पैदावार को बेचती है।

७—पञ्चायत सरपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के कार्य की देखभाल रखता है।

समिति की पूँजी (Capital)

कृषि साख समितियों की कार्यशील पूँजी (Working Capital) निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होती है।

१—समिति प्रवेश फीस।

२—हिस्सों का मूल्य जो सदस्य देते हैं।
३—डिपाजिट जो सदस्यों तथा गैर सदस्यों से मिलती है।
४—सैन्ट्रल बैंक या जिला बैंकों से लिया हुआ ऋण।
५—रक्षित कोष (Reserve Fund)

प्रवेश फीस नाम मात्र को एक रुपया ली जाती है जो कि शुरू के खर्च के
ाम आती है।

कुछ प्रान्तों में सदस्यों को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तों में
स्से नहीं होते। पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा मदरास समितियाँ हिस्से वाली
ी हैं। अन्य प्रान्तों में समितियाँ हिस्से तथा गैर हिस्से वाली दोनों ही
ार की होती हैं। संयुक्त प्रान्त में एक हिस्सा २० रुपए का होता है। कम
कम एक हिस्सा प्रत्येक सदस्य को लेना होता है। हिस्से का मूल्य छमाही
क रुपए की किश्त में दस वर्षों में चुका दिया जाता है।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से
ीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार
ा है। समितियों को अधिकतर पूँजी के लिए सैन्ट्रल बैंकों पर ही निर्भर
ना पड़ता है क्योंकि अभी तक वे डिपाजिट अधिक आकर्षित नहीं कर सकी
। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाजिट आकर्षित करे उतनी ही उसकी
फलता समझी जानी चाहिए। क्योंकि डिपाजिट तभी अधिक जमा होगी
ा कि जनता को समिति का भरोसा होगा और उसकी आर्थिक स्थिति में
श्वास होगा। जब तक कि साख समितियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार
पाजिट आकर्षित करके पूँजी जमा नहीं कर सकतीं तब तक उनको निर्बल
समझना चाहिए।

कृषि सहकारी साख समितियों में साधारणत: लाभ सदस्यों में बाँटा नहीं
ता, हाँ जब रक्षित कोष (Reserve Fund) एक निश्चित रकम से
धिक हो जावे तो प्रान्तीय सरकार से अनुमति लेकर तीन चौथाई लाभ
दस्यों में बाँटा जा सकता है। फिर भी २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा
रना ही पड़ता है।

कृषि सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध व्यय लगभग कुछ

या तथा लाभ न बाँटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सफल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी अवस्था मे भी सदस्यों मे बाँटा नहीं जा सकता। उसका उपयोग समिति के कार्य मे हानि हो जाने पर उसे पूरा करने में होता है। यदि समिति भग हो जावे अथवा तोड़ दी जावे तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक हित के कार्य मे व्यय कर दिया जावेगा।

समिति के कार्यकर्ताओं का अवैतनिक होना

समिति के पचों को कोई वेतन नहीं दिया जाता। यदि सदस्यों में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो कि समिति का हिसाब इत्यादि रख सके, तो गाँव के किसी शिक्षित व्यक्ति को थोड़ा सा वेतन देकर वैतनिक मन्त्री रख लिया जाता है, किन्तु वैतनिक मन्त्री को समिति की मीटिंग में कोई सम्मति देने का अधिकार नहीं होता। सदस्य मन्त्री को कोई वेतन नहीं मिलता। गाँव के पटवारी को कभी मन्त्री न बनाना चाहिए क्योंकि उसका गाँव में बहुत प्रभाव होता है और वह पचों पर दबाव डाल सकता है।

समिति की साख निर्धारित करना

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जनरल मीटिंग समिति की अधिकतम साख निर्धारित करती है, उससे अधिक पचायत ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख निर्धारित करने के लिए सब सदस्यों की हैसियत का लेखा प्रति वर्ष तैयार किया जाता है। सब सदस्यों की हैसियत का एक चौथियाई से आधी तक समिति की साख मानी जाती है। किसी भी सदस्य की सम्पत्ति का पचास प्रतिशत से अधिक उसको उधार नहीं दिया जाता।

समिति द्वारा ऋण देने का कार्य

कृषि साख सहकारी समिति केवल सदस्यों को ही ऋण देती है। जो

भी सदस्य ऋण लेना चाहता है वह एक प्रार्थना पत्र पञ्चायत को देता है।
दरख्वास्त में उसे यह भी बतलाना पड़ता है कि वह किस कार्य के लिए ऋण
लेना चाहता है। ऋण लेने वाले सदस्य को दो व्यक्तियों की जमानत देनी
होती है। ऋण देते समय कर्ज लेने का उद्देश्य तथा सदस्य को चुकाने की
शक्ति का अनुमान कर के ही समिति कर्जा देना निश्चित करती है।

सहकारिता आन्दोलन का यह सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों
के लिए न दिया जावे, किन्तु भारतवर्ष में कृषि सहकारी साख समितियाँ
विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिए भी रुपया उधार दे
देती है। पञ्चायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे
कि सदस्य ने जिस कार्य के लिए ऋण लिया है उसी पर व्यय कर रहा है
अथवा नहीं। यदि सदस्य किसी दूसरे काम में रुपया लगावे तो पञ्चायत को
रुपया वापस माँग लेना चाहिए।

पञ्चायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए
किश्त बाँध देता है, क्योंकि सदस्यों को किश्तों द्वारा ऋण चुकाने में सुविधा
होती है। पञ्चायत को किश्तें समय पर वसूल करनी चाहिए, किन्तु फसल
नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य अनिवार्य कारण उपस्थित होने पर किश्त की
मियाद बढ़ा दी जाती है।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे हुए कार्यों के लिए ऋण देती हैं।

१—खेती बारी के लिए, मालगुजारी तथा लगान देने के लिए।
२—भूमि का सुधार करने के लिए।
३—पुराने ऋण को चुकाने के लिए।
४—गृहस्थी के कार्यों के लिए।
५—व्यापार के लिए।
६—भूमि खरीदने के लिए।

अब क्रमशः, कृषि साख सहकारी समितियाँ पुराने ऋण को चुकाने के
लिए तथा भूमि खरीदने के लिए कम ऋण देने लगी हैं क्योंकि समितियों ने
अब यह नीति बना ली है कि वे अधिक समय के लिए कर्ज़ न देंगी।

समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण

साख समितियों का आय-व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार की आधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आय-व्यय-निरीक्षकों (आडिटरों) से समितियों के आय-व्यय की जाँच कराता है। किसी किसी प्रान्त में आय-व्यय निरीक्षण का कार्य प्रान्तीय यूनियन की आधीनता में भी होता है। उस दशा में भी प्रान्तीय यूनियन के आय-व्यय निरीक्षकों (आडिटरों) को जब तक रजिस्ट्रार लायसैंस न दे दे तब तक वे आय-व्यय की जाँच नहीं कर सकते। आडिटर हिसाब की जाँच तो करता ही है परन्तु इस बात की भी जाँच करता है कि समिति नियमानुसार कार्य करती है या नहीं, परन्तु भारत-वर्ष में आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य भली भाँति नहीं होता।

आय-व्यय निरीक्षण के अतिरिक्त साख समितियों की देखभाल तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा उसके सहायक कर्मचारी और प्रान्तीय सहकारी यूनियन दोनों ही करते हैं।

कृषि सहकारी साख समितियों को मिली हुई सुविधायें

यदि समिति ने किसी सदस्य को बीज या खाद उधार दिया है अथवा उसको मोल लेने के लिए रुपया उधार दिया है, तो समिति को उसके द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। सदस्य का कोई दूसरा लेनदार उस फसल को कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, खेती तथा अन्य धन्धों में काम आने वाले यन्त्र, तथा धन्धों के लिए कच्चा माल उधार दिया है तो उन वस्तुओं पर, तथा उस कच्चे माल से तैयार किए हुए पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स (आयकर) नहीं लिया जाता और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है। सहकारी समितियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजने पर पोस्ट आफिस कुछ रियायती रेट पर उनका रुपया भेज देता है।

समिति के सदस्यों का हिस्सा पूँजी और [illegible] (Credit [illegible]) [illegible]

नहीं करवा सकता। किसी भी सदस्य के जमा किए हुए रुपए तथा लाभ के हिस्से को समिति ऋण के बदले में ले सकती है, कोई दूसरा लेनदार उसे कुर्क नहीं करवा सकता।

रजिस्ट्रार को यदि विश्वास हो जावे कि समिति की दशा अच्छी नहीं है तो वह उसे भंग कर सकता है।

क्या कृषि साख समितियाँ सफल हो रही हैं ?

साख समितियाँ सफल हो रही है अथवा नहीं इसमें कुछ मतभेद हो सकता है, किन्तु इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि वे अभी तक बहुत निर्बल हैं और वे वास्तव मे सहकारी नहीं हैं। एक बार बैंकिंग के एक प्रसिद्ध जानकार ने कहा था "इन समितियों में सहकारिता के सिद्धान्तों की नितान्त अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं चुकाये जाते, आय-व्यय-निरीक्षण ठीक नहीं होता तथा इन समितियों की देखभाल भी ठीक तरह से नहीं होती।" इसमें कोई सदेह नहीं कि ऊपर लिखे हुए दोष इन समितियों में अवश्य है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है, किन्तु सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ता इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। शाही कृषि कमीशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थिति अच्छी है, हाँ समितियों का कार्य दोषपूर्ण है।

सहकारी कृषि साख समितियों की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें। भारतवर्ष में गाँव के सदस्य यह समझते हैं कि सहकारी साख समितियाँ सरकार द्वारा खोले हुए बैंक हैं जो उन लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न मे भी सोचते कि यह हमारी समिति है और हम सम्मिलित साख के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलम्बन का यह भाव जाग्रत नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

सहकारी साख समितियों को जो पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी उसके तीन मुख्य कारण हैं। गाँव वालों का अशिक्षित होना, उनका एड़ी से चोटी तक महाजन का ऋणी तथा अत्यन्त निर्धन होना और योग्य -

ओं का अभाव। जब तक सेवाभाव से सच्चे और ईमानदार कार्यकर्ता आन्दोलन के लिए नहीं मिलते तब तक यह पूर्णतः सफल नहीं होगा।

कृषि साख समितियाँ बहुत सफल नहीं हुई हैं इससे यह न समझना चाहिए कि उनसे ग्रामीण जनता को कोई लाभ ही नहीं हुआ। कृषि साख समितियों के द्वारा गाँवों को बहुत कुछ आर्थिक लाभ हो रहा है। समितियों ने बहुतसी कार्यशील पूंजी (Working Capital) इकट्ठी करली है जो किसानों को उचित सूद पर दी जाती है। इन समितियों की पूंजी चालीस करोड़ रुपए के लगभग है। जहाँ साख समितियाँ खुल गई हैं उन क्षेत्रों में प्रतिद्वन्द्विता के कारण महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है। साधारण किसानों में सहकारिता का ज्ञान बढ़ रहा है। सदस्यों में किफायतशारी उत्पन्न हो रही है, और किसान स्वावलम्बी बन रहे हैं। अशिक्षित किसान जो कि साख तथा व्यापार के विषय में नितान्त अनभिज्ञ थे उनमें व्यापारिक ज्ञान बढ़ रहा है। बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जहाँ कि वृद्ध पंचों ने इसलिए पढ़ना लिखना सीखा कि वे समिति का कार्य भली भाँति कर सकें, कुछ शराब पीने वालों ने केवल इसलिए शराब छोड़ दी कि जिससे वे समिति में लिए जा सकें। सहकारी साख समिति के कारण गाँव में भ्रातृभाव बढ़ता है। यदि प्रत्येक गाँव में एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जाय और सफलता पूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

भारतवर्ष में कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या ८० हजार और उनके सदस्यों की संख्या ३० लाख के लगभग है। इन समितियों की कार्यशील पूंजी (जिसमें हिस्सा पूंजी, रक्षित कोष, डिपाजिट और सन्दूक जिनमें लिया हुआ ऋण सम्मिलित है) ३३ करोड़ रुपए के लगभग है। इन अंकों को देख कर साख सहकारी समितियों के विषय में निराश होने का कोई कारण नहीं है।

अभ्यास के प्रश्न

१—सहकारिता का क्या अर्थ है?

२—उदाहरण देकर बतलाओ कि सहकारिता किसे कहते हैं?

लो कि एक गाँव के तीस किसान हर रोज अपना दूध बेंचने पास के शहर में आते हैं। यदि वे आपस में समझौता कर लें कि पारी पारी से एक किसान सबों का दूध गाँव से शहर लेजा कर बेंच आया करेगा तो क्या उसको सहकारिता कहेंगे ?

३—कृषि साख समिति और प्यूपिल्स बैंक (नगर साख समिति) का मुख्य कार्य क्या है और उनमें क्या अन्तर है ?

४—अपरिमित और परिमित दायित्व की व्याख्या कीजिये ?

५—कृषि साख समिति का सदस्य कौन हो सकता है ? क्या भिन्न भिन्न गाँवों मे रहने वाले लोग एक कृषि साख समिति के सदस्य हो सकते हैं ?

६—साख समिति का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ? जनरल मीटिंग और पंचायत के कार्य बतलाइये।

७—साख समिति की कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठी होती है ?

८—कृषि साख समिति का लाभ सदस्यों में नहीं बाँटने से और समिति के टूट जाने पर रक्षित कोष को भी सदस्यों में बाँटने से क्या लाभ है ?

९—साख समिति मे यह नियम क्यों बनाया गया है कि सदस्य जिस काम के लिए कर्ज़ ले उसी पर खर्च करे ?

१०—क़ानून के अनुसार कृषि साख समितियों को कौन सी सुविधायें प्राप्त हैं ?

११—क्या कृषि साख समितियाँ सफल कही जा सकती हैं ?

अट्ठाईसवाँ अध्याय

गैर साख कृषि सहकारी समितियाँ

(Agricultural Non-Credit Societies)

भारतवर्ष में जब सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ किया गया था उस समय साख की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी गई और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। इसी कारण १९०४ के कानून के अनुसार केवल ८

मितियों के ही स्थापित करने की सुविधा प्रदान की गई। परन्तु आगे चल कार्य कर्ताओं को ज्ञात हुआ कि गाँव वालों का उद्धार केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही नहीं हो जावेगा। अपनी फसल बेंचने में, खेती के लिए आवश्यक चीजों को खरीदने मे, व्यापारी उनको लूटते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कृषि-सम्बन्धी कार्यों को भी सहकारी समितियों के द्वारा सुविधापूर्वक किया जा सकता है। यही कारण है कि पिछले वर्षों में गैर साख- कृषि सहकारी समितियों की अधिकाधिक स्थापना की गई है। फिर भी इन समितियों की संख्या साख समितियों की तुलना में नहीं के बराबर है।

साख (Credit) केवल किसान की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, अतएव साख का प्रबन्ध हो जाने से बहुत सी आवश्यकताओं मे से एक पूरी हो जाती है। किन्तु किसान की और भी आवश्यकताएँ हैं जिनका पूरा होना आवश्यक है। सिंचाई, खेतों की चकबन्दी, स्वास्थ्य और सफाई की उन्नति, पशुओं के जीवन का बीमा, दूध का धंधा, कृषि की आवश्यक वस्तुओं को मोल लेना तथा खेती की पैदावार को बेंचना यह कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनको सहकारी समितियों के द्वारा भली प्रकार हल किया जा सकता है। कुछ वर्षो से कृषि विभागों तथा सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों ने इन समितियों का महत्व समझा है और अब उनकी संख्या बढ़ रही है।

अन्य देशों मे प्रत्येक गाँव में सब कार्यों के लिए केवल एक सहकारी समिति के सिद्धान्त को अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। किसान की जितनी भी आवश्यकताएँ हैं उन सबको केवल एक सहकारी समिति ही पूरा करती है। उदाहरण के लिए एक समिति ही साख, क्रय-विक्रय, तथा स्वास्थ्य और सफाई का कार्य करती है. परन्तु भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न भिन्न समितियाँ एक ही गाँव में स्थापित करने की पद्धति चल पड़ी है। सिद्धान्ततः एक समिति जो कि किसान की आवश्यकताओं को पूरा करती हो वह अधिक उपयोगी तथा साहूकार की शक्ति को नष्ट करने में अधिक सफल हो सकती है।

भारतवर्ष में अगणित गाँव हैं और साख कृषि सहकारी समितियों

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कार्य कर रही हैं। परन्तु अभी यह आन्दोलन निर्बल है।

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ

(Co-operative Sale and Purchase Societies)

किसानों के लिए साख के बाद, खेती की पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेंचना तथा आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर खरीदना महत्वपूर्ण कार्य है। भारतवर्ष में किसान को बीज, यन्त्र, खाद, बैल तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ गाँव के बनिये से अथवा दूकानदार से खरीदनी पड़ती हैं। अधिकांश में वह ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को उधार (Credit) खरीदता है और यदि वह साख समिति से ऋण लेकर भी इन वस्तुओं को खरीदे तो भी उसे उन वस्तुओं के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला को भी नहीं जानता, इसलिए वहाँ भी वह गाँव के बनिये, तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों द्वारा लूटा जाता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक दशा सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से काम नहीं चलेगा। उसके लिए क्रय-विक्रय समितियों की आवश्यकता होगी। नहीं तो जहाँ हम साख समितियों के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते हैं वहाँ वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएँ बेचने में तथा उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा। इस कारण क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित किए बिना किसान की स्थिति सुधर ही नहीं सकती।

क्रय समितियाँ (Purchase Societies)

किसान के लिए आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य तीन प्रकार की समितियाँ करती हैं। (१) सहकारी साख समितियाँ (२) सहकारी क्रय समितियाँ (३) सहकारी क्रय विक्रय समितियाँ।

सहकारी साख समितियों के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सफलता पूर्वक किया जा सकता है। साख समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिए ऋण ले तब उसे रुपया न देकर उसको वह वस्तु खरीद कर

। कृषि साख सहकारी समितियाँ बीज, खाद और हल इत्यादि इकट्ठे खरीद अपने सदस्यों को उचित मूल्य पर देती हैं।

जहाँ शुद्ध क्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं वहाँ यह तरीका है कि समिति का मन्त्री सदस्यों से आर्डर इकट्ठे कर लेता है। सब आर्डर इकट्ठे कर लेने पर चीज एक साथ मँगवा कर सदस्यों में बाँट दी जाती हैं। केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर वस्तुएँ खरीदती हैं और सदस्यों को वह वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल जाती हैं। क्रय सहकारी समिति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मन्त्री अथवा प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य बाज़ार का अध्ययन करते रहें। बाजार भाव के उतार चढ़ाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय उन वस्तुओं को खरीद कर रख लेगी कि जिनकी सदस्यों को बहुत आवश्यकता पड़ती है। समिति के कार्यकर्ताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आरम्भ से केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक माँग हो।

क्रय समिति परिमित दायित्व* (Limited Liability) वाली होती है। प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। सब सदस्यों की एक साधारण सभा होती है जो कि एक पंचायत अथवा प्रबन्ध कारिणी समिति का चुनाव करती है। यह पंचायत ही समिति के कार्य का सञ्चालन करती है। यदि समिति बहुत बड़ी होती है तो एक वैतनिक मैनेजर रक्खा जाता है, नहीं तो अवैतनिक मन्त्री ही कार्य चलाता है।

सदस्यों के आर्डर आजाने पर मैनेजर उन आर्डरों को पंचायत के सामने रख देता है। पंचायत के आदेशानुसार मैनेजर पंचायत के एक सदस्य की सहायता से वस्तुएँ खरीदता है। समिति उन वस्तुओं को सदस्यों के हाथ बेच देता है। लाभ सदस्यों में खरीद के हिसाब से बाँट दिया जाता है।

शुद्ध क्रय-समितियाँ भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रान्त में कुछ क्रय समितियाँ खाद, बीज तथा खेती के यन्त्रों के खरीदने के लिए स्थापित की गई थीं किन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं है, वे सफल नहीं हुईं। इन समितियों की असफलता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध और सदस्यों की उदासीनता है। सदस्यों के उदासीन रहने का कारण यह भी है कि शुद्ध क्रय समितियाँ वर्ष में कुछ ही समय कार्य करती हैं। खेती के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीद लेने के उपरान्त उनका कोई कार्य नहीं रह जाता। जो समितियाँ क्रय-विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

विक्रय समितियाँ (Marketing Societies)

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि अधिकतर किसान ऋणी हैं, इस कारण वे अपनी फसल बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते। जो गाँव का साहूकार लेन देन करता है वही फसल को खरीदता है। एक तो फसल कटने के कुछ दिनों बाद तक बाजार भाव वैसे ही गिरा रहता है, दूसरे साहूकार गाँव में अकेला खरीदार होता है, इसलिए वह बाजार भाव से भी कम कीमत पर फसल खरीदता है। कपास, तम्बाकू, जूट तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिए व्यापारी (जो कि बड़े व्यापारियों के एजेन्ट होते हैं) गाँव में जाकर फसल खरीदते हैं। ये व्यापारी विदेशों के भाव को भी भली भाँति जानते हैं, वे लोग किसानों की फसल को सस्ते दामों पर खरीदते हैं। जिन बड़े किसानों के पास पैदावार अधिक होती है वे पास की मंडियों में अपनी पैदावार ले जाकर बेचते हैं। किन्तु इन मंडियों में भी किसान को लूटा जाता है। नियमानुसार चुँगी तो उसे देनी ही पड़ती है। मंडी में गाड़ी खड़ी करने का किराया तथा दलाली भी वही देता है। दलाल अधिकतर व्यापारी से मिला रहता है, इस कारण किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। कहीं कहीं किसान को तुलाई भी देनी होती है और तुलाई में अधिकतर उसे धोखा दिया जाता है। मूल्य चुकाने के समय व्यापारी धर्मशाला, गौशाला, (प्याऊ, मन्दिर, पाठशाला) तथा अन्य ऐसे ही धार्मिक कार्यों के लिए प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाहीकृषि कमीशन

है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत या जाता है। जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया गा तब तक उसकी निर्धनता दूर नहीं हो सकती।

इसी उद्देश्य से भिन्न भिन्न प्रान्तों में क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं। परन्तु अभी तक इन समितियों की संख्या बहुत कम है और न यही कहा जा सकता है कि वे बहुत सफल हुई हैं। इनमें बम्बई प्रान्त की कपास और गुड़, बंगाल की जूट और धान तथा बिहार और संयुक्त-प्रान्त की गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। बम्बई के गुजरात और कर्नाटक प्रदेशों में कपास, गुड़, धान, तम्बाकू, मिर्च तथा प्याज़ बेचने के लिए सहकारी विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु इनमें कपास बेचने वाली समितियाँ ही संख्या में अधिक तथा महत्व पूर्ण हैं। एक समिति चार या पाँच गाँव की पैदावार को बेंचती है। समिति के सदस्य एक ही प्रकार की कपास उत्पन्न करते हैं। इसी उद्देश्य से समिति उन्हें एक सा अच्छा बीज देती है। फसल कटने पर सदस्य अपनी कपास समिति को दे देते हैं। समिति उन्हें काम चलाने के लिए कुछ रुपया पेशगी दे देती है, और फसल को इकट्ठी करके अपने गोदाम में रखती है। समिति के कार्यकर्ता बाजार का अध्ययन करते रहते हैं और बम्बई तथा अन्य बाज़ारों में कपास को ऊँचे दामों पर बेंच देते हैं। किसान फसल काटते ही उसे बेंच देता है क्योंकि उसे रुपये की तुरन्त आवश्यकता होती है, परन्तु समिति रुक सकती है इस कारण उसे पैदावार का अच्छा मूल्य मिलता है। गुजरात की समितियों ने एक संघ कायम किया है जो कि इन समितियों की देख भाल करता है।

बंगाल में जूट समितियों ने अपनी एक होल सेल सोसायटी बनाई है। यह होल-सेल सोसायटी एक विशेषज्ञ नौकर रखती है जो कि बाज़ार भाव का अध्ययन करता है और होल सेल सोसायटी से सम्बन्धित समितियों को सलाह देता है।

संयुक्त प्रान्त और बिहार में गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक संख्या में स्थापित हो गई हैं। इन समितियों का मुख्य कार्य यह है कि कृषि विभाग के परामर्श के अनुसार गन्ने की खेती की उन्नति करना तथा मिलों को

समझौता करके उनको सदस्यों की पैदावार बेच देना। गन्ने का मूल्य तो सरकार निश्चय करती है इस कारण कीमत के तय करने में कोई अड़चन नहीं होती। अभी थोड़ा समय हुआ संयुक्त प्रान्त में विशेष कर इटावा तथा पश्चिमी जिलों में बहुत बड़ी संख्या में घी समितियाँ स्थापित हो गई हैं। ये समितियाँ सदस्यों का घी इकट्ठा करके बेंचती हैं।

इनके अतिरिक्त पंजाब में कुछ सहकारी कमीशन शाप (दूकान) स्थापित की गई हैं जो सदस्यों और गैर सदस्यों की पैदावार को बेंचती हैं। इनके अतिरिक्त पंजाब में क्रय-विक्रय समितियाँ भी स्थापित की गई हैं जो अधिक सफल नहीं हुईं। मदरास, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा तथा संयुक्तप्रान्त में भी क्रय विक्रय समितियाँ हैं किन्तु ये अधिक सफल नहीं हैं।

विक्रय समितियों का संगठन :

विक्रय समितियाँ परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली होती हैं। प्रत्येक सदस्य को एक हिस्सा खरीदना होता है। किन्तु विक्रय समितियाँ तभी सफल होती हैं जब कि उनके सदस्य अधिक हों। इसी कारण विक्रय समितियाँ तीन चार गाँवों की पैदावार बेंचती हैं। छोटी समितियाँ व्यापारियों की संगठित प्रतिद्वन्द्विता में टिक नहीं सकतीं। विक्रय समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि फसल स्वयं उत्पन्न करते हों। जो लोग कि कुछ बेंचना नहीं चाहते उन्हें सदस्य नहीं बनाया जाता। सदस्यों की जनरल मीटिंग एक मैनेजिंग कमेटी का चुनाव करती है। यही मैनेजिंग कमेटी समिति का कार्य संचालन करती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि मैनेजिंग कमेटी में वे ही लोग रक्खे जावें जो व्यापार से परिचित हों। इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को बेंचने से ही लाभ हो सकता है। इसलिए जितने भी अधिक सदस्य हों अच्छा है। प्रत्येक सदस्य केवल समिति के द्वारा ही अपनी फसल बेंच सकता है स्वतंत्र रूप से नहीं। इस नियम का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिए, नहीं तो उस गाँव के व्यापारी समिति को भंग करने के लिए सदस्यों को उनकी पैदावार का अधिक मूल्य देकर उन्हें फोड़ लेंगे।

फसल कटने पर सदस्य अपनी पैदावार समिति में जमा कर देता

ने उसे काम चलाने के लिए अनुमानतः आधा मूल्य उसी समय दे है और शेष पैदावार के बिक जाने पर चुकाती है। समिति इकट्ठी वस्तु बाजार में यथा समय अच्छे दामों पर बेचती है। समिति लाभ का प्रतिशत नियमानुसार रक्षित कोष में जमा करती है, शेष सदस्यों में उनकी पैदावार के अनुपात में बाँट देती है। इन समितियों को व्यापारियों से प्रति-द्वन्द्विता करनी पड़ती है। इस कारण अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इन्हें होल-सेल सोसायटी* बना लेनी चाहिए। जिससे कि वे अधिक राशि में पैदावार को ले कर व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता में टिक सकें। यह होल सेल सोसायटी समितियों को व्यापारिक परामर्श देती रहेंगी।

क्रय-विक्रय समितियों के सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। (१) छोटा होने पर वे व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता में टिक नहीं सकतीं। (२) इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाने में यह खतरा है कि व्यापारी अपने आदमियों को उनका सदस्य बनाकर समिति को भंग करने का प्रयत्न करते हैं। अस्तु केवल साख सहकारी समितियाँ ही उसकी सदस्य बनाई जावें, किन्तु यह नियम रक्खा जावे कि जो व्यक्ति समिति के सदस्य नहीं हैं उनकी पैदावार को भी समिति कमीशन पर बेचेगी (३) इन समितियों के सामने पूँजी का समस्या भी खड़ा होता है। समिति की निजी पूँजी बहुत कम होती है और केन्द्रीय सहकारी बैंक पूँजी के बराबर ही ऋण देते हैं। किसान कुछ रुपया पेशगी चाहता है अतएव पूँजी की कमी रहती है।

क्रय-विक्रय समितियों की ओर सरकार तथा जनता दोनों को ही ध्यान देना चाहिए क्योंकि बिना उनके यथेष्ट संख्या में स्थापित किये किसान को दलालों तथा व्यापारियों की लूट से नहीं बचाया जा सकता। और जब तक उसे अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिलता तब तक उसकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधर सकती।

---

*होलसेल सोसायटी—वह विक्रय करने वाली समिति [illegible] सम्बन्धित होती है।

भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियाँ

(Consolidation of Land Holdings Societies)

यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि हिन्दोस्तान में किसानों के पास जो भी भूमि है वह छोटे छोटे खेतों में बँटी हुई है और यह खेत एक दूसरे से दूर हैं। बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों पर अच्छी तरह से खेती नहीं हो सकती क्योंकि किसान का इन बिखरे हुए खेतों पर खेती करने से बहुत सा समय, शक्ति, श्रम, तथा पूँजी नष्ट होती है। यदि सब खेत एक ही स्थान पर हों तो किसान कम खर्च में अधिक पैदावार उत्पन्न कर सकता है। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि जब तक बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल नहीं किया जाता तब तक खेती का सुधार हो ही नहीं सकता। भारत में सबसे पहले पंजाब प्रान्त में सहकारिता विभाग ने चकबन्दी सहकारी समितियाँ स्थापित करके बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल करने का सफल प्रयत्न किया। अब हम चकबन्दी सहकारी समितियों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से लिखते हैं।

खेतों की चकबन्दी करने का सिद्धान्त यह है कि गाँव में जितने भी खेतों के मालिक हैं उन सबके खेतों को इस तरह अदल बदल दिया जावे कि हर एक को अपने सब खेतों के बराबर ही जगह एक चक में या दो या तीन चकों में मिल जावे।

चकबन्दी समिति की स्थापना

किसी गाँव में चकबन्दी समिति के स्थापित करने के पहले सहकारिता विभाग के कर्मचारी गाँव में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से होने वाली हानियाँ और चकबन्दी के लाभ समझाते हैं। यदि सहकारिता विभाग का कर्मचारी प्रचार करने के बाद यह समझता है कि उस गाँव के लोग चकबन्दी कराने के लिए राजी हैं तो वह एक सभा करता है और गाँव वालों को बतलाता है कि चकबन्दी किस प्रकार की जावेगी। यदि सब गाँव वाले तैयार होते हैं तो समिति बनाली जाती है और पंचायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य जमींदार या मौरूसी किसान हो सकता है।

समिति के सदस्यों को निम्नलिखित बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं।

१—खेतों की चकबन्दी करने के लिए बिखरे हुए खेतों का नया बटवारा होना जरूरी है।

२—यदि नये बटवारे को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह बटवारा सब को स्वीकार करना होगा।

३—नये बटवारे के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिए छोड़ देगा।

४—यदि किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा होगा तो पंच नियुक्त कर दिए जावेंगे और उनका फैसला सबको मानना होगा।

सहकारिता विभाग का कर्मचारी गाँव में कितनी प्रकार की भूमि है यह निश्चित करता है। नये बटवारे में ज़मीन की भिन्न भिन्न उपजाऊ शक्ति का ध्यान रक्खा जाता है। कुओं में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है और पेड़ों (यदि खेतों पर हों) का मूल्य निश्चित करने के बाद नये बटवारे का नक़शा बनाया जाता है। यह नकशा सब सदस्यों के सामने रक्खा जाता है। यदि सब सदस्य नये बटवारे को मान लेते हैं तब तो वह लागू हो जाता है। नहीं तो फिर से नया नकशा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी कभी तीन चार बार नकशे तैयार करने पड़ते हैं फिर भी सारा परिश्रम केवल एक किसान के हठ में नष्ट हो जाता है।

यद्यपि नियम २ के अनुसार यदि दो तिहाई सदस्य नये बटवारे को मान लें तो बाकी को उसे मानना पड़ता है, परन्तु इस नियम को काम में नहीं लाया जाता और किसी को भी अपना खेत छोड़ने पर विवश नहीं किया जाता। ऐसा करने में काम बहुत धीरे होता है। अब पंजाब में इस नियम को कड़ाई के साथ काम में लाने लगे हैं। जब नये बटवारे को सब लोग मान लेते हैं तो उन्हें नये खेत दे दिए जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

किन्तु चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। [illegible] बुड्ढे किसान अपने बाप दादों की [illegible]

कोई लाभ नहीं दिखाई देता। मौरूसी काश्तकार यह समझता है कि यदि उसने अपना खेत बदल लिया तो उसके सारे हक छिन जावेंगे। गाँव का पटवारी भी चकबन्दी का विरोध करता है क्योंकि वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। इन कठिनाइयों के रहते हुए भी यदि कार्यकर्ता धैर्य तथा सहानुभूति से कार्य करे तो वह किसानों को राजी कर सकता है।

चकबन्दी आन्दोलन का आरम्भ पंजाब प्रान्त में ही हुआ और वहीं वह सब से अधिक सफल भी हुआ है। अनुमान किया जाता है कि अब प्रतिवर्ष दो लाख एकड़ भूमि की पंजाब में चकबन्दी हो जाती है। संयुक्तप्रान्त के सहारनपुर तथा बिजनौर जिलों में चकबन्दी समितियाँ स्थापित की गई हैं जो कि सफलता पूर्वक चकबन्दी का काम कर रही है किन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है। देशी राज्यों में बड़ौदा और काश्मीर में चकबन्दी समितियाँ सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि बिखरे हुए खेतों की समस्या ऐसी विकट है कि केवल सहकारी चकबन्दी समितियों से ही वह हल न होगी, क्योंकि समितियों के द्वारा कार्य बहुत धीरे होता है। अतएव उनकी राय में सरकार एक कानून बनाकर बिखरे खेतों की चकबन्दी करदे। मध्यप्रान्त, पंजाब, संयुक्तप्रान्त में इस आशय का एक कानून बनाया गया है।

रहन-सहन सुधार समितियाँ

(Better Living Societes)

रहन-सहन सुधार समितियाँ (Better Living Societies) सर्व प्रथम पंजाब में स्थापित की गई और क्रमशः वे अन्य प्रान्तों में स्थापित होती जा रही हैं।

रहन-सहन सुधार समितियों का प्रधान उद्देश्य गाँवों में प्रचलित बुरी रस्मों को बन्द करना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए कर्ज लेकर फिजूल खर्च करने की आदत को रोकना, गाँव में सफाई रखना, खेतीबारी को उन्नत करने के उपायों का प्रचार करना, कुओं की मरम्मत करवाना, गाँव की गलियों को ठीक करना खाद के गड्ढे बनवाना, ट्रेंड दाइयों को

गाँव में रखना, घरों में हवा तथा रोशनी के लिए खिड़की तथा रोशनदान लगाने का प्रचार करना, तथा ज़ेवर पर व्यय न करने के लिए गाँव वालों को समझाना है।

इन समितियों का संगठन बहुत सहल है। सदस्यों को हिस्सा नहीं खरीदना पड़ता और न समिति की कोई हिस्सा पूँजी (Share Capital) ही होती है। प्रत्येक गाँव के रहने वाला जो कि समिति के सिद्धान्त और नियमों का पालन करने को तैयार हो वह समिति का सदस्य बन सकता है। सदस्य को केवल नाम मात्र की प्रवेश फीस देनी होती है। सदस्यों से कोई चन्दा भी नहीं लिया जाता। साधारण सभा (General Meeting) जिसमें सब सदस्य होते हैं कुछ उपनियम बनाती है जिनका पालन प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिए समिति यह निश्चय कर देगी कि शादी, मृत्यु तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर अधिक से अधिक एक सदस्य कितना रुपया खर्च कर सकता है। जो भी सदस्य इस नियम की अवहेलना करेगा उसे दंड स्वरूप जुर्माना देना होगा। प्रतिवर्ष गाँव के सुधार के लिए समिति एक वार्षिक योजना स्वीकार करती है और उसके सम्बन्ध में नियमादि बना देती है। जो भी सदस्य उन नियमों का पालन नहीं करता उनको दंड दिया जाता है। एक वर्ष गाँव की सफाई का प्रोग्राम बनाया जाता है, सदस्यों को अपनी खाद गड्ढों में रखने के लिए कहा जाता है, दूसरे वर्ष घरों में रोशनदान इत्यादि लगाने का प्रचार किया जाता है। रहन सहन सुधार समितियाँ (Better Living Societies) वास्तव में ग्राम सुधार कार्य को करती हैं। इनके द्वारा ग्राम सुधार कार्य अधिक संगठित तथा सुचारु रूप से चल सकता है।

पंजाब और संयुक्तप्रान्त में ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं और संख्या में अधिक हैं। पंजाब के सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन गाँवों में ये समितियाँ स्थापित हो गई हैं वहाँ के रहने वालों को उनके द्वारा हजारों रुपए की बचत होती है। जो भी इन समितियों के सदस्य होते हैं वे नियमानुसार इस प्रकार का अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी भी गाँव वाले के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते जहाँ इस प्रकार का अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव

गैर-सदस्यों पर भी पड़ता है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में ये समितियाँ गाँव की सफाई करवाती है, गलियों को साफ तथा पक्का करवाती हैं तथा गाँव वालों को हवा तथा रोशनी का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की और रोशनदान लगवाती हैं। पंजाब में ये समितियाँ ज़ेवर बनवाने का भी विरोध करती हैं क्योंकि इससे रुपए का नुकसान तो होता ही है, साथ ही चोरी का भी भय रहता है। संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब दोनों ही में ये समितियाँ सदस्यों को खाद गड्ढों में रखने के लिए विवश करती हैं जिससे कि गाँव गंदा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पंजाब में एक समिति ने गोबर के कंडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाने का निश्चय किया है। पंजाब में तीन सौ से ऊपर रहन-सहन सुधार समितियाँ किसी न किसी रूप में ग्राम-सुधार कार्य कर रही हैं।

संयुक्त प्रान्त में रहन-सहन सुधार समितियों की संख्या पंजाब से बहुत अधिक है और साथ ही वे पंजाब से अधिक क्रिया-शील भी हैं। ऊपर लिखे हुए कार्यों के अतिरिक्त वे कहीं कहीं अस्पताल चलाती हैं,प्रौढ़ों के लिए रात्रि पाठशालायें खोलती हैं, ट्रेंडदाइयाँ रखती हैं, अच्छा बीज खरीद कर बेचती हैं, और कुयें बनवाती हैं। संयुक्त प्रान्त में रहन-सहन सुधार समितियाँ प्रान्त के पूर्वीय भाग में अधिक हैं। संयुक्त प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने परतापगढ़ तथा मसौधा में (फ़ैज़ाबाद) रहन-सहन सुधार समितियों (परतापगढ़ में १५० के लगभग तथा मसौधा में ७० के लगभग समितियाँ हैं जो ग्राम सुधार कार्य करती हैं) के द्वारा संगठित रूप में ग्राम-सुधार कार्य किया है और उसमें उसे सफलता भी मिली है।

यदि देखा जावे तो रहन-सहन सुधार समिति अत्यन्त उपयोगी संस्था है और ग्राम सुधार कार्य में इसका बहुत उपयोग हो सकता है।

उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स

(Consumers Co-operative Stores)

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है, इस कारण प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ वस्तुओं करना होता है। यदि देखा जावे

सम्पत्ति का उत्पादन करने वालों तथा उसका उपभोग करने वालों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरे पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालों के बीच में इतने दलाल (middle-men) हैं कि वे दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। व्यापारी (दलाल) वस्तुओं के उत्पन्न करने वालों को उनका जो मूल्य देते हैं उससे बहुत अधिक मूल्य उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं। यही नहीं कि वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन वस्तुओं में मिलावट भी की जाती है। निर्धन उपभोक्ताओं जैसे किसान और मजदूर को ये व्यापारी (अर्थात् दूकानदार) खूब ही ठगते हैं। उन्हें दूकान में जो सबसे रद्दी वस्तु होती है उसे अधिक मूल्य पर देते हैं। सहकारी स्टोर्स* इन दलालों (व्यापारियों) को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर अच्छी चीज देने में सफल हुए हैं।

संसार को सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी संस्था को देने का श्रेय इंगलैंड के राकडेल नामक स्थान के अट्ठाइस बुनकरों का है। सन् १८४४ ईसवी में राकडेल के उन अट्ठाइस फलालेन बुनने वालों ने जो कि अत्यन्त निर्धन थे, एक दूकान खोली। उन २८ जुलाहों (बुनकरों) में एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैंस प्रति सप्ताह किश्त लेकर दो वर्षों में २८ पौंड पूंजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं (मक्खन, शक्कर, ओट का आटा, गेहूं का आटा तथा मोमबत्ती) को बेचने का प्रबन्ध किया। स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुएँ शुद्ध तथा तोल में पूरी होती थीं। प्रत्येक सदस्य की एक वोट थी। लाभ खरीदारी के अनुपात में बाँटा जाता था। उदाहरण के लिए एक सदस्य ने वर्ष में पचास पौंड की चीजें खरीदीं और दूसरे ने सौ पौंड की तो दूसरे को दुगना लाभ मिलता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपना लाभ का हिस्सा स्टोर्स में जमा करा दें। इस प्रकार स्टोर्स की पूंजी बढ़ती गई। सदस्यों को उस जमा किए हुए रुपए पर सूद मिलता था।

राकडेल स्टोर्स सफल हो गया, क्रमशः स्टोर्स सब वस्तुएँ सदस्यों को

---

*सहकारी-स्टोर्स :—ऐसी दूकान जिसको बहुत से सदस्यों ने अपनी आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करने के लिए स्थापित किया हो।

बेंचने लगा। राकडेल स्टोर की इस आश्चर्य-जनक सफलता को देख कर इंगलैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गए।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता (दुकानदार) चौंके और उन्होंने उनका विरोध करना शुरू किया। उन्होंने मिल कर थोक व्यापारियों पर ज़ोर डाला कि वे स्टोर्स को अधिक मूल्य पर वस्तुएँ दें। अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हुई। किन्तु उन्होंने आपस में मिलकर होल-सेल सोसायटी स्थापित करली। होल-सेल सोसायटी सीधे कारखानों से वस्तुएँ मोल लेकर स्टोर्स को थोक मूल्य पर बेंचती है। इस प्रकार स्टोर्स ने थोक व्यापारियों के लाभ को भी छीन लिया। प्रत्येक स्टोर्स इस होल-सेल-सोसायटी का सदस्य होता है। सोसायटी का वार्षिक लाभ स्टोर्स में अपनी खरीदारी के अनुपात में बाँट दिया जाता है। अन्त में होल-सेल सोसायटी ने उन वस्तुओं को जिनको स्टोर्स खरीदते थे स्वय ही कारखाने खड़े करके बनाना आरम्भ कर दिया। बूट, साबुन, कपड़ा धोने का साबुन, मोजे, बनियाइन, कपड़ा, फर्नीचर, सिगरेट, लोहे, टिन की वस्तुएँ, छापेखाने, तेल, आटा, मक्खन, मोमबत्ती तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने खोले गये। सोसायटी ने अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिए फ़ार्म खोले। आसाम में चाय के बाग़ मोल लिए। कहने का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक वस्तु को स्वय उत्पन्न करने लगी। इस प्रकार उपभोक्ताओं ने स्टोर्स को स्थापित कर के फुटकर दूकानदारों, थोक व्यापारियों तथा कारखाने के लाभ को भी छीन लिया।

सहकारी स्टोर्स के मुख्य-नियम

(१) सहकारी स्टोर्स परिमित दायित्व (Limited liability) वाली सस्था होती है।

(२) प्रत्येक सदस्य को स्टोर के हिस्से खरीदने होते हैं, किन्तु वोट देने का अधिकार हिस्से के हिसाब से नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है।

(३) प्रत्येक सदस्य को वे वस्तुएँ जो कि स्टोर बेंचता है स्टोर से ही खरीदनी पड़ती है।

सम्पत्ति का उत्पादन करने वालों तथा उसका उपभोग करने वालों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरे पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालों के बीच में इतने दलाल (middle-men) हैं कि वे दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। व्यापारी (दलाल) वस्तुओं के उत्पन्न करने वालों को उनका जो मूल्य देते हैं उससे बहुत अधिक मूल्य उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं। यही नहीं कि वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन वस्तुओं में मिलावट भी की जाती है। निर्धन उपभोक्ताओं जैसे किसान और मज़दूर को ये व्यापारी (अर्थात् दूकानदार) खूब ही ठगते हैं। उन्हें दूकान में जो सबसे रद्दी वस्तु होती है उसे अधिक मूल्य पर देते हैं। सहकारी स्टोर्स* इन दलालों (व्यापारियों) को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर अच्छी चीज देने में सफल हुए हैं।

संसार को सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी संस्था को देने का श्रेय इंगलैंड के राकडेल नामक स्थान के अट्ठाइस बुनकरों को है। सन् १८४४ ईसवी में राकडेल के उन अट्ठाइस फलालैन बुनने वालों ने जो कि अत्यन्त निर्धन थे, एक दूकान खोली। उन २८ जुलाहों (बुनकरों) में एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैंस प्रति सप्ताह किश्त लेकर दो वर्षों में २८ पौंड पूंजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं (मक्खन, शक्कर, ओट का आटा, गेहूं का आटा तथा मोमबत्ती) को बेचने का प्रबन्ध किया। स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुएँ शुद्ध तथा तौल में पूरी होती थीं। प्रत्येक सदस्य की एक वोट थी। लाभ खरीदारी के अनुपात में बाँटा जाता था। उदाहरण के लिए एक सदस्य ने वर्ष में पचास पौंड की चीजें खरीदीं और दूसरे ने सौ पौंड की तो दूसरे को दुगना लाभ मिलता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपना लाभ का हिस्सा स्टोर्स में जमा करा दें। इस प्रकार स्टोर्स की पूंजी बढ़ती गई। सदस्यों को उस जमा किए हुए रुपए पर सूद मिलता था।

राकडेल स्टोर्स सफल हो गया, क्रमशः स्टोर्स सब वस्तुएँ सदस्यों को

---

*सहकारी-स्टोर्स :—ऐसी दूकान जिसको बहुत से सदस्यों ने अपनी आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करने के लिए स्थापित किया हो।

लोगों को आकर्षित किया है। भारतवर्ष में कारखानों के मज़दूर अशिक्षित और निर्धन हैं इस कारण संगठन के महत्व को नहीं समझते। वे अधिकतर दूकानदारों के ऋणी हैं। साथ ही वे स्थायी रूप से कारखानों में काम नहीं करते, कुछ वर्षों बाद वे अपने गाँवों को चले जाते हैं। इस कारण वे स्टोर्स के हिस्से लेकर उसके सदस्य नहीं बनाना चाहते।

रहा, मध्यवर्ग, वह भी स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक वस्तु की इतनी अधिक दूकानें होती हैं कि थोक और फुटकर मूल्य में अधिक अन्तर नहीं होता। प्रत्येक दूकानदार महीने के अन्त में मूल्य लेता है, और परचूनी वाले घर पर ही सामान पहुँचा देते हैं। यह सुविधाएँ स्टोर्स नहीं दे सकता।

भारतवर्ष में सहकारी स्टोर्स के साथ पूँजी की भी कठिनाई होती है। सदस्यों के लिए हुए हिस्सों से इतनी पूँजी इकट्ठी नहीं होती कि काम चल जावे और सैन्ट्रल तथा डिस्ट्रिक्ट बैंक उन्हें ऋण नहीं देते। एक कमी और है और जिसके कारण भारतवर्ष में स्टोर्स आन्दोलन पनप नहीं सका। वह है होल सेल-सोसायटी की कमी। स्टोर्स थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं, थोक व्यापारी उनसे मूल्य अधिक लेते हैं इस कारण स्टोर्स को अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि होल-सेल-सोसायटी स्थापित हो जावे तो थोक व्यापारियों का लाभ भी सदस्यों के लिए सुरक्षित किया जा सकता है।

ऊपर लिखे कारणों से स्टोर्स आन्दोलन भारतवर्ष में न फैल सका, अब हम उन कारणों को लिखते हैं जिनसे वे थोड़े से स्टोर्स जो कि खोले गए थे असफल हो गए।

स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य स्टोर-आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीज़ें बेंचने के लिए खोला गया है। इसका फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता हो जाता है तो स्टोर्स की दशा खराब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स से चीज़ें न खरीद कर दूकानदार से खरीदने लगते हैं। स्टोर फेल हो जाता है।

(४) स्टोर उधार नहीं बेंचता और बाज़ार भाव पर ही शुद्ध और अच्छी वस्तुएँ देता है। भाव में कमी नहीं करता।

(५) एक चौथाई लाभ रक्षित कोष में जमा किया जाता है और शेष सदस्यों में उनकी खरीदारी के अनुपात में बाँट दिया जाता है।

(६) सदस्यों की सभा जनरल मीटिंग कहलाती है। स्टोर की नीति को वही निर्धारित करती है और उसका प्रबन्ध करने के लिए एक प्रबन्ध कारिणी समिति (Managing Committee) चुन देती है। प्रबन्ध कारिणी समिति स्टोर का प्रबन्ध करती है।

भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर

भारतवर्ष में अभी तक उपभोक्ता स्टोर्स असफल हो रहे हैं। यदि कहीं कहीं थोड़े से स्टोर्स सफल दृष्टिगोचर होते हैं तो आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। अधिकतर कालेजों और रेलवे के स्टोर सफल हुए हैं। इन स्टोर्स को दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती तथा उन्हें बहुत सी अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

भारतवर्ष में योरोपीय महायुद्ध के समय बहुत से स्टोर्स खोले गए। क्योंकि उस समय भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था और सब वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ गया था। किन्तु युद्ध के उपरान्त सरकारी नियन्त्रण हट गया और कुछ समय के बाद वस्तुओं का मूल्य भी घट गया। तब स्टोर्स की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर्स बंद हो गए और बहुतों का दिवाला निकल गया। १९३९ के उपरान्त युद्ध के कारण फिर हजारों की संख्या में स्टोर खुल गए हैं किन्तु कंट्रोलों के समाप्त हो जाने पर उनकी क्या दशा होगी यह कह सकना कठिन है। मद्रास में एक होल सेल सोसायटी भी बन गई है।

भारतवर्ष में स्टोर्स की असफलता के मुख्य कारण

यह तो सर्व विदित है कि धनी व्यक्ति तो स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होते क्योंकि यदि उन्हें अपनी वस्तुओं की खरीदारी पर वर्ष के अन्त में लाभ मिलता है तो वह उनके लिए कोई अधिक बचत नहीं होती। देश में स्टोर्स आन्दोलन ने अधिकतर मजदूरों और निर्बल मध्यमों के

लोगों को आकर्षित किया है। भारतवर्ष में कारखानों के मज़दूर अशिक्षित और निर्धन हैं इस कारण संगठन के महत्व को नहीं समझते। वे अधिकतर दूकानदारों के ऋणी हैं। साथ ही वे स्थायी रूप से कारखानों में काम नहीं करते, कुछ वर्षों बाद वे अपने गाँवों को चले जाते हैं। इस कारण वे स्टोर्स के हिस्से लेकर उसके सदस्य नहीं बनाना चाहते।

रहा, मध्यवर्ग, वह भी स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक वस्तु की इतनी अधिक दूकानें होती हैं कि थोक और फुटकर मूल्य में अधिक अन्तर नहीं होता। प्रत्येक दूकानदार महीने के अन्त में मूल्य लेता है, और परचूनी वाले घर पर ही सामान पहुँचा देते हैं। यह सुविधाएँ स्टोर्स नहीं दे सकता।

भारतवर्ष में सहकारी स्टोर्स के साथ पूँजी की भी कठिनाई होती है। सदस्यों के लिए हुए हिस्सों से इतनी पूँजी इकट्ठी नहीं होती कि काम चल जावे और सैन्ट्रल तथा डिस्ट्रिक्ट बैंक उन्हें ऋण नहीं देते। एक कमी और है और जिसके कारण भारतवर्ष में स्टोर्स आन्दोलन पनप नहीं सका। वह है होल-सेल-सोसायटी की कमी। स्टोर्स थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं, थोक व्यापारी उनसे मूल्य अधिक लेते हैं इस कारण स्टोर्स को अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि होल-सेल-सोसायटी स्थापित हो जावे तो थोक व्यापारियों का लाभ भी सदस्यों के लिए सुरक्षित किया जा सकता है।

ऊपर लिखे कारणों से स्टोर्स आन्दोलन भारतवर्ष में न फैल सका, अब हम उन कारणों को लिखते हैं जिनसे वे थोड़े से स्टोर्स जो कि खोले गए थे असफल हो गए।

स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य स्टोर-आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीज़ें बेचने के लिए खोला गया है। इसका फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता हो जाता है तो स्टोर्स की दशा खराब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स से चीज़ें न खरीद कर दूकानदार से खरीदने लगते हैं। स्टोर फेल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुएँ बाजार भाव पर बेंची जाँय किन्तु चीज़ें अच्छी हों और तौल में पूरी हों। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है अधिक उधार देना। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

असफलता का तीसरा मुख्य कारण प्रबन्ध का ठीक न होना और व्यय का अधिक होना है। सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध कारिणी समिति तथा सदस्य स्टोर के कार्य में दिलचस्पी नहीं लेते और न अपना समय ही देते हैं। फल यह होता है कि वैतनिक मैनेजर तथा सेल्समैन ही स्टोर के कर्ता धर्ता बन जाते हैं।

१९३९ के उपरान्त महायुद्ध के कारण खाने पीने की चीज़ों का दाम जब बहुत बढ़ गया और कहीं कहीं तो उन वस्तुओं का मिलना भी कठिन हो गया तब सहकारी स्टोर्स स्थापित करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इसी कारण पिछले दो तीन वर्षों में सैकड़ों की संख्या में उपभोक्ता स्टोर्स प्रत्येक प्रान्त में स्थापित हो गए हैं और होते जा रहे हैं। यह कहना कठिन है कि युद्ध के समाप्त होने पर जब सब चीज़ें आसानी से मिलने लगेंगी तब भी ये स्टोर्स जीवित रहेंगे या टूट जावेंगे।

मदरास और बम्बई प्रान्तों में इन स्टोरों की होल सेल यूनियनें भी स्थापित हो गई हैं जो कि अपने सम्बन्धित स्टोरों के लिए थोक माल खरीदती हैं और स्टोरों को बेंच देती हैं।

मदरास का ट्रिप्लीकेन स्टोर

भारतवर्ष में केवल ट्रिप्लीकेन स्टोर ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। यह स्टोर २ अप्रैल १९०४ को खोला गया। आरम्भ में केवल आठ आठ रुपए के दो कर्मचारी रक्खे गए। स्टोर के जन्मदाताओं ने स्टोर की देख भाल में बहुत समय देना शुरू किया। जहाँ तक हुआ व्यय कम किया गया। स्टोर सफल हुआ। आज स्टोर की २० शाखाएँ काम कर रही हैं। इसके पास अपनी निजी इमारत है। स्टोर वर्ष भर में ग्यारह या बारह लाख रुपए की वस्तुएँ बेचता है। स्टोर की चुकाई हुई पूँजी एक लाख

रुपए से अधिक है और रक्षित कोष (Reserve Fund) डेढ लाख रुपए के लगभग है।

मदरास और मैसूर में स्टोर कुछ सफल हुए हैं। बंगलौर का स्टोर भी एक अत्यन्त सफल संस्था है, परन्तु वह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। भारतवर्ष में स्टोर्स की संख्या बहुत कम है। संयुक्तप्रान्त में केवल तीन स्टोर्स हैं। भारतवर्ष के अधिकतर स्टोर्स असफल हैं।

महायुद्ध और स्टोर

इस महायुद्ध के समय भी कंट्रोल के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं के न मिलने के कारण बहुत बड़ी संख्या में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स खोले गये हैं। अभी यह कह सकना बहुत कठिन है कि युद्ध के समाप्त होने पर जब यह कंट्रोल इत्यादि टूट जावेंगे तब ये स्टोर्स व्यापारियों की होड़ में टिक सकेंगे या नहीं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गैर साख कृषि सहकारी समितियों को क्यों स्थापित किया गया? उनकी आवश्यकता क्यों पड़ी?

२—केवल साख कृषि सहकारी समिति से ही किसान की सारी समस्यायें क्यों हल नहीं हो सकतीं?

३—गाँव वालों को गाँव के बनिये से चीज़ें खरीदने में क्या हानि होती है? यदि वे क्रय समिति बना लें तो उनको क्या लाभ होगा?

४—यदि तुमसे कहा जावे कि तुम अपने गाँव में एक क्रय समिति बनाओ तो तुम उसका संगठन किस प्रकार करोगे?

५—क्रय-समिति अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करती है?

६—गाँव के महाजन, बाहर से आने वाले व्यापारियों के एजेन्ट तथा मंडी में अपनी पैदावार बेंचने से किसान को क्या हानि होती है?

७—इस स्थिति में जिसमें कि किसान आजकल है वह अपनी पैदावार का उचित मूल्य क्यों नहीं पा

८—विक्रय-समितियाँ क्या कार्य करती हैं ? किसानों को विक्रय समिति के सदस्य बनने से क्या लाभ होता है ?

९—विक्रय-समिति का संगठन किस प्रकार होता है और वह किस प्रकार सदस्यों की पैदावार को बेंचती है ?

१०—विक्रय समिति को सफलता पूर्वक चलाने में कौन कौन सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं ?

११—चकबन्दी समितियाँ किस प्रकार गाँव के बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी करती हैं ?

१२—चकबन्दी समिति के स्थापित होने तथा उसके सफलतापूर्वक चकबन्दी करने में क्या क्या अड़चनें आती हैं ?

१३—रहन-सहन सुधार-समितियों का क्या उद्देश्य है और वे कौन कौन से कार्य करती हैं ?

१४—रहन सहन-सुधार समितियाँ कहाँ कहाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं ?

१५—इगलैंड में उपभोक्ता-स्टोर आन्दोलन का विवरण लिखिये।

१६—उपभोक्ता स्टोर जिन नियमों के अनुसार काम करता है उनको बतलाइये।

१७—भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन क्यों असफल रहा ?

१८—उपभोक्ता स्टोर से क्या लाभ हैं ? यदि तुम्हारे स्कूल में विद्यार्थी उपभोक्ता स्टोर खोलना चाहें तो तुम उसके लिए कौन से नियम पसन्द करोगे ?

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के यूनियन

(Union of Cooperative Societies)

सहकारिता आन्दोलन सर्व-साधारण का आन्दोलन है। उसे बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी बनना चाहिए। साख समितियों को डिपाज़िट आकर्षित करके कार्यशील पूँजी स्वयं इकट्ठी करनी चाहिए। परन्तु भारतवर्ष में जब साख समितियाँ डिपाज़िट आकर्षित करने में असफल रहीं तो सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की स्थापना करनी पड़ी। सहकारी समितियों की देखभाल साधारणतः उनकी पंचायत को करनी चाहिए। किन्तु अशिक्षा के कारण जब पंचायतें अपना कार्य सुचारु रूप से न कर सकीं तो सुपरवाइज़िंग यूनियन की स्थापना की गई जो अपने से सम्बन्धित समितियों की देखभाल करती हैं। किन्तु आय-व्यय-निरीक्षण तथा सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा का कार्य तो सहकारी समितियों की सम्मिलित यूनियन ही कर सकती हैं।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा प्रान्तीय सहकारी इन्स्टिट्यूट की स्थापना हो चुकी है। इन प्रान्तीय संस्थाओं का मुख्य कार्य प्रचार करना, समितियों का संगठन, साहित्य प्रकाशन, समितियों की देखभाल, तथा उनका निरीक्षण करना है।

भारतवर्ष में दो प्रकार की यूनियन गारटी यूनियन तथा सुपरवाइज़िंग यूनियन अधिक संख्या में स्थापित की गई हैं अतएव हम उनके विषय में विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

गारटी यूनियन

गारटी यूनियन सेन्ट्रल बैंक द्वारा साख समितियों को दिये हुए ऋण की गारटी देती हैं। तीस या चालीस सहकारी साख समितियाँ मिलकर एक गारटी यूनियन बनाती हैं। जो भी साख समिति गारटी यूनियन की सदस्य बनती है वह अपनी साधारण सभा में निश्चय करती है कि यदि गारंटी

यन से सम्बन्धित कोई समिति अपना ऋण नहीं चुका पावेगी तो समिति निश्चित रकम तक उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की रटी देती है। इस प्रकार यूनियन से सम्बन्धित प्रत्येक समिति एक निश्चित की गारन्टी देती है। यह सब मिला कर यूनियन की गारन्टी होती है, और यूनियन साख समितियों के ऋण की गारन्टी सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन को देती है।

गारन्टी यूनियन का जन्म बर्मा में हुआ। तद् उपरान्त बम्बई, संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बरार, बंगाल बिहार और उड़ीसा में भी इनका प्रयोग किया गया, किन्तु वे असफल हुईं, इस कारण वे क्रमशः टूट गईं, और आगे फिर इन प्रान्तों में इस प्रकार की यूनियन स्थापित ही नहीं की गईं। अन्य प्रान्तों और देशी राज्यों ने भी फिर इन्हें नहीं अपनाया। यह यूनियन वस्तुतः बेकार थीं क्योंकि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, फिर गारन्टी यूनियन की आवश्यकता ही कहाँ रहती है। अपने जन्म-स्थान बर्मा के अतिरिक्त और कहीं भी अधिक दिनों यह गारन्टी यूनियन नहीं रही। विद्वानों का मत है कि बर्मा में सहकारिता आन्दोलन की असफलता में इन यूनियनों का बहुत हाथ है।

सुपरवाइजिंग यूनियन

सुपरवाइजिंग यूनियन निम्नलिखित कार्य करती हैं:—कृषि सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनको उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नवीन समितियों का संगठन करना, तथा उनकी उन्नति करना, अपने से सम्बन्धित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके उनकी साख निर्धारित करना, समितियों को उनके कार्य संचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यों तथा पंचों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना, समितियों को यदि आवश्यकता हो तो क्रय-विक्रय में सहायता देना और सेन्ट्रल बैंक से उनका सम्बन्ध स्थापित कराना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियाँ अपने प्रतिनिधियों को यूनियन की साधारण सभा में भेजती हैं, यूनियन की साधारण सभा एक

कार्य कारिणी समिति का निर्वाचन करती है। यह कार्यकारिणी समिति ही
यूनियन का सारा प्रबन्ध करती है, और सम्बन्धित समितियों की देख-भाल
के लिए एक सुपरवाइज़र नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी पूँजी के
अनुसार यूनियन को चंदा देती है। सेन्ट्रल बैंक भी अपने क्षेत्र की यूनियन
को आर्थिक सहायता देते हैं। कृषि सहकारी समितियों को सफलता पूर्वक,
चलाने के लिए सुपरवाइजिंग यूनियन की बहुत आवश्यकता है।

एक यूनियन एक ताल्लुक़े अथवा एक तहसील से बड़े क्षेत्र में कार्य नहीं
करती। २० से ४० समितियाँ एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मदरास
प्रान्त में चार सौ के लगभग यूनियन सफलतापूर्वक कार्य करती हैं। बिहार
और उड़ीसा में दो प्रकार की यूनियन हैं, एक तो आय व्यय-निरीक्षण करती
है दूसरी देख-भाल करती हैं। बम्बई में भी ये समितियाँ अधिक संख्या
में हैं और सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। वहाँ यह प्रयत्न किया जा रहा
है कि प्रान्त में कोई कृषि सहकारी साख समिति ऐसे न रहे जो किसी न किसी
यूनियन से सम्बन्धित न हो। पंजाब और संयुक्तप्रान्त में यूनियन नहीं हैं वहाँ
समितियों की देख-भाल का कार्य प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा प्रान्तीय
सहकारी इन्स्टिट्यूट करती है। प्रत्येक प्रान्त में यह सुपरवाइजिंग यूनियन
प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा इन्स्टिट्यूट से सम्बन्धित होती हैं। प्रान्तीय
यूनियन इनका संगठन और देख-भाल करती है।

प्रान्तीय सहकारी यूनियन

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारी
यूनियन या इन्स्टिट्यूट है। यह प्रान्तीय यूनियन गैर सरकारी व्यक्तियों को
जो कि इस आन्दोलन से सहानुभूति रखते हैं एक सूत्र में संगठित करती
है। एक प्रकार से सहकारिता आन्दोलन का यह प्रान्त में नेतृत्व करती है।
मुख्य कार्य ये हैं।

(१) सहकारिता आन्दोलन की समस्याओं पर प्रकाश डालना।
इसके लिए प्रतिवर्ष यह एक सम्मेलन करती है जिसमें प्रान्त के कार्यकर्ता
भाग लेते हैं, और इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट
करते हैं।

(२) पुस्तकें तथा पत्र निकाल कर तथा अन्य प्रकार से प्रचार कार्य करना।

(३) सहकारी शिक्षा का प्रबन्ध करना, इसके लिए ये कक्षायें तथा स्कूल खोलती हैं जिनमें सहकारिता की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है।

(४) सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार* तथा प्रान्तीय सरकार को सहकारिता सम्बन्धी मामलों में राय देती हैं।

(५) कहीं प्रान्तीय यूनियन सहकारी समितियों के निरीक्षण, संगठन तथा आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य भी करती हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गारंटी यूनियन क्या कार्य करती है? यह यूनियन असफल क्यों हुई?

२—सुपरवाइजिंग यूनियन के कार्यों का उल्लेख कीजिये?

३—सुपरवाइजिंग यूनियन की क्या आवश्यकता है?

४—प्रान्तीय सहकारी यूनियन के मुख्य कार्य क्या हैं?

५—प्रान्तीय सहकारी यूनियन की प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन की उन्नति करने के लिए क्यों आवश्यकता हुई?

तीसवाँ अध्याय

सैन्ट्रल सहकारी बैंक

(Cooperative Central Banks and Banking Unions)

आरम्भ में जब भारतवर्ष में सहकारी साख-समितियाँ स्थापित की गईं तब यह आशा की जाती थी कि ग्रामीण जनता उन समितियों में रुपये जमा करेगी और समितियाँ के पास अपने सदस्यों को ऋण देने के लिए

---

*प्रान्तीय सरकार की ओर से नियुक्त कर्मचारी जो प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन को चलाता है।

डिपाज़िट द्वारा यथेष्ट पूँजी आ जावेगी। इस कारण सन् १९०४ के सहकारिता कानून के अनुसार केवल नगर तथा ग्राम्य साख समितियों की स्थापना का विधान किया गया। किन्तु यह आशा कि गाँवों के रहने वाले इन साख समितियों में रुपया जमा करेंगे पूरी नहीं हुई। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम किसान अधिकांश में निर्धन तथा ऋणी हैं, द्वितीय वे बैंकों में अपनी बचत का रुपया जमा करने के अभ्यस्त नहीं हैं। विभाग के राजिस्ट्रार—सरकार अथवा धनी व्यक्तियों से ऋण लेकर समितियों के लिए रुपये का प्रबन्ध करते थे। किन्तु इस प्रकार अधिक दिनों तक काम नहीं चल सकता था।

अस्तु इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैंक खोले जावें जो कि सहकारी साख समितियों के लिए धन इकट्ठा करें। सन १९१२ में दूसरा सहकारिता कानून पास हो गया और उनके अनुसार सैन्ट्रल बैंक खोलने की सुविधा हो गयी। अतएव सन् १९१२ के उपरान्त सहकारी सैन्ट्रल बैंक खोले गये।

सहकारी सैन्ट्रल बैंक दो प्रकार के होते हैं। ऐसे सैन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी सैन्ट्रल समितियाँ ही हो सकती हैं। दूसरे प्रकार के सहकारी बैंक वे हैं जिनके सदस्य व्यक्ति तथा सहकारी समितियाँ दोनों ही होते हैं।

पहले प्रकार के सैन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ हो सकती हैं सहकारी बैंकिंग यूनियन कहलाते हैं। वास्तव में बैंकिंग यूनियन ही आदर्श सहकारी सैन्ट्रल बैंक हैं। क्योंकि उससे सम्बन्धित सहकारी समितियाँ ही सैन्ट्रल बैंक की नीति को निर्धारित करती हैं और बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं समितियों के हाथ में रहता है। भारतवर्ष में बैंकिंग यूनियन संख्या में अधिक नहीं हैं, सैन्ट्रल बैंक ही संख्या में अधिक हैं।

सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की समस्त सहकारी साख समिति उन सैन्ट्रल बैंक से सम्बन्धित रहती हैं। कहीं कहीं एक जिले में केवल एक ही सैन्ट्रल बैंक होता है, ऐसी दशा में उसे जिला सहकारी बैंक कहते हैं। उदाहरण के लिए "बरेली डिस्ट्रिक्ट का ।"

"। उत्तर भारत के प्रान्तों में अधिकतर एक तहसील के लिए एक स्थूल बैंक होता है।

साधारण सभा (General Meeting)

सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के हिस्सेदारों की सभा को जनरल मीटिंग या साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। साधारण सभा ही बोर्ड-आफ-डायरेक्टर्स (Board of Directors) का चुनाव करती है।

बोर्ड आफ डायरैक्टर्स

बोर्ड आफ डायरेक्टर्स बैंक का प्रबन्ध करता है। डायरेक्टरों की संख्या अधिक होने के कारण बोर्ड आफ डायरेक्टर्स अपने सदस्यों में से कुछ कमेटियाँ बना देता है जो बैंक का काम चलाती हैं।

बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमैन अथवा मैनेजिंग डायरेक्टर मैनेजर की सलाह से करता है। डायरेक्टरों को फीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता। संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध तथा उत्तर के अन्य प्रान्तों में अधिकतर बैंक का चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट अथवा कोई अन्य सरकारी कर्मचारी होता है। किन्तु अधिकांश प्रान्तों में चेयरमैन गैर सरकारी ही होता है। सेन्ट्रल बैंकों में भी बोर्ड-आफ-डायरैक्टर्स में सहकारी साख समितियों के प्रतिनिधि ही अधिक संख्या में होते हैं।

कार्यशील पूँजी (Working Capital)

सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की कार्यशील पूँजी (Working Capital) हिस्सा पूँजी (Share Capital) रक्षित कोष (Reserve Fund) डिपाज़िट तथा ऋण (Loan) के द्वारा प्राप्त होती है।

साधारणतया सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन हिस्सों का मूल्य ५० रु० से लेकर १०० रु० तक होता है। सहकारी साख समितियाँ अपने ऋण के अनुपात से हिस्से लेती हैं। सहकारी कानून के अनुसार सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करती है। हिस्सा पूँजी (Share

बैंक की निजी पूँजी (Capital) तथा रक्षित कोष (Reserve Fund) होती है। डिपाज़िट तथा ऋण उधार ली हुई होती है। किन्तु सदस्यों तथा गैर सदस्यों की डिपाज़िट ही बैंक की कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन दो प्रकार की डिपाजिट लेती है—मुद्दती (Fixed) तथा सेविंग्स। किसी किसी प्रान्त में चालू खाता* (Current Account) भी रक्खा जाता है किन्तु चालू खाते में जोखिम अधिक है। इस कारण अधिकांश बैंक उसे नहीं रखते। डिपाज़िट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सेन्ट्रल बैंक ऋण भी लेते हैं। अधिकतर सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन प्रान्तीय सहकारी बैंक से ऋण लेते हैं। संयुक्त-प्रान्त में रजिस्ट्रार की अनुमति से वे एक दूसरे को ऋण दे सकते हैं।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर अपने से सम्बन्धित सहकारी साख समितियों तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। किसी किसी प्रान्त तथा देशी राज्य में व्यक्तियों को भी ऋण दिया जाता है, परन्तु अब वह रिवाज बन्द किया जा रहा है।

अपरिमित दायित्व (Unlimited liability) वाली साख समितियों को सेन्ट्रल बैंक प्रो-नोट अथवा बॉंड पर ही ऋण दे देते हैं। अपरिमित दायित्व होने के कारण उनका प्रो-नोट ही यथेष्ट जमानत (security) है। सहकारी समितियों को प्रो-नोट के अतिरिक्त कुछ सम्पति भी गिरवी रखनी होती है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित साख समितियों की हैसियत के अनुसार उन साख समितियों की अधिकतम साख (Maximum credit) निश्चित कर देती है। उससे अधिक ऋण साख समिति को नहीं दिया जाता।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिए ऋण देते हैं। कहीं कहीं

---

*चालू खाता में जमा करने वाला जब भी चाहे चेक द्वारा रुपया निकाल सकता है।

। इसके अतिरिक्त द्रव्य बाजार (Money market) तथा सहकारी साख आन्दोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में ११ प्रान्तीय बैंक हैं ९ ब्रिटिश भारत मे तथा २ देशी राज्यों में। ब्रिटिश भारत में नव निर्मित सिंध तथा उड़ीसा के अतिरिक्त सभी प्रान्तों में प्रान्तीय सहकारी बैंक हैं। १९४५ के जनवरी मे संयुक्तप्रान्त में भी प्रान्तीय बैंक स्थापित हो गया।

प्रान्तीय सहकारी बैंक परिमित दायित्व (Limited liability) वाले होते हैं। अधिकतर प्रान्तीय बैंक मिश्रित ढंग के हैं, अर्थात् उनके सदस्य व्यक्ति, सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक सभी होते हैं। किन्तु पंजाब और बंगाल के प्रान्तीय बैंकों मे व्यक्ति हिस्सेदार नहीं हो सकते। केवल सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक ही हिस्सेदार हो सकते हैं।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रान्तीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों के अभिभावक का कार्य करते हैं। सहकारी साख आन्दोलन का द्रव्य बाजार (Money market) से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे इसके लिए यह आवश्यक है कि सहकारी सेन्ट्रल बैंक अन्य बाहरी बैंकों से प्रान्तीय बैंक के द्वारा काम करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय सहकारी बैंक सेन्ट्रल बैंकों तथा बैंकिंग यूनियनों को आपस में एक दूसरे से ऋण न लेने दें। क्योंकि इससे प्रान्तीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों का अनुशासन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते। प्रान्तीय बैंकों को सहकारी साख समितियों से सीधा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन से होना चाहिए और सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध प्रान्तीय बैंक से होना चाहिए।

प्रान्तीय बैंक अपनी कार्यशील पूँजी के लिए सहकारी साख समितियों, सेन्ट्रल बैंकों और जनता की डिपाज़िट पर निर्भर रहते हैं। जब प्रान्तीय बैंक पर्याप्त संख्या में डिपाज़िट स्वीकार करते हैं तो उन्हें जमा करने वालों के माँगने पर, देने के लिए नक़द रुपया रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने नियम बनाकर कम से कम नक़द रुपया कितना रखना चाहिए निश्चित कर दिया है। जितने दिनों के लिए प्रान्तीय बैंकों को डिपाज़िट

मिलती है उससे अधिक के लिए वे ऋण नहीं देते। प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय बैंकों ने अधिक से अधिक समय निश्चित कर दिया है जिससे अधिक के लिए वे डिपाज़िट स्वीकार नहीं करते। अधिकांश प्रान्तीय बैंक चालू खाता (Current account) भी रखते हैं, केवल पंजाब प्रान्तीय बैंक चालू खाता नहीं रखता। प्रान्तीय बैंक डिपाज़िट लेने के अतिरिक्त साधारण [illegible] कार्य भी करते हैं। बम्बई, मदरास तथा पंजाब प्रान्तीय बैंकों ने समय के लिए डिबैंचर (Debenture) भी बेचे हैं। अन्य बैंकों की भांति प्रान्तीय बैंकों के सामने भी कार्यशील पूँजी (Working-Capital) की अधिकता तथा कमी की समस्या उपस्थित होती रहती है। अतएव प्रान्तीय बैंक एक दूसरे को ऋण देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर थोड़े समय के लिए कुछ अधिक सूद देकर डिपाज़िट बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

नियमानुसार इन प्रान्तीय बैंकों का आय व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा होना चाहिए, परन्तु किसी किसी प्रान्त में रजिस्ट्रार ने पेशेवर आडिटरों के द्वारा प्रान्तीय बैंकों के हिसाब की जाँच करवाने की आज्ञा दे दी है। प्रान्तीय बैंक अपनी वार्षिक बैलेंस शीट भी तैयार करते हैं। कुछ समय हुआ जब कि "अखिल भारतवर्षीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एशोसियन" (The All India Provincial Co-operative Banks Association) नामक संस्था को जन्म दिया गया है। इस एशोसियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक प्रान्तीय बैंक को कार्यशील पूँजी की अधिकता तथा कमी के आँकड़ों को जमा करती है और सब प्रान्तीय बैंकों को सूचनार्थ भेज देती है। एशोसियेशन की बैठक दो वर्ष में एक बार होती है जिसमें सहकारिता आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है। जब कभी प्रान्तीय बैंकों को सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो एशोसियेशन ही सरकार से उस सम्बन्ध में बात चीत करती है।

जब से भारतवर्ष में रिजर्व बैंक* खुल गया है तब से प्रान्तीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध रिज़र्व बैंक के कृषि साख विभाग (Agricultral Credit

---

*रिज़र्व-बैंकः—यह बैंक भारत सरकार की संरक्षकता में स्थापित हुआ है। इसका मुख्य कार्य सरकारी लेन-देने के काम को करना, "

tment) से स्थापित हो गया है इससे पूर्व प्रान्तीय सहकारी बैंको
न्ध इम्पीरियल बैंक से था। आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय बैं
क से ऋण लेते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—प्रान्तीय सहकारी बैंक क्या क्या कार्य करता है ?

२—प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता क्यों पड़ी ?

३—प्रान्तीय बैंक अपने से सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंक को किस तरह सहायता पहुँचाता है ?

४—प्रान्तीय बैंकों का सगठन किस प्रकार का है और वे अपनी कार्य-शील पूंजी किस प्रकार इकट्ठी करते हैं ?

बत्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ हुए ४० वर्ष से ऊपर समय हो गया किन्तु हमारे गाँवों की दशा में कोई विशेष सुधार हुआ हो ऐसा नहीं दिखलाई देता। इसका कारण यह है कि सहकारिता आन्दोलन अभी कमज़ोर है। यह तो इसी से ज्ञात हो जाता है कि प्रति वर्ष बहुत सी सहकारी समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं और बहुतों की दशा अच्छी नहीं है।

चालीस वर्षों में इस आन्दोलन को देश में एक मजबूत आन्दोलन बन जाना चाहिए था, समितियों की उन्नति होनी चाहिए थी। गाँव वालों को दूसरी तरह की सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिए थी, महाजन को सहकारी साख समितियों से डरना चाहिए था, समिति के सदस्यों की [illegible]

(currency) को चलाना, अन्य बैंकों का बैंकर बनना, तथा रुपये के विनिमय
र को स्थिर रखना है। यह बैंक द्रव्य बाजार (money market) पर
[illegible] रखना और दूसरे बैंकों को समय पर ऋण देना।

कम होनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा कुछ हुआ हो यह दिखलाई नहीं देता इससे ही यह जाना जा सकता है कि इस आन्दोलन की हालत अच्छी नहीं है।

सहकारी समितियो की असफलता के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :—

(१) किसान का कर्ज़ से दबा होना। जब तक किसान का कर्ज़ से छुटकारा नहीं होता तब तक वह अपनी उन्नति के किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं रख सकता।

(२) गांव वालों का अशिक्षित होना। समिति का काम करने के लिए शिक्षित होना जरूरी है। इसका फल यह होता है कि समिति का कर्ता-धर्ता वैतनिक मंत्री हो जाता है। दूसरे सदस्य उसकी ओर से उदासीन हो जाते हैं।

(३) सहकारी समितियो और सहकारिता आन्दोलन पर सरकारी देख भाल बहुत ज्यादा है। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। इसका फल यह होता है कि अशिक्षित किसान यह समझता है कि यह सरकारी बैंक है और हमे कर्ज़ देने के लिए खोले गये हैं। सहकारिता की यह भावना कि हम मिल कर स्वय अपने पैरों पर खड़े हों इससे नष्ट हो जाती है।

(४) सहकारिता आन्दोलन की एक कमज़ोरी यह भी रही है कि अभी तक सहकारी साख समितियो की ओर अधिक ध्यान दिया गया गैर साख समितियो की स्थापना की ओर कम ध्यान दिया गया। किसान को केवल साख की ही जरूरत नहीं है वरन उसको इस बात की भी जरूरत है कि उसकी पैदावार का उसे उचित मूल्य मिले और उसके काम में आने वाली चीजें भी उसे उचित मूल्य में मिलें। हर्ष की बात है कि सहकारिता विभाग का इस ओर ध्यान गया है और गैर साख समितियाँ अधिक सख्या में स्थापित की जा रही हैं।

(५) आन्दोलन की कमज़ोरी का एक यह भी कारण है कि सहकारिता विभाग के इंस्पेक्टर* और आरगैनाइजर† सहकारिता के सिद्धान्तो को बिना

---

* यह सहकारी समितियो की देख भाल के लिए जिले में एक होता है।

† यह समितियेों का संगठन करते हैं और जिले में कई होते हैं।

'epartment) से स्थापित हो गया है इससे पूर्व प्रान्तीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध इम्पीरियल बैंक से था। आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—प्रान्तीय सहकारी बैंक क्या क्या कार्य करता है ?

२—प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता क्यों पड़ी ?

३—प्रान्तीय बैंक अपने से सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंक को किस तरह सहायता पहुँचाता है ?

४—प्रान्तीय बैंकों का संगठन किस प्रकार का है और वे अपनी कार्यशील पूंजी किस प्रकार इकट्ठी करते हैं ?

बत्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ हुए ४० वर्ष से अधिक समय हो गया किन्तु हमारे गाँवों की दशा में कोई विशेष सुधार हुआ हो ऐसा नहीं दिखलाई देता। इसका कारण यह है कि सहकारिता आन्दोलन अभी कमज़ोर है। यह तो इसी से ज्ञात हो जाता है कि प्रति वर्ष बहुत सी सहकारी समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं और बहुतों की दशा अच्छी नहीं है।

चालीस वर्षों में इस आन्दोलन को देश में एक मज़बूत आन्दोलन बन जाना चाहिए था, समितियों की उन्नति होनी चाहिए थी। गाँव वालों को दूसरी तरह की सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिए थी, महाजन को सहकारी साख समितियों से डरना चाहिए था, समिति के सदस्यों का [illegible]

(currency) को चलाना, अन्य बैंकों का बैंकर बनना, तथा रुपये के विनिमय की दर को स्थिर रखना है। यह बैंक द्रव्य बाजार (money market) पर नियंत्रण रखेगा और दूसरे बैंकों को समय पर ऋण देगा।

कम होनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा कुछ हुआ हो यह दिखलाई नहीं देता इससे
हो यह जाना जा सकता है कि इस आन्दोलन की हालत अच्छी नहीं है।

सहकारी समितियों की असफलता के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :—

(१) किसान का कर्ज़ से दबा होना। जब तक किसान का कर्ज से
छुटकारा नहीं होता तब तक वह अपनी उन्नति के किसी भी काम में दिलचस्पी
नहीं रख सकता।

(२) गांव वालों का अशिक्षित होना। समिति का काम करने के
लिए शिक्षित होना ज़रूरी है। इसका फल यह होता है कि समिति का कर्ता-
धर्ता वैतनिक मंत्री हो जाता है। दूसरे सदस्य उसकी ओर से उदासीन हो
जाते हैं।

(३) सहकारी समितियों और सहकारिता आन्दोलन पर सरकारी देख
भाल बहुत ज़्यादा है। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का
सर्वेसर्वा है। इसका फल यह होता है कि अशिक्षित किसान यह समझता है
कि यह सरकारी बैंक है और हमें कर्ज़ देने के लिए खोले गये हैं। सहकारिता
की यह भावना कि हम मिल-कर स्वयं अपने पैरों पर खड़े हों इससे नष्ट हो
जाती है।

(४) सहकारिता आन्दोलन की एक कमज़ोरी यह भी रही है कि अभी
तक सहकारी साख समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया गैर साख
समितियों की स्थापना की ओर कम ध्यान दिया गया। किसान को केवल
साख की ही जरूरत नहीं है वरन उसको इस बात की भी जरूरत है कि
उसकी पैदावार का उसे उचित मूल्य मिले और उसके काम में आने वाल
चीजें भी उसे उचित मूल्य में मिलें। हर्ष की बात है कि सहकारिता विभा
का इस ओर ध्यान गया है और गैर साख समितियां अधिक संख्या में स्था
की जा रही हैं।

(५) आन्दोलन की कमज़ोरी का एक यह भी कारण है कि सहका
विभाग के इन्स्पेक्टर* और आरगैनाइजर† सहकारिता के सिद्धान्तों को

---

* यह सहकारी समितियों की देख-भाल के लिए जिले में एक होते हैं।

† यह समितियों का संगठन करते हैं और जिले में कई होते हैं।

अच्छी तरह से सदस्यों को समझाये जल्दी में समितियों का संगठन कर दे हैं। इन कर्मचारियों का तबादला होता रहता है अतएव यदि ऐसी कमज़ो समितियाँ बाद को टूट जावें तो उन पर दोष नहीं आता। इसलिए अप ऊँचे अफसरों को प्रसन्न करने के लिए वे जल्दी में बहुत सी समितियों क संगठन कर देते हैं।

(६) कहीं कहीं पञ्चायतदार या सरपञ्च बेईमान होते हैं और वे समि के रुपये से स्वयं लाभ उठाते हैं।

(७) कहीं कहीं महाजन अपने आदमियों को समिति का सदस्य बन कर उसे हाथयाने का प्रयत्न करता है और कहीं कहीं कोई प्रभावशाल आदमी समिति को हथिया लेता है।

(८) साख समितियों से ऋण मिलने में कभी कभी बहुत देर हो जात है। साथ ही जब किसान साख समितियों से कर्ज़ लेता है तो यह बात छिप नहीं रहती। भारतीय किसान यह नहीं चाहता कि लोग जाने कि य कर्ज़दार है।

(९) सहकारी आन्दोलन तभी किसी देश में सफल हो सकता है कि जब कि किसानों की निस्वार्थभाव से सेवा करने के लिए लोग इस आन्दोलन में आवें। लेकिन भारतवर्ष के जो भी गैरसरकारी लोग इसमें आये व अधिकतर सरकार को प्रसन्न करने के लिए आये। देश में किसानों की सेवा करने की जिन्हें लगन है वे इस आन्दोलन से दूर रहे।

ऊपर दिये हुए दोष से यह न समझ लेना चाहिए कि सहकारित आन्दोलन में कोई लाभ ही नहीं हुआ। यह ठीक है कि अभी यह कमज़ो है फिर भी सहकारी समितियों से देश को बहुत लाभ हुआ है।

जहाँ साख समितियाँ हैं वहाँ महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है किसानों में कम खर्ची की आदत पड़ रही है, बैंकिंग के सिद्धान्तों की जान कारी बढ़ रही है, लड़ाई झगड़े कम हुए हैं, किसानों की फसलों को बेच और उचित मूल्य दिलाने का प्रबन्ध किया गया है, अच्छे बीज का प्रब किया गया है।

—:o:—

U. P. HIGH SCHOOL EXAMINATION PAPERS
1943

1 What is wealth ? Explain the causes of the poverty of the Indian cultivators, and suggest remedies to remove this evil 10

2 Explain production What are the factors of production ? Give an idea of the relative importance of the different factors of production in rural industries 10

3. What are the causes of the backwardness of Indian agriculture ? What improvements can you suggest ? 10

4 Explain the economic importance of the weekly *hats* and occasional fairs to the villagers What economic services are rendered by the village 'Bania' ? 10

5 What is barter ? Does it still prevail in your locality ? Why has its place been taken by sale and purchase ? 10

6 Point out the causes of the prevalence of high rate of interest in the villages of india What measures would you suggest to lower it ? 10

7. What is a co-operative credit society ? If you were asked to organize one, how would you start ? 10

8- Explain the necessity of consumers co-operative stores in industrial centres Why has this form of co-operation not succeeded in your province ? 10

9. Briefly describe the administration of your district What part does the Patwari or 'Mukhia play in this administration ? 10

10 Write short notes on *any four* of the following :— 10

(*a*) Provincial Co-operative Bank ; (*b*) Balanced diet ; (*c*), Value , (*d*) Subdivision of holdings , (*e*) Agricultural Department , (*f*) Standard of Living , (*g*) Land Tenure in the U. P

1944

Section A

1 Define Economics What are the advantages of its study in practical life ? 10

2 Briefly describe the chief cottage industries of your locality What are the defects they suffer from ? Suggest remedies to improve them

3. What do you mean by ' Standard of Living ' ? Why is it very low in rural areas ? How can it be raised ?

4 Give an idea of marketing agricultural produce in your district. Why do the cultivators fail to secure a fair price for their goods ? 10

5 How is payment made to the various types of village workers ? What is the effect of this system of payment on their efficiency ? 10

6 What is the work done by (*a*) the Agricultural Department, and (*b*) the Rural Development Department, for the benefit of the cultivators ? 10

7. Write notes on any five of the following :— Money, Batai System, Village Panchayats, Consumption, [illegible], Market, [illegible] Occupancy Tenants. 10

Section B

8. Explain the principles of *either* (*a*) Co-operative marketing societies, *or* (*b*) Co-operative store 10

9. What is a District Co operative Bank ? Give an idea of its constitution and work 10

10. What types of agricultural non-credit societies are working in your province ? How do they help the villagers to improve their condition ? 10

1945

Section A

1. Discuss fully the subject matter of Economics 10

2 Fully explain the defects and difficulties of Indian agriculture What measures would you suggest to overcome them ? 10

3 Describe the chief characteristics of human wants. Distinguish between necessaries for existence, necessaries for efficiency, and conventional necessaries Give examples from the rural areas of your district 10

4. Name some of the handicrafts of your locality. How do the producers provide the necessary raw materials and labour, and how do they finally sell the finished goods ? Can you suggest ways to improve their method of sale ? 10

5. Explain the term ' Rent '. How is rent determined in rural areas ? What steps have been taken recently to protect the cultivators from excessive rents? 10

6. Give a detailed account of the administration of your district Explain the work and importance of Chaukidar, Patwari, and Tehsildar for the village people. 10

7 Write notes on *any four* of the following :— 10
Statutory tenants, Balanced diet, Fragmentation of holdings, Family Budgets; Hats and fairs; Factors of production; Wealth, Utility.

Section B

8 What are the chief principles of co-operation? How has it helped the rural population of the country? 10

9 Describe the organization and working of a primary agricultural credit society. Point out the sources from which such societies secure funds. 10

10 Write notes on *any three* of the following.— 10
Co-operative Land Mortgage Banks, Provincial Co-operative Union; Guaranteeing Unions; Provincial Co-operative Bank, Better living Societies; Sale and purchase societies.

1946

Section A

1 What is Economics? Why have you taken up the study of this subject? 10

2 Briefly enumerate the causes of the poverty of the people of rural areas. What efforts have recently been made to improve their condition in the *United Provinces*? 10

3. Describe in detail the processes, organization, and defects of any cottage industry of your locality. 10

4 (a) Why is interest paid? 10

(b) (i) The Afghan money lender lends money to the cultivators at 38%.

(ii) The village co-operative society lends at 12%.

(iii) The banks lend to merchants at 6%.

Account for the difference in the rates of interest in the above cases

5 Define 'wages' Why is it that a village labourer prefers to work in his own village at 12 annas per day than to work at Cawnpore at Rs 2-8-0 per day ? 10

6 Enumerate the chief problems of rural areas in your province How far have those problems been solved by the Rural Development and Agriculture Departments ? 10

7 Write notes on *any four* of the following — 10

(*a*) Wants, (*b*) Saving and hoarding ; (*c*) Barter , (*d*) *Batai* system , (*e*) Gross interest , (*f*) Fragmentation of holdings , (*g*) National Wealth

8 Give an idea of the land tenures in the U. P. mentioning the chief classes of tenants found at the present time. 10

Section B शिक्षा

9 Briefly discuss the advantages of Co operative Societies to cultivators. 10

10 Describe the organization and working of a Central Bank *and* a Better-living Society 10